नवजीवन

श्री रामचन्द्र तिवारी

प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

किंग्सवे, दिल्ली :: चेतगंज, काशी

ढाई रुपये

कथा की पृष्ठभूमि में

—:०:—

उपन्यास का मुख्य ध्येय मनोरञ्जन है, पर जब कथा है तो उसकी पृष्ठभूमि होगी ही।

प्रस्तुत कथा की पृष्ठभूमि में जो समस्या है वह पुरानी होने पर भी व्यक्ति और वर्ग के तल से उठकर राष्ट्रतल को पहुँच गई है। जो किसान और ज़मींदार के बीच की बात थी, वह आज नवीन तत्वों के आगमन और उनकी पुरातन पर, एवं पारस्परिक, क्रिया-प्रतिक्रियाओं से राष्ट्रीय बन गई है। यह है देश की भोजन-समस्या।

पिछले साठ वर्षों में देश की जन-संख्या प्रायः ड्योढ़ी हो गई है। जनसंख्या की इस वृद्धि के साथ-साथ भोजन की समस्या तीव्रतर होकर उभरती आई है। वर्तमान युद्ध ने इस उभार को अत्यन्त प्रत्यक्ष कर दिया है।

आज भारतवासियों की दशा सुधारने के लिए अनेक योजनाएँ बन रही हैं। उनके लिए सुन्दर हवादार मकान चाहिएँ, उनकी आय बढ़नी चाहिए; उनके लिए विनोद और प्रमोद की सामग्री चाहिए। परन्तु पर्याप्त भोजन के अभाव में इन सब योजनाओं का अर्थ होता है कि देश में जो सब से अधिक दरिद्र है, साथ ही साथ कदाचित् जो सब से अधिक परिश्रम करता है, उसे प्रसन्नता से मरजाने की छुट्टी दे दी जाती है। ये योजनाएँ जैसे उसके जीने का अधिकार स्वीकार नहीं करतीं। इस वर्ग को आमोद-प्रमोद की सामग्री नहीं चाहिए। झोपड़ी में वह रह सकता है। वह निरक्षुधित आत्मा से केवल भोजन के लिए प्रार्थी है।

जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी है, गाँवों में इसका प्रभाव पड़ा है, कृषिकर भूमि में वृद्धि हुई है। पशुओं के चरने के लिए जो भूमि रहती थी, वह

शीघ्रता से जोती जा रही है। जो गाँव वनों के निकट हैं, वहाँ वृक्ष काटे ज रहे हैं। और वन को कृषि-भूमि में परिवर्त्तित किया जा रहा है।

चराऊ भूमि का अभाव तथा वृक्षों का विनाश जिन समस्याओं व जन्म देता है वे भविष्य में बढ़कर अत्यन्त भयंकर हो जायँगी।

चराऊ भूमि के अभाव का अर्थ होता है पशुओं का अभाव। भारतीय ग्राम की आर्थिक योजना में पशुओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय किसान की समस्त शक्ति पशु से आती है। पशु खेत जोतते हैं, पशु ही सींचते हैं। भारतीय खेतों की लगभग सम्पूर्ण खाद के जन्मदाता पशु हैं। भारतीय गांवों का आधे से अधिक ईंधन (उपले) भी पशुओं से आता है। निरामिष भारतीय भोजन में दूध एवं उससे बने विभिन्न पदार्थों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन सब बातों पर विचारने से चराऊ भूमि के जोत लेने पर लाभ से हानि ही सहस्रगुणी है।

वृक्षों को काट कर खेत बनालेने का अर्थ होता है कि अब वहाँ पर दूसरे वृक्ष नहीं लगाये जायँगे। इसका तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि गांव ईंधन के लिए अधिकाधिक गोबर के ऊपर निर्भर होता जाता है और खाद में कमी पड़ती जाती है। पर लम्बे समय में जो भीषण परिणाम वृक्षों के अभाव का होता है वह प्राणों को कँपा देने वाला है। वृक्ष कृषि-योग्य भूमि को जल के साथ बहजाने से रोकते हैं। जब वृक्षों का अभाव होता है तो वह भूमि निरन्तर बहती रहती है और भूत में जहाँ खेत लहलहाते थे वहाँ मरुस्थल की रेत से तप्त लपटें उठती हैं। कौन कह सकता है कि गोबी और सहारा के मरुस्थल मानव की इसी असतर्कता के कारण नहीं बने हैं। साक्षी हैं कि आज के ये मरुस्थल भूत में मानव जाति के समृद्ध केन्द्र थे।

देश की जनसंख्या चालीस करोड़ के लगभग है। औसतन अधसेर अन्न प्रति दिन प्रति मनुष्य लगाने से वर्ष भर की भारतीय आवश्यकता ६,४०,००,००० टन है। जीवित रहने मात्र के लिए ५०-५,५०,००,[illegible] टन की वार्षिक आवश्यकता है। देश की वार्षिक उपज ४२-४,८०,००,००० के बीच में ही रही है।

शान्ति के वर्षों में अन्न बाहर से आता रहा है, और यह बात किसी से छिपी नहीं है कि उस संकटहीन दीखने वाले समय में भी भारत की एक चौथाई के लगभग जनता केवल एक समय भोजन पाकर जीवन-यापन करती रही है।

प्रश्न है शेष अन्न कहाँ से आये?

जब कि प्रत्येक देश अपनी भौगोलिक सीमा के भीतर अपनी सम्पूर्ण खाद्य-सामग्री प्राप्त करने पर बल लगा रहा है। भारत, जो कृषि-प्रधान है, बाहर से अनन्त समय तक अन्न मँगाने का विचार करे, यह हास्यास्पद है। यदि यह अन्न मँगाना सम्भव भी हो तो और विकराल समस्याएँ सम्मुख आती हैं। इतना अन्न लाया कैसे जाय? इसका दाम किस रूप में चुकाया जाय?

समस्या का समाधान यही है कि अन्न देश में ही उत्पन्न किया जाय। पर क्या यह सम्भव है?

है!

पर देश की समस्त भूमि जोत डालने से नहीं। उस मार्ग से तो असंदिग्ध विनाश की ओर प्रस्थान होगा।

मार्ग एक है। देश की कृषि में नवीन वैज्ञानिक उपायों की सहायता ली जाये। इसके लिए जहाँ एक ओर जहाँ खाद बनाने के विशाल कारखानों की आवश्यकता है, वहाँ यह भी अनिवार्य है कि खेतों का आकार आधुनिक कृषि-साधनों के प्रयोग के उपयुक्त हो। खेतों के विभाजन के वर्त्तमान कारण हटा दिये जायँ। कृषकों को उनके व्यवसाय में अधिकाधिक रुचि लेने को प्रोत्साहित किया जाय।

खेतों के आकार को बड़ा करने के लिए आवश्यक है कि कृषि में सहकारिता का प्रवेश हो। छोटे-छोटे खेत मिल कर एक हो जायें, जिससे नवीन उपायों के प्रयोग में सुभीता हो और किसान अपने पैर पर खड़ा हो सके।

समय था जब यह समझा जाता था कि सहकार-कृषि से कृषकों की

दशा में सुधार होगा, परन्तु अब सहकार - कृषि किसानों का वर्गीय प्रश्न नहीं रह गया। यह उस प्रत्येक व्यक्ति का वैयक्तिक प्रश्न है जो उनका उत्पन्न किया अन्न खाता है। देश के प्रत्येक निवासी का अब यह प्रायः प्रथम कर्त्तव्य हो गया है कि वह देश की कृषि में रुचि ले और उसके लिए पर्याप्त अन्न उत्पन्न किया जाता है, इस विषय में सजग एवं सतर्क रहे।

—रामचन्द्र तिवारी

नवजीवन

रामचन्द्र तिवारी

पहला अध्याय

[१]

इमली की टेढ़ी गाँठदार शाखा में ढेला लगकर रामावतार के सम्मुख आ पड़ा। शाखा हिली और खटास की लहर वातावरण में दौड़ गई।

रामावतार चिन्तित थे; क्रुद्ध हो गये।

"लड़को!"

लड़के समझ गये और इधर-उधर हो गये।

रामावतार जाति से ब्राह्मण थे और व्यवसाय से किसान। उनकी अवस्था चालीस से अधिक, पचास से कम और पैंतालीस के आस-पास थी।

उस बूढ़ी इमली की ऐंठी लम्बी दृढ़ भुजाओं को उन्होंने देखा। भूमि को अपने चंगुल में पकड़ रखने वाली उसकी जड़ों पर दृष्टिपात किया और वहाँ बिखरी भैरव की लालिमा उनके मन में भक्तिमय भय भर गयी। उन्होंने इस इमली को सदा ऐसा ही देखा है; उनके पिता और पितामह ने भी।

तब चिन्ता उनपर झुक आई। वे इमली के नीचे से हट चले।

रामावतार छरहरे और ऊँचे थे। मस्तक पर सलवटें थी। झुकी भौंहों के नीचे तेज़ आँखें, एक धार्मिक दृढ़ता एवं सहिष्णुता, नासिका और ओठ उनके चेहरे को प्रभावशाली बनाते थे। जब वे मुस्कराते थे तो उनके गालों में तनिक-सा गड्ढा अब भी पड़ जाता था, जिससे व्यक्त होता था कि युवावस्था में वे सुन्दर रहे होंगे।

वे गये और द्वार पर खाट के निकट खड़े हो गये। अपनी पुरानी खपरैल और उसे स्पर्श करते आकाश पर दृष्टि डाली। और फिर उस धूमिल-सी खाट की ओर देखा।

उनके वस्त्र एक धोती तक सीमित थे, और उसकी सीमा भी कमर से ऊपर और घुटनों से नीचे नहीं बढ़ पाती थी। कुर्ता या फतुही वे पहिनते थे

पर केवल दो अवसरों पर। एक जब जाड़ा लगता था, और दूसरे जब कोई शुभ-अशुभ अवसर आ पड़ता था। हाँ, अँगौछा सदा उनका संगी-सहायक रहा है। धोती-अँगौछे की सहायता से उन्होंने तीन-चौथाई अवस्था काट दी। और अब आशा कर रहे थे कि आगे के लिए भाग्य उन्हें विशेष सहायता लेने को विवश न करेगा।

वे खाट पर बैठ गये। उन्होंने चूना-तमाखू का बटुवा खोला, पत्ती निकाली और पुनः विचारमग्न हो गये। भौंहें और भी झुक आईं जैसे कि उनके नेत्र किसी सूक्ष्म दृश्य की विश्लेषणात्मक विवेचना का प्रयत्न कर रहे हों। एक क्षण में नेत्र खुले और ललाट पर चिन्ता की जटिल रेखाएँ बन गईं।

वे इसी अवस्था में थे कि उनका बड़ा लड़का रामाधीन उनके निकट आकर खड़ा हो गया।

रामाधीन की अवस्था पच्चीस और तीस के बीच में थी। वह उत्साही और सजग किसान था। अभाव, श्रम और दीनता के वातावरण में उसकी शीघ्रता से ढलती युवावस्था उसके जीवन को धूप-छाँह बना रही थी।

रामाधीन का अपना भी परिवार था। पत्नी थी, तीन पुत्र और दो कन्याएँ।

रामावतार ने दृष्टि ऊँची कर पुत्र की ओर देखा और पाया कि जिस प्रकार उनकी चिन्ता असाधारण है उसी प्रकार रामाधीन के मुख का भाव भी असाधारण है। यह भाव उसके मुख पर उन्होंने कभी नहीं देखा था। इस भाव के तल में आशङ्का और पीड़ा थी पर उसके ऊपर चुनौती और विद्रोह स्पष्ट था। रामावतार आकर्षित हुए; कुछ आतुर भी। जिस चिन्ता में मग्न थे, वह कुछ क्षण के लिए उन्हें छोड़ गई।

"क्या है रे?" उन्होंने उद्विग्न स्वर से पूछा।

रामाधीन बोला नहीं। खाट पर बैठ गया। बटुवा एक ओर सरका दिया और पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगा।

रामावतार ने पुत्र की चेष्टा देखी। चिन्ता के ऊपर नई चिन्ता। रामा-

धीन के इस व्यवहार का अर्थ क्या है ?

उन्होंने दृष्टि उसके चेहरे पर जमादी; अपनी छोटी-सी दाढ़ी तर्जनी से खुजलाई। ललाट पर सलवटों की संख्या बढ़ गई।

उन्हें अनुभव हुआ कि तूफान आने को है। रूप और दिशा क्या होगी, यह अज्ञात था। नारी-कलह की सम्भावना बिजली-सी मस्तिष्क में दौड़ गई। क्या वही है ?

और जो कुछ भी हो, उसे सहन करने को प्रस्तुत हो गये। समस्या यदि है तो हल माँगेगी। इसी में उसके जन्म की सफलता है।

बोले—"बात क्या है ?"

रामाधीन हिल गया। ऐसा लगा कि जो कुछ वह कहने आया था, वह कह न पायेगा। उसका साहस पीछे हटता प्रतीत हुआ। पर यह अवसर उसके परिवार के लिए जीवन और मृत्यु का है। यदि इस समय वह संकोच का शिकार हो जाता है तो सम्भावना है कि कुछ ही महीनों में वह और उसकी सन्तान भूख-द्वारा मौत की चक्की में पीस दिये जायें।

उसके छोटे भाई रामसरन ने जो बो दिया है उसमें काँटे ही उगेंगे और वे झड़ेंगे सारे परिवार के ऊपर; विषैले, निर्धनता के बाण बनकर।

रामसरन को संसार का अनुभव नहीं। वह उद्दण्ड गर्वीला युवक मात्र है।

गाँव में कौन है जो कारिन्दे की गाली नहीं खाता ? कौन है जो उसके सम्मुख शीश नहीं झुकाता ? कौन है जो उसके किसी कार्य में अर्थ-अनर्थ खोजने का साहस करता है ? वह धनपति है और व्यवस्थापति उसकी पीठ पर।

कारिन्दे ने यदि रामावतार को, काका को, गाली दी; मारने की धमकी दी या मारा भी तो रामसरन को क्रोध क्यों आना चाहिए ? यदि क्रोध आया भी तो वह उसे पी क्यों नहीं गया ? यदि पी नहीं सका तो कारिन्दे को ही क्यों, और किसी को क्यों नहीं, मारा ?

पिता का अपमान क्या इतना बड़ा है कि उसके लिए राजा को अपना बैरी बना लिया जाय ?

यह अकरणीय करके रामसरन हवालात में बन्द हो गया है। उसके विरुद्ध अभियोग संगीन है। राजा को साथियों की कमी नहीं। उनकी ओर से गवाही देकर कौन शासनयन्त्र के दाँतों में अपना सिर देगा ?

काका हैं कि वह भी अपने चालीस-पैंतालीस साल के अनुभव को भुला बैठे हैं। जानते हैं कि रामसरन को सज़ा होगी; धन व्यय होगा; वकीलों की गालियों और चपरासियों की फटकार के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त न होगा। फिर भी मुक़दमा लड़ने की तैयारी में जुटे हैं।

घर में पैसा नहीं। दिया कहाँ से जायगा ? पर पैसा तो दिया ही जाना है।

न्याय परमात्मा की दया नहीं, जो बिना दाम मिलती है। वह तो देवताओं का वरदान है जो धन के रूप में तपस्या चाहता है। धन का हवन करना ही होगा।

रामाधीन ने देखा कि धन आने का एक ही मार्ग है और वह है—पारिवारिक सम्पत्ति को गिरवी रखकर अथवा बेचकर। उसके पाँच बच्चे हैं और मुकदमे का पेट भोजन पाने से भरता नहीं वरन् रिक्त होता है, अधिक भोजन माँगता है।

वह अपनी सन्तान का भोजन उसे नहीं देगा। उसने निश्चय कर लिया कि पिता से अपना हिस्सा ले अलग हो जायगा। रामसरन मरे या जिये, इससे उसे कोई वास्ता नहीं। उसने दृष्टि ऊँची की।

पिता और पुत्र के नयन मिले। पर अलग होने की बात स्पष्ट कह देने का साहस रामाधीन में न था।

बोला—"काका, अब क्या होगा ?"

काका का कर्त्तव्य स्पष्ट था। बोले—"होगा क्या ? भगवान् की इच्छा हमारा सुख-शान्ति देखने की न थी, इसी से यह विपत्ति उन्होंने भेज दी है। जब अपना ही भाग्य खोटा है तो दूसरे पर क्रोध करने से अपना कुछ बनता नहीं, उसका कुछ बिगड़ता नहीं।"

"कुछ करना तो होगा ही!"

"हाँ, मुकदमा लड़ा जायगा। जिसने मेरे लिए अपना जीवन झोंक दिया उसे मैं बिना लड़े जेल न जाने दूँगा। जबतक दम है लड़ूँगा; और फिर अपना बेटा तो है ही।"

रामाधीन ने देखा, काका भावना के वश हैं। वह एक बार झिझका; पर झिझक ही झिझक में कहीं रह न जाय, इसलिए सब साहस एकत्र करने लगा।

यदि वह इस समय काका के प्रति सहानुभूति की भावना में बह गया तो कब और कहाँ किनारे लगेगा, यह नहीं कहा जा सकता।

और फिर नयन मूँदकर, समस्त बल लगाकर उसने कहा—"काका मैं अलग होना चाहता हूँ, मेरा हिस्सा बाँट दो।"

रामाधीन कह गया और उसके शीश से एक भार उतर गया। पर अब जब वह कह चुका तो एक भय उस पर छा गया।

वह यह कह कैसे सका? असम्भव सम्भव कैसे बना?

रामाधीन के वाक्य काका पर बिजली से गिरे।

उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ। आगामी संघर्ष में जिसे वे अपना दाहिना हाथ समझ रहे थे, वही अब उनसे टूट कर अलग हुआ चाहता है। प्रहार पर प्रहार। रामसरन की बिलखती नववधू ही उनके महान कष्ट का पर्याप्त कारण है और अब रामाधीन अलग होने की बात कर रहा है!

पहले उनमें ज्वाला उठी, पर दूसरे क्षण ही आँखों में पानी आ गया। उन्हें लगा कि वे अत्यन्त निरीह हैं। रामाधीन के पृथक हो जाने पर वे क्या करेंगे? रामसरन के लिए कैसे लड़ेंगे!

उन्होंने मुख फेर लिया। आँसू नयनों में एकत्र हो गये। पुत्र को अपनी यह दुर्बलता दिखलाना न चाहते थे। खाट पर से उठ गये। जाकर बैलों को भूसा डाला और भूसे की धूल पोंछने के बहाने नयनों से आँसू पोंछे।

इतने दिनों में उन्होंने जो कमाया है उसे क्या वे आज परीक्षा के समय खो देंगे? विपत्ति मनुष्य पर ही आती है। वही विपत्तियों का आधार है। उन्होंने पशुओं की सेवा करते-करते अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। रामा-

धीन यदि अलग होना चाहता है तो वे उसमें बाधक क्यों बनें ? उनके मरने पर तो लड़के पृथक-पृथक होकर ही रहेंगे । क्यों न वे अपने हाथों बाँट दें !

रामाधीन के अलग होने के पक्ष में जो तर्क थे वे भी उन्होंने देखे और उन्हें अनुभव हो गया कि रामाधीन में चाहे भ्रातृप्रेम और पितृप्रेम की कमी भले ही हो, पारिवारिक आवश्यकताओं के प्रति वह सजग है । नाती भी तो उनके ही हैं ।

एक मृदु मुस्कान उनके कपोलों पर झुर्री डालती निकल गई । वे खाट की ओर चले ।

रामाधीन काका पर अपने वाक्यों का प्रभाव आँक रहा था । उसे भय था कि काका उससे क्रुद्ध होंगे । इसलिए नहीं कि काका क्रोधी अधिक थे । काका ने तो साधु-संगति और परिस्थितियों से क्रोध को दबाना कायरता की सीमा से भी आगे तक सीख लिया था । फिर भी इस प्रस्ताव पर उनका क्रुद्ध हो उठना अस्वाभाविक न होता ।

वे खाट पर बैठ गये । बोले—"तो भई, अलग होना चाहते हो ?"

"हाँ ।" रामाधीन के नेत्र पिता के नेत्रों से मिलने का साहस न कर सके ।

"अच्छी बात है । रामसरन है नहीं । रामविलास खेत से आ जाय तो बातचीत कर लेंगे । मैं नहीं चाहता कि तुम लोग मेरे पीछे आपस में लड़ो । इसलिए मैं अपने हाथों सब बाँट जाऊँगा ।"

रामाधीन का हृदय, जो आशङ्का से भर रहा था, शान्त हो गया । बोला—"हाँ, यह ठीक है ।"

[२]

रामसरन की अवस्था सत्रह-अठारह वर्ष की थी । उसके विवाह को अभी तीन ही वर्ष हुए थे ।

उसकी पत्नी वैजंती बालिका ही थी । इस अवस्था में पति-वियोग उसके लिए सब से बड़ी विपत्ति थी । सब कुछ सहन कर सकती थी, पर यह असह्य था और इससे भी अधिक असह्य था उसका भविष्य, जहाँ रामसरन के लिए कारागार की व्यवस्था थी ।

घर में रामाधीन की पत्नी सहदेई मालकिन थी। रामविलास की पत्नी किसोरी और वैजंती के लिए वही सास थी, वही जेठानी थी। उसके आने के तीन वर्ष बाद ही सास का स्वर्गवास हो गया था, और तभी से वह रामावतार की गृहस्थी सँभाले हुए है। जिस योग्यता और कार्य-कुशलता का परिचय उसने इस कार्य में दिया है, उसके सभी प्रशंसक हैं।

रामविलास की पत्नी वैजंती से अवस्था में बड़ी विशेष नहीं; पर वह एक पुत्र की माँ है; इसलिए उसका भी घर में मान है।

सहदेई के विषय में एक बात उल्लेखनीय है। वह पति से अवस्था में दो वर्ष बड़ी है, इससे उसके वाक्यों में भार और अधिकार दोनों रहते हैं। पति को वह अनुभवहीन और बालक कहकर डाँट देती है। इस समय हिस्सा बँटवा लेने की सूझ भी सहदेई की ही है। नारी अपनी सन्तान के अधिकारों के प्रति पिता से अधिक जागरूक है।

वह जानती है कि सबसे अधिक व्यय उसके परिवार का है। मिलकर रहने में उसे लाभ है। पर अब वह जुवा नहीं खेलना चाहती। यदि रामावतार रामसरन के लिए खेत बेंचने पर तुल आयें तो निर्वाह की विशेष सम्भावना नहीं। जब परिवार पर कारिन्दे और पुलिस का कोप घहरा रहा है तो ऐसे समय उचित यही है कि उससे पृथक हो जाया जाय। अग्नि से बचने का उपाय अपने को अग्नि और उसके ईंधन से दूर हटा लेने में है।

वैजंती अभी आँसू पोंछ कर खिन्नमना बैठी थी कि रामाधीन का पुत्र शिवकुमार आकर उसके गले से चिपट गया। शिवकुमार की अवस्था चार वर्ष की थी।

वैजंती को उस समय कुछ अच्छा न लग रहा था। वह अपने से, घर से, सारी सृष्टि से असन्तुष्ट थी। रामसरन के कष्ट ने उसके संसार में महान् परिवर्तन कर दिया था।

शिवकुमार की यह क्रीड़ा उसे बहुत भाती थी, पर आज मानसिक स्थिति भिन्न होने के कारण उसे अच्छी न लगी। उसने बालक को झिटक दिया। वह सँभल न पाया और भूमि पर जा पड़ा।

माँ के पास जाकर शिकायत की—"चाची ने मारा है।"

सहदेई की स्थिति वही थी जो साधारण जन की होती है। वैजंती के पति के कारण परिवार पर यह विपत्ति आई है। पत्नी यदि पति के पुण्य फलों में आधे की अधिकारिणी है तो अपराध में अर्द्ध-दण्ड-भागी क्यों नहीं? इसलिए जब से यह समस्या खड़ी हुई है, सहदेई, वैजंती पर क्रुद्ध हो रही है।

इसीके कारण यह सब हुआ। इसीका अभाग परिवार के लिए घातक वज्र बन गया।

चटककर बोली—"क्यों री ..!" और इसके आगे जैसे उसका वाक्य अपने ही बल से मुँह में रुक गया।

वैजंती ने सहदेई के अपूर्ण वाक्य में कुछ पाया, जिस पर उसे विश्वास न हुआ। उसने शीश उठाकर जेठानी के मुख की ओर देखा और फिर उसका हृदय धक से हो गया।

वह समझती थी कि परिवार की प्रतिष्ठा की वेदी पर वह बलिदान है, इससे उसका स्थान महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। पति पिता की प्रतिष्ठा के निमित्त कारागार-निवासी बना है, और पिता अकेले उसी के तो नहीं हैं, सब के हैं। जो उसने किया वह सब के लिए। उसका समस्त भार भुगतना पड़ेगा उसे। वह प्रसन्नता, से गर्वभरी, उसे सहन करने को प्रस्तुत थी।

उसके कारण शिवकुमार इस प्रकार गिरा, इससे उसमें पश्चात्ताप का उदय हुआ था। सोच रही थी कि इतना अपने दुःख में खो जाना क्या अच्छा हुआ? निकट थी कि उठाकर उसे दुलारे। पर वह माँ के प्रति पुकार उठा। उसकी विचारधारा हठात् कुण्ठित हो गई; उसे होना पड़ा।

और उसपर जेठानी का यह रोष! यह क्यों? क्या उसका घर नहीं है? वह ससुर के प्रिय पुत्र की बहू है।

विद्रोह उसमें उठ खड़ा हुआ; पश्चात्ताप तिरोहित हो गया। इस क्रिया में उसे तनिक कष्ट अनुभव हुआ पर वह प्रतिक्रिया की शक्ति द्वारा दबा दिया गया। क्या उसे किसी बालक से कुछ कहने का अधिकार नहीं है? हाँ, उसने मारा और जानबूझ कर मारा। जेठानी के जो जी में आये

कर ले। देखूँ क्या करती है ?

अपने में भर कर विद्रोह की गाँठ-सी वह दृढ़ हो बैठी। बोली नहीं। केवल एक बार जेठानी की ओर दृष्टि उठाई।

जेठानी किवाड़ पकड़े बालक को पैरो से चिपटाये आग्नेय नेत्रों से उसकी ओर देख रही थी। क्रोध का कम्पन बड़े संयम से दबाये थी। उसके भीतर अनेक भाव विस्फोट के लिए प्रस्तुत थे और वह इस विस्फोट से पहले की पीड़ा अनुभव कर रही थी। उसका अस्तित्व बहुत दिनों से वैजंती के विरुद्ध उठ रहा था। आज अवसर पा उसकी सुप्त भूख जाग पड़ी। बोली—"बड़े तीसमार खाँ की बहू है न! किसी को क्या समझेगी!"

और एक क्षण प्रभाव की प्रतीक्षा करने के पश्चात् कहा—"मैं सब समझती हूँ, दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ। खेती-किसानी का काम करते छाती फटती है। अच्छा, बहाना मिल गया। जेल में जाकर बैठ गया। और यहाँ हम कमा-कमाकर दूसरों का पेट भरें, हमारे ही बच्चे दुतकारे जायँ, लतियाये जायँ।"

रामसरन के कार्य और उसके फल को इस दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है यह वैजंती को ज्ञात न था। वह समझती थी कि उसका पति वीरता का कार्य करके जेल गया है; परन्तु अब देखती है कि वह काम से जान बचाकर जेल गया है!

दोनों दृष्टिकोणों में कितना अन्तर है। पहिले दृष्टिकोण से रामसरन नर-श्रेष्ठ है, और दूसरे से वह कायर है। एक धक्का वैजंती को अनुभव हुआ।

सहदेई ने आगे बढ़ कर कहा—"खबरदार, जो आज से मेरे किसी बच्चे के हाथ लगाया होगा तो ''।"

वैजंती के जी में आई कि कह दे, बच्चा क्या वह घर की किसी वस्तु में हाथ न लगायेगी। पर सँभल गई। इस स्थिति में जो दुःख उसमें उमड़ रहा था उसी ने उसकी रक्षा की। वह चुप रही।

कुछ ही क्षण दुःख का आवेग वह सँभाल सकी। शीघ्र ही नयन लाल

हुए, उनमें जल भर आया और फिर बरौनियों में एकत्र होकर टपकने लगा। एक करुण असुविधा वैजंती को अनुभव हुई।

इस प्रकार निर्मम आघात उस पर कभी नहीं हुआ था। वह अनुभव कर रही थी कि प्रहार न केवल अनुचित है वरन् कायरतापूर्ण भी है। अपनी दुर्बलता वह दिखाना न चाहती थी। न बोलने का एक कारण यह भी हो गया कि वह अपना रोना जेठानी पर प्रकट नहीं होने देना चाहती थी। उसने जेठानी की ओर से मुँह फेर लिया।

जेठानी ने इसमें अपनी विजय देखी। वैजंती को, जिसका पति उसके परिवार की भूख-पीड़ा का कारण हो सकता है, वह कष्ट दे सकी है; यह क्या प्रसन्नता का विषय नहीं है?

उसने शिवकुमार को गोद में उठा लिया और आँगन में, जहाँ वैजंती बैठी थी, निकल आई। ध्यान से देवरानी को देखा और फिर बेटे को धमकाती हुई बोली—'जायगा फिर चाची के पास? बालक हैं कि चाची-चाची करते जान देते हैं। नहीं जानते कि चाची एक ही बिस की गाँठ है।"

आँसू वैजंती की असुविधा का कारण बन रहे थे। वह इस युद्ध में दोनों ओर से घिरी थी। एक ओर जेठानी थी जो निरन्तर प्रहार कर रही थी, और दूसरी ओर आँसू थे जो अपने तौर पर उसकी रक्षा करते हुए भी, उसे प्रहारों का उत्तर देने के अयोग्य बना रहे थे।

"बैठी सुन रही है। एक बार मुँह भी ..।"

और वैजंती से भूल हो गई। उसने धोती का पल्ला उठाकर आँसू पोंछे।

सहदेई ने यह देखा और प्रसन्नता की तरंग उसके हृदय में लहरा गई। उसके परिवार पर अभाग लानेवाली रो रही है, यह अत्यन्त शुभ है।

"बैठी-बैठी रोती ही रहेगी या कुछ काम भी करना है। यहाँ दूसरों का खून पसीना एक हुआ जाता है। अब मुट्ठी भर-भर कर रुपया निखट्टुओं के लिए वकील-प्यादों को देना पड़ेगा। भगवान् ऐसे अभाग से सब की रक्षा करें।"

उन्होंने हाथ उठाकर प्रार्थना की और यह प्रार्थना सहस्रों दंशनों की

भाँति वैजंती के प्राणों को भेद गई। आँगन में बैठा रहना असह्य हो गया। वैजंती उठी और अपनी कोठरी में जा पड़ी। जेठानी पीछे-पीछे गई। सुनाया—"काम न करने से भोजन का विशेष सुभीता न होगा। जा रे, शिवकुमार अपनी चाची से कह आ।"

अब वैजंती का बोल निकल ही गया। बोली—"अब तो जब बाँदी की तरह काम करूँगी तभी तुम्हारे यहाँ भोजन करूँगी।"

सहदेई अभी तक वैजंती से कोई उत्तर न पाकर जहाँ एक हलकी प्रसन्नता का अनुभव कर रही थी, वहाँ झुँझला भी रही थी। अब उत्तर पाकर जहाँ विजय की प्रसन्नता हुई वहाँ उसकी झुँझलाहट भी और बढ़ गई।

इसका इतना साहस कि मुझे, घर की मालकिन को, उत्तर दे!

बोलने लगी "असल की है···।"

वैजंती ने जोर से अपनी कोठरी का द्वार उस पर बन्द कर दिया। वह भौंचक रह गई। दो मिनट तक स्थिति समझने की चेष्टा करती रही और फिर ओठ बिचकाकर वहाँ से चली गई।

वैजंती खाट पर लेट कर इस नवीन समस्या को समझने और सुलझाने का प्रयत्न करने लगी। उसे अनुभव होने लगा कि उसका मूल्य रामसरन के मूल्यानुसार है। यदि रामसरन प्रतिष्ठित और प्यारा है तो वह भी प्रतिष्ठित और प्यारी है। यदि रामसरन कारावास-निवासी है तो घर ही उसके लिए कारावास बन जायगा; बनने की क्रिया में है।

[३]

रामाधीन का मित्र-मण्डल गाँव-भर में फैला था। समवयस्क प्रायः सभी उसके मित्र थे और विशेष रूप से मित्र वे थे जिनके परिवार से रामावतार की किसी प्रकार लगती थी। इस मण्डली में मित्रगण वृद्धों की आलोचना करते और उसमें से रस ग्रहण कर अपने जीवन को विशेष प्राणवान बनाते।

रामाधीन ने खलिहान की ओर देखा। कैसा बड़ा और ऊँचा यह गेहूँ

के सूखे पौधों का ढेर है। इसमें कितना गेहूँ निकलेगा ? जो निकलेगा उसमें से एक तिहाई उसका है। उतनी पूँजी से वह सरलता से अपना अलग काम चला सकता है। उस समय वह पूरी तरह स्वतन्त्र होगा। रामावतार, जो अब बात-बात में अपनी बात अड़ा देते हैं, कुछ न कह सकेंगे। जब वह स्वतन्त्र होगा तो उसका जीवन कितना सुखमय होगा ? अभी वह पत्नी के लिए एक छल्ला भी बनवाता है तो वैसे ही दो छल्ले रामविलास और रामसरन की पत्नियों के लिए भी बनने चाहिएँ। वह जानता है कि छोटी बहुओं को छल्लों की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि उसकी बहू को ; इसलिए वह उनके लिए बनवाना नहीं चाहता। फल यह होता है कि सहदेई, उसके पाँच बच्चों की माँ सहदेई, समस्त घर का प्रबन्ध करने वाली सहदेई, हाँ उस सहदेई के लिए भी वह कुछ नहीं बनवा सकता।

इस प्रकार पीड़न और अत्याचार उसपर क्यों है ? जो भूखा है उसे भोजन क्यों न दिया जाय, पर ऐसे हैं, जो बिन-भूख भोजन बाँट लेने को खड़े हैं। परिवार का यह वातावरण उसपर भारी होकर बैठ गया।

उसकी सन्तान है संख्या में पाँच और रामविलास का लड़का है एक। घर में वह कोई वस्तु लाता है, बच्चों में बँटती है। रामविलास के पुत्र से उसे शत्रुता नहीं है। वह उसे प्यारा लगता है। उसे उसने गोद खिलाया है। पर एक मुट्ठी मुरमुरे उसे देते समय ऐसा लगता है कि यदि यह न होता तो मेरे बच्चों को दो-दो मुरमुरे और मिल जाते।

यह अत्याचार उसपर क्यों है ? उसे शान्ति से रहने का अधिकार होना चाहिए। वह खुली लड़ाई लड़ने को तैयार है। पर जो एक विषैला वातावरण उस घर में से उसके मस्तिष्क में कुरूप विषवृक्ष को जन्म दे रहा है, उससे वह दुखी है।

सम्मुख के रीते खेतों में पशु चर रहे थे। खेत, जो चिरे हुए हृदय से अपने प्राणों के सहस्र-सहस्र खण्ड करके स्थिर ऊजड़ को उपहार दे चुके हैं, अब हल-चिन्ह युक्त, ठूँठ मात्र लिये सूर्य की सुनहरी धूप में चारों ओर दृष्टि की सीमा तक फैले हुए थे।

बँटवारा हो जाने पर यह खेत उसका होगा। इस समय इसे जोतने-बोने, इसके अन्न का उपभोग करने का अधिकार उसका है। परायों से वह कह सकता है कि यह उसका है, परन्तु क्या यह वास्तव में उसका है?

वह समझता है कि जो वस्तु उसकी है उसके साथ वह जो चाहे कर सकता है। उसे बेच सकता है, गिरवी रख सकता है। पर यही एक बात है जो वह समझ नहीं पाया है। वस्तु के अतिशय रूप से उसकी हो जाने पर भी वह जो चाहे उसके साथ न कर सकेगा। वहाँ भी उसकी इच्छा को पर-वस्तु-सम्बन्धी इच्छाओं की भाँति सिमट-सिकुड़ कर एक सीमा में बैठना होगा!

पाँच बच्चे उसके हैं। बिलकुल उसके हैं। उन्हें उसे पिता से बाँटने की आवश्यकता नहीं है। उनके उसके होने का प्रमाण न्यायालय में भी उससे नहीं माँगा जायगा। अधिक से अधिक रूप से जो कुछ उसका हो सकता है, वे हैं। पर क्या उन्हें बेचने का, गिरवी रखने का अधिकार उसे है?

पर खेत पर बेचने का, गिरवी रखने का अधिकार चाहता है। इसलिए कि वह कह सके कि यह खेत मेरा है। किसी अन्य का इसमें कुछ नहीं, मेरा है, केवल मेरा है।

पशु, श्वेत मक्खन-सी गायें, काले धूमिल कम्बलों-सी भैंसें धरती के हृदय को रौंदती और सूखे भूसे को चरती आ रही थीं। रामाधीन की दृष्टि उनपर जाकर अटक गई।

दाईं ओर पचास-साठ वृक्षों की अमराई थी, और दूर-दूर इक्के-दुक्के महुवे, आम और जामुन के वृक्ष खेतों की विस्तृत एकरंगता में एक विचित्र कवित्वमय विविधरंगता ला रहे थे। क्षितिज के निकट तरुओं की हरियाली रक्तिम नीलिमा में होती हुई नीले आकाश में मिल गई थी। महुवों के पत्तों से झड़ती हुई धूप की रेशमी तरंगें वातावरण में थिरक रही थीं। उसके सोने से जगमगाते स्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन्होंने जैसे हृदय को नयन दे दिये। और रामाधीन उन्हीं की जटिल सरलता में जाकर उलझ गया। एक मोहक रहस्यमय आवरण उसके प्राणों पर छा गया।

वह सब कुछ भूल गया। यह अत्यन्त गम्भीर सुख के क्षण थे, जिन्हें स्थिर करने के लिए योग साधा जाता है, साम्राज्य और प्रासाद बनाये जाते हैं, हत्याएँ और आत्म-हत्याएँ की जाती हैं। वे वहाँ बिखरे पड़े थे। मानव ने अपनी सभ्यता की दीवार उनके और अपने बीच में खड़ी कर ली है।

अचानक रामाधीन का ध्यान भंग हुआ। खरखराहट के शब्द उसके कानों में पड़े। एक भैंस खलिहान में से गेहूँ का पूला खींच रही थी।

"कहाँ है रे भगवनवा ?" वह उच्चस्वर से चिल्लाया और भगवनवा की प्रतीक्षा न कर खाट पर से स्वयं उठ लाठी ले दौड़ा। भैंस पूला खींचे लिये जा रही थी। रामाधीन ने एक लाठी भैंस के मारा तनिक ज़ोर से; क्योंकि विचार-धारा में बाधा पड़ने के कारण वह क्रुद्ध हो उठा था। भैंस पूला छोड़-कर दूसरे खेत की ओर चली गई। रामाधीन ने पूला उठाकर खलिहान में डाल दिया और भैंस को दूर तक हाँक आने के लिए उसके पीछे चला।

ग्वाले का कहीं पता न था। रामाधीन ने भैंस को लाठी मारकर दूर भगा दिया और लौट पड़ा कि देखा हरिनाथ कायथ सम्मुख खड़े हैं।

हरिनाथ का दर्पण-सा चमकता चिकना-चौड़ा ललाट और उसके आग्नेय नेत्र। उसके प्राण इस दृष्टि के आक्रमण से सिहर गये।

हरिनाथ गाँव के पटवारी के साले और दूर के सम्बन्ध से कारिन्दे के बहनोई होते थे। वे उनमें से थे जो प्रतापी होते हैं और जिनका इक़बाल उनके मुख-मण्डल पर झलकता होता है।

हरिनाथ की नासिका रामाधीन के ललाट को स्पर्श कर गई और विद्युत्-गति से रामाधीन एक डग पीछे हट गया। मार्ग छोड़ एक ओर हो गया। पर हरिनाथ का मार्ग जैसे रामाधीन के पीछे-पीछे था और वह उसके सम्मुख खेत में जा खड़ा हुआ। जिस दृष्टि से सर्प कोमल, उड़ने में असमर्थ रक्तवर्ण, माँ में करुणा उत्पन्न करने वाले गौरइया के बच्चों को भक्षण से पहले उनके घोंसले में देखता है उसी दृष्टि से हरिनाथ ने रामाधीन को देखा।

रामाधीन विमूढ़ हो गया। फिर जैसे उसकी चेतना जगी। परम विव-

शता में विद्रोह उत्पन्न हो गया।

पूछने को हुआ—"क्या बात है हरिनाथ दादा?"

यदि उसने यह वाक्य कह दिया होता तो दादा शब्द की आत्मीयता से हरिनाथ पर कुछ प्रभाव पड़ सकता था। पर उसके मुख से वाक्य निकलने से पहिले ही हरिनाथ ने आँखें लाल करते हुए कहा—"क्यों बे रामाधीन, भैंस को इस प्रकार क्यों मारा?"

रामाधीन ने यदि भैंस को मारा तो कोई नवीन बात नहीं की। भैंस जीवन-भर धीरे-धीरे, और अन्त में पूर्णतया, मार डालने के ही लिए तो होती है! वह गेहूँ का पूला खा रही थी, यह बात न हरिनाथ को, न रामाधीन को सूझी।

इस तथ्य का महत्व रामाधीन को विशेष न दिखाई पड़ा। विवाद उसकी सीमा से परे था। जो प्रबल सत्य था वह उसके सम्मुख स्पष्ट हो गया।

पटवारी के साले और कारिन्दे के बहनोई की भैंस को, फिर उनकी ही आँखों के सामने स्पर्श करने का, और वह भी लाठी से स्पर्श करने का, उसे कोई अधिकार न था। वह यदि गेहूँ का पूला लिये जा रही थी तो यह न उसका अपराध था और न उसके स्वामी का। अपराध वास्तव में पूले के स्वामी का था। यह स्थिति दोनों पक्षों ने स्वीकार कर ली।

रामाधीन ने कोई उत्तर न दिया। वह दे न सका। उत्तर था ही नहीं। वह दो डग और पीछे हट गया।

हरिनाथ उसके पीछे न गया। जहाँ था वहीं खड़ा उसे घूरता रहा। वह दृष्टि रामाधीन को असह्य हो गई। वह घूमकर अपने खलिहान की ओर चला।

हरिनाथ ने दो लम्बे डग रखकर रामाधीन की गर्दन अपनी मुट्ठी में पकड़ ली और फिर दूसरे हाथ से उसके मुँह पर प्रहार किया।

रामाधीन क्रोध से जल उठा। उसकी आत्मा को वे प्रहार करोड़ों बिच्छुओं के दशनों के समान कष्टकारी हुए। पर उसने अपने पर संयम रक्खा; रखना पड़ा। प्रहार उसने सह लिये।

हरिनाथ सन्तुष्ट और असन्तुष्ट उसकी ओर देखता रहा और वह पिट-कर, छूटकर अपने खलिहान में गया।

हरिनाथ सोच रहा था, उसने और क्यों नहीं मारा! रामाधीन भयभीत था कि कहीं किसी ने देखा तो नहीं। देखे जाने की लज्जा असहनीय थी। वह जाकर अपनी खाट पर बैठ गया, तब कहीं सिर ऊँचा कर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कोई दिखाई न पड़ा।

हरिनाथ जाकर अमराई में लुप्त हो गया।

सूर्य की किरणें और भी प्रखर हो गईं। रामाधीन का हृदय ज़ोर से धड़कने लगा। यदि उसकी पत्नी और सन्तान न होती तो आज वह हरिनाथ का खून कर देता और फिर हँसता-हँसता फाँसी चढ़ जाता। मरना एक ही बार तो होता है।

नारी उसके पुरुषत्व की बेड़ी बन गई है। सर्प के दाँत तोड़कर जिस प्रकार निकम्मा बना दिया जाता है उसी प्रकार नर-नारी का सम्बन्ध करके पुरुष का पौरुष नष्ट किया जाता है।

पुरुष के पौरुष की मुक्ति नारी की मुक्ति में है।

[४]

तर्क से भले ही हो, तथ्य में यह आवश्यक नहीं कि किसान के घर में अन्न हो ही। तथ्य तर्क का अनुगामी नहीं, तर्क को ही तथ्य का समर्थन प्राप्त करना पड़ता है, तभी वह विज्ञान बनता है।

जब तथ्य और तर्क में सबल असामञ्जस्य और विरोध उत्पन्न हो जाता है, तभी नाना प्रकार की वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं की सृष्टि होती है।

जो होना चाहिए; वह नहीं होता। यही तो समस्या है।

रामाधीन प्रतिष्ठित था— सपरिवार। प्रतिष्ठा का अर्थ यह नहीं कि पात्र को भोजन-वस्त्र की चिन्ता न हो। रामाधीन के खलिहान में अब साठ-सत्तर मन अन्न पड़ा था, पर बीज उधार लेकर डाला गया था। घर में मटर भी

इतनी नहीं थी कि खलिहान से अन्न आने तक परिवार का निर्वाह हो सके। इसलिए जब तीसरे पहर रामाधीन पिता को खलिहान सौंप घर लौटा तो उसके सिर पर गेहूँ का गट्ठर था।

रामाधीन ने सोचा था कि इन दिनों दो-चार दिन पूरे परिवार को गेहूँ की रोटियाँ मिल जानी चाहिएँ, वैसे तो सारे साल जौ-मटर खाना ही है।

गेहूँ वह बोता है केवल हारी-बीमारी में खाने के लिए, पर आवश्यकता पड़ने पर वह भी लगान की मद में बेच दिया जाता है। इससे आगे किसान व्यापारी के यहाँ मुट्ठी भर अन्न के लिए हाथ फैलाता है।

बालकों को आज गेहूँ की रोटी और घुघरी मिलेगी। उनके नयन खिल उठेंगे। शिवकुमार, ननको, रामश्री, खिलावन और श्रीनिवास के हँसते मुख उसके सम्मुख घूम गये। इन मुखों में न जाने क्यों रामविलास के पुत्र हरि-सुन्दर का मुख न था।

वह कुछ देर से आया और रामाधीन को लगा कि उस अकेले ने उन पाँचों के ऊपर घोर अत्याचार किया है। हरिनाथ का व्यवहार भार के कारण, सन्तान की सुखद कल्पना के कारण उसके मन से उठ गया था। उसका अपना निजत्व संकुचित, अनुदार ग्रामीण मतानुसार जाग पड़ा था।

गाँव में रीति थी एक साथ मिल कर पेट भरने की नहीं, प्रतिष्ठित रहने की नहीं, वरन् पृथक पृथक होकर भूखों मरने की, अपमानित और लाञ्छित होने की; घर में कलह और बाहर कलह बोने की। कलह के रस से अन्दर-बाहर सभी सिञ्चित थे।

रामाधीन इसी बेल में फला था। भूमि से जो कुछ उसने पाया था वही फूल का प्राण बन उसमें समाया था। अब वह विस्तार पाने की, उसके कार्यों में अपने को धीरे-धीरे व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा था। दो मुट्ठी दानों के लिए किसी को भी बैरी बना लेना, किसी के भी तलवे सहला देना गाँव के जीवन में साधारण घटनाएँ थीं।

रामाधीन ने बोझ आँगन में डाल दिया। उसने कुट्टी के स्थान को देखा। वह साफ़ पड़ा था। हरिसुन्दर से जो क्रोध प्रारम्भ हुआ था वह यह देखते

ही रामविलास के विरुद्ध भड़क उठा। उसे लगा कि रामविलास ने अभी कुट्टी नहीं काटी। पशुओं को अभी चारा नहीं मिला।

ज़ोर से बोला—"कहाँ है री, रामविलास ? क्या आज पशु भूखे ही रहेंगे ?"

रामविलास की पत्नी ने यह प्रश्न सुना। उत्तर उसके पास था। पर वह जेठ के सम्मुख बोले कैसे ? इसलिए वह कीड़े लगे महुवे धूप में फैलाती, उत्तरभरी, उत्तर न दे पाई।

प्रश्न सहदेई से किया गया था। उसे मालूम था कि प्रश्न उससे ही किया गया है पर अभी उसने सुनना उचित न समझा। उसने कटोरे को परात पर गिर जाने दिया और उनकी लम्बी खनक में प्रश्न और उत्तर दोनों खो गये।

हरिनाथ के प्रति जो क्रोध था वह अब अवचेतन में से रामविलास के विरुद्ध प्रकट हो गया। वह फिर चिल्लाया—"क्या पशु आज भूखे मरेंगे ? क्या इस घर में मेरा ही हिस्सा है। काम करने को मैं और खाने को सब कोई ?"

किसोरी और सहदेई भिन्न-भिन्न कारणों से चुप रहीं। रामाधीन का असन्तोष जैसे उबल पड़ा। तभी खिलावन अपने पिता को देखकर दौड़ा और आँगन में पड़े गेहूँ के भार के ऊपर जाकर औंधा लेट गया। रामाधीन ने झटके से उसका हाथ पकड़ उसे उठाया। पूछा—"रामविलास कहाँ है ?"

खिलावन रुआसा हो आया। बोला—"चाचा, ताल नहाने गये हैं। ननको, रामसिरी को ले गये हैं, मुझे नहीं ले गये। नहाने चलोगे ? मैं भी....।" इतना कह वह मैला-पीला सूखा-सूखा बालक खाँसने लगा। खाँसते-खाँसते जैसे उसका दम फूल आया। कफ़ का धूलि-मिश्रित उगाल उसके नंगे शरीर पर वह निकला।

रामाधीन ने उसके बदन को हाथ से पोंछा। हाथ को दीवार पर पोंछते हुए कहा—"तुझे खाँसी हो रही है। ताल कैसे नहायेगा ?"

हलके तौर पर मन में उठा कि रामविलास जो खिलावन को साथ नहीं

ले गया सो ठीक ही किया है। पर दूसरे क्षण ही रामविलास के प्रति यह प्रशंसात्मक भाव तिरोहित हो गया।

वह बड़बड़ाया—"बस खाना और नहाना; इसके अतिरिक्त वह करता क्या है?"

सहदेई अब भी चुप रही। किसोरी को लगा कि जेठानी लड़ाई करवाना चाहती है, तभी चुप्पी साधे है। सहदेई घुन्नी नागिन है; जब डसती है तो उसका तोड़ नहीं है।

कोई उत्तर न पा रामाधीन बाहर पशुशाला में गया। उसके लिए पशु अपने से पहले थे। ग्राम्य-जीवन की आधार-शिला उन्हीं के कन्धों पर है।

उसने कल्पना की थी कि नाँदें सूखी पड़ी होंगी। पशु मुँह लटकाये खड़े होंगे। अब तक वह लिहाज़ करता आया है, पर अब सम्भव नहीं। वह अभी ताल पर जाकर उसके कान खोल देगा। घर में बड़ा वह है; सबसे अधिक काम वह करता है।

परन्तु जब उसने पशुगृह में प्रवेश किया तो देखा कि तीन बैल बैठे आनन्द से जुगाली कर रहे हैं; एक हरी घास-मिश्रित कुट्टी सन्तोष के साथ खा रहा है।

रामाधीन का क्रोध एक दम नीचे आ गया। वह जानता है कि इस मौसम में पशुओं के लिए हरी घास जुटाने का कार्य रामविलास के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। इस ओर से सन्तुष्ट हो वह पुनः घर लौट पड़ा।

देखा खिलावन गेहूँ की बाल तोड़ कच्चे दाने कफ़-सने मुँह में भर रहा है। दृश्य असाधारण था।

रामाधीन आगे बढ़ गया। दूसरे आँगन में उसने देखा किसोरी धान निकाल रही है; सहदेई धागे की आँटी बना रही है। उसने दृष्टि दौड़ाई पर छोटी बहू नहीं दिखाई पड़ी। वह चाहता था कि किसी को गेहूँ निकालने का काम सौंप दे और फिर निश्चिन्त होकर नहाने-धोने जाय।

पूछा—"रामसरन की बहू कहाँ है?"

रामसरन का नाम लेते ही सब समस्या उसके सम्मुख प्रकट हो गई।

वह रामसरन से कैसे छुटकारा पाये। पुरुष को परिवार में 'पावना' होना चाहिए। पर रामसरन परिवार का 'देना' है। वह परिश्रम करता है और व्यय होगा रामसरन के ऊपर।

सहदेई कुछ न बोली। रामाधीन का असन्तोष और भी बढ़ गया। बोला—"क्या कर रही है वह लाड़ले बेटे की बहू?"

"कर क्या रही है! किवाड़ बन्द किये, सेज बिछाये आराम कर रही है।"

जब सारा परिवार परिश्रम-द्वारा पीसा जा रहा है, तब वह आराम कर रही है! और वह उस रामसरन की बहू है जिसके ऊपर अब परिवार को अन्धाधुन्ध खर्च करना होगा।

"इतना आराम चाहिए तो किसी राजा महाराजा के यहाँ पैदा हुई होती। वह हवालात में जाकर बैठ गया है; पिसने को मैं हूँ। कह दो, उठकर गेहूँ पीट डाले तो भोजन मिलेगा।"

सहदेई जो चाहती थी वह विजय उसे प्राप्त हो गई।

किसोरी ने मन में कहा कि जेठानी जेठ को इधर-उधर मोड़ने में कितनी समर्थ है।

वैजंती ने जेठ के ये वाक्य सुने। अभी सूखे नयन फिर भर गये। वह कितनी असहाय है। जेठ के सम्मुख वह गूँगी है। ससुर के सम्मुख वह गूँगी है। जो उसपर दोष लगाते हैं उन्हीं के हाथ में निर्णय का अधिकार है। पिसते-पिसते पिस जाने के अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था ने उसके लिए कोई मार्ग नहीं छोड़ा है।

नारी के इन विवश आँसुओं ने ज्वाला बनकर हिन्दू समाज के पौरुष और उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया है। यदि पाप और पुण्य की परिभाषाएँ ठीक हैं, यदि इच्छा शक्ति में कुछ बल है, तो देश की दुर्दशा का कारण आधी जन-संख्या की मूक आहें हैं।

वैजंती ने सोचा था कि कोठरी से बाहर नहीं निकलेगी। पर इस प्रकार विरोध-प्रदर्शन का फल? वह नारी है। आदि से अन्त तक पुरुष की दासी

है। समाज की दासी है। दासी के विरोध का मूल्य क्या है? दासी को यदि कुछ चाहिए, यदि न्याय चाहिए, तो वह सम्पूर्ण समर्पण से ही प्राप्त हो सकता है।

उसने उठकर धीरे से किवाड़ खोले, मोगरी उठाई और रामाधीन ने, दोनों बहुओं ने गेहूँ की बालों पर मोगरी गिरने का शब्द सुना। मोगरी के साथ उसके आँसू भी गेहुँओं पर गिर रहे थे।

प्यास सब को लगती है, पर परिश्रम के समान चिरप्यासा कोई नहीं है। कुछ ही क्षणों में वह वैजंती के आँसुओं को पी गया। एक बार बायें हाथ की उँगली पर मोगरी खाकर वह चैतन्य हो तुरत पीसे जाने के लिए गेहूँ को भूसे से अलग करने लगी।

आज घर में त्योहार था। नया गेहूँ आया है। पर वैजंती को इससे क्या? वह भोजन नहीं करेगी। पता नहीं हवालात में वे कैसे हैं? खाने को मिलता है या नहीं। गेहूँ क्या मिलता होगा। नहीं, वह गेहूँ छुवेगी भी नहीं।

[५]

अवध में, पूर्वी पंजाब और आगरा प्रान्त के ग्रामों की भाँति, चौपालें नहीं होतीं। हो सकता है कि भूमि की कमी इसका कारण हो।

चौपालों के अभाव में द्वार ही बैठक हैं। वहीं अधिकतर घरों में कुट्टी कटती है। और वहीं ऊँची अथवा अत्यन्त नीची सुतली से बुनी खाट पर युवा-वृद्ध सरोते से सुपारी काटते जाते हैं और बातें करते जाते हैं।

रामाधीन भोजन कर द्वार पर आ लेटा। रामविलास खलिहान, पिता के पास, गया। रामाधीन ने सोचा दो घड़ी आँख लग जाय तो शरीर की थकान उतर जाय। पर जिस घर में बालक हों वहाँ आँख लगना इतना सरल कार्य नहीं है। ननको आकर उसके कण्ठ से लिपट गई। बोली—"हमारी गुड़िया देखोगे दादा?"

रामाधीन ने उसे टालने के बहुत प्रयत्न किये। पर उसकी गुड़िया ने आज नीम की सींकों का नया हार जो पहिना था; अदृश्य कानों में अपने से

भी बड़ी बालियाँ जो पहिनी थीं; और माथे सड़क के किनारे से उठाई सिगरेट की पन्नी की टिकुली जो लगाई थी।

ननकी सोच रही थी कि उसकी गुड़िया व्याहने-योग्य हो गई है। जब गुड़िया का शृङ्गार हो, और वह व्याहने-योग्य हो, तब दादा को अवश्य ही देखना होगा। चार वर्ष की ननकी अपनी गुड़िया को शीघ्र व्याह कर जीवन भर के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहती है।

पर दादा हैं कि सोना चाहते हैं, और ननकी उन्हें गुड़िया दिखाये बिना मानेगी नहीं।

"भाग जा। मैं नहीं देखता तेरी गुड़िया। नानी कहीं की।" वह क्रुद्ध हो आया।

ननकी, जो अब तक पिता के गले से चिपटने में लगी थी, छटक कर दूर खड़ी हो गई। उसका मुँह जरा-सा निकल आया। दादा उसकी गुड़िया नहीं देखेंगे। क्यों नहीं देखेंगे? वे उससे नाराज क्यों हैं?

रामाधीन ने पुत्री के मुख का भाव देखा। वह द्रवित हो गया। बोला—"जा, ले आ अपनी गुड़िया। अच्छी नहीं हुई तो नहीं देखूँगा।"

ननकी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा, जैसे सूरज के सामने सूरज-मुखी। हाथ चमका-मटका कर बोली—"दादा, वह अच्छी है, बहुत अच्छी। बाली-बिछिया सब पहने है।"

और उछलती गुड़िया लेने घर में भाग गई।

वह आकर फिर जगायेगी इससे रामाधीन छत में लगी टेढ़ी-बाँकी कड़ियों को गिनने लगा।

ये कड़ियाँ न गोल थीं, न चौकोर। तिकोनी भी न थीं। वे रेखा-विज्ञान में टेढ़ेपन की अट्ठाईस सम्भावनाओं का उदाहरण थीं।

रामाधीन उन्हें गिनने लगा। कभी सोलह तक, कभी बीस तक वह सविश्वास गिन जाता, पर इससे आगे उसका संख्या-ज्ञान गड़बड़ाने लगता था।

यह नहीं कि रामाधीन पढ़ा नहीं था। वह पढ़ा था और बड़े चाव से

तख्ती पर दूध से काजल पोत, घोंटे से चमका, बुदके में तीनतीन बार खड़िया डाल, रस्सी से दो पुस्तकों को कन्धे से लटका, चिट्टीरसे का गौरव अनुभव करता, उछलता-कूदता पाठशाला गया है।

उसने तख्ती पर लिखा ही नहीं। उसकी और उसके द्वारा अपनी शक्ति-परीक्षा भी ली है। पाठशाला से लौटते समय दल-युद्धों में वह तलवार और ढाल दोनों बनी है।

एक बालक का सिर फोड़ने के उपलक्ष्य में जब शिक्षक ने अपने सात वर्ष पुराने बेंत-द्वारा उसके प्रति शिक्षकोचित व्यवहार किया तो नव वर्ष के होने पर भी उसने घोर आपत्ति की और पाठशाला से असहयोग कर दिया।

उसने चाहा था कि ऐसे स्थान पर जो कुछ सीखा हैं सब भुला दिया जाय। पर जान पड़ता है कि पटवारियों, शिक्षकों, बनियों और कारिन्दों ने उसके विरुद्ध भीषण षड्यन्त्र खड़ा कर लिया है। अपने प्रत्येक व्यवहार में संख्या सम्मिलित करने की इन्होंने सौगन्द खाली है। इसी से अक्षर भुला सकने पर भी वह संख्या भुलाने में पूर्णतः सफल न हुआ।

वे कड़ियाँ उसके लिए समस्या बन रही थीं। कभी दायें भूल हो जाती थीं, कभी बायें।

ननको अपनी गुड़िया ला रही थी कि बड़ी काकी ने उसे प्रसन्न देखकर पूछा—"ननको, क्या छिपाये ले जा रही है?"

ननको की माँ के कान ऐसी बातों को बड़ी शीघ्रता से सुनते थे। उसने बर्तन माँजते हुए पुकारा—"क्या है री ननको?"

ननको चाहती थी कि उसकी गुड़िया को सबसे पहले दादा देखें। वह बोली नहीं, द्वार की ओर भागी।

माँ का सन्देह पक्का हो गया। अवश्य कुछ उठाकर लिये जा रही है। वह इन बच्चों से हैरान है। कितना कहते हैं कि मुन्ना राजा घर की चीज बाहर नहीं ले जाते। पर ये कमबख्त हैं कि कभी उसकी सीख नहीं सुनते।

वह बर्तन छोड़ उसके पीछे दौड़ी।

ननको ने देखा कि दादा के पास हरे कृष्ण दादा बैठे हैं और बातचीत कर रहे हैं। रामाधीन बोला—"बिट्टी, अब ले जाओ, पीछे देखेंगे।"

ननको का मुँह उतर गया। वह रुवासी हो गई। पिता से पुनः आग्रह करे उसके लिए समय न रहा। दौड़ती माँ आ पहुँची। उसने किवाड़ के पीछे से हाथ बढ़ा कर उसे घर में घसीट लिया। बोली—"क्या है री? दिखा, नहीं तो अभी उठाकर पटक दूँगी।"

और फिर उसे झकझोर डाला। ननको चिल्ला पड़ी। गुड़िया हाथ से छूट नीचे गिर पड़ी। वह दादा से शिकायत करने चली।—"दादा, अम्मां ने मारा।"

सहदेई ने देखा कि ननको जो छुपा कर ले जा रही थी, वह उसकी गुड़िया थी। अब तक ननको के सहारे जो क्रोध बढ़ रहा था वह किसोरी पर जा पड़ा।

"देखती नहीं है, मेरी बेटी को व्यर्थ दोष लगाती है।" और उसने निश्चय कर लिया कि अवसर पाते ही वह किसोरी से इसका बदला चुकालेगी। हरिसुन्दर अभी ढाई वर्ष का है। तनिक और बड़ा हो जाये तो—कितनी नीच वृत्ति है इसकी। तनिक सी लड़की पर दोषारोप, राम राम। और वह भुनाती किसोरी और वैजंती पर क्रुद्ध दृष्टि डालती अपने काम में लगी।

[६]

हरे कृष्ण ने कहा—"रामाधीन भाई, समय बुरा है। कोई किसी का नहीं। समय था जब परिवार मिले रहते थे। एक-एक परिवार में साठ-साठ व्यक्ति होते थे। क्या मजाल कि उनसे कोई आँख मिला जाता। बँधी मुट्ठी बँधी ही होती है।"

रामाधीन कुछ सोचने को बाध्य हुआ।

हरे कृष्ण ने कहा—"मैं तो अपने घर की बात जानता हूँ जब दोनों काका और दादा एक साथ थे। घर में हम सब छोटे-बड़े मिलाकर पन्द्रह मर्द थे। कोई प्यादा, कोई कारिन्दा तू-तड़ाक से नहीं बोलता था। नाक ऊँची थी;

घर भरा-पूरा था। पर जब से अलग-अलग हुए हैं सब कुछ जैसे हवा हो गया। यह हरिनाथ, जो सदा गिड़गिड़ाया और हाथ जोड़ा करता था, अब सिंह बना हुआ है।"

रामाधीन के विचार गहरे हो गये।

"किस सोच में पड़ गये भई? यह तो संसार की रीति है। मिलकर रहने से किसका सरा है। और अलग हो जाने पर तो जैसा होता है निभाना ही पड़ता है। हाँ, कहो रामसरन का क्या हुआ?"

यह एक ऐसा विषय था जिस पर कुछ कहना भय से खाली न था। यदि रामाधीन रामसरन के प्रति सहानुभूति दर्शाता है तो क्या पता कि कल यह बात कारिन्दे तक न पहुँच जायगी?

गाँव का प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के विरुद्ध उसे सूचना पहुँचाता है। इसी नीति के बल पर वह डेढ़ पसली का व्यक्ति निवार के चिकने पलंग पर बैठ गुलाब जल भरवा कर हुक्का पीता है।

उसके मौन ने समस्या हल कर दी। हरे कृष्ण ने कहा—"रामसरन ने जो किया है छः आदमी और ठीक समय पर ऐसा ही करने वाले मिल जायँ तो कारिन्दों के व्यवहार में पर्याप्त सुधार हो सकता है। रामसरन ने जो किया उसके लिए ऊपर से लोग चाहें जो कहे, पर भीतर से सभी उसके प्रशंसक हैं।"

रामाधीन ने रामसरन के प्रश्न को अब तक सहदेई की दृष्टि से देखा था। वह दृष्टि भयातुर नारी की दृष्टि थी। प्रतिष्ठित पुरुष का दृष्टिकोण उसमें जाग न पाया था।

उसे आश्चर्य हुआ कि कोई संसारी पुरुष रामसरन के कार्य की प्रशंसा कर सकता है। जो धक्का लगा उसे वह हरेकृष्ण से छिपा गया। बोला—"हरे कृष्ण, जो कुछ उसने किया वह देखने में भला भले ही लगे, उससे परिवार पर विपत्ति के अतिरिक्त और क्या आ सकती है?"

हरे कृष्ण ने संसार रामाधीन से अधिक देखा था। वकीलों से उसने बहुत-कुछ सीखा था। नगर का पानी भी वह कुछ समय पचा पाया था।

अक्षर-ज्ञान उसे विशेष न था पर संसार के विभिन्न मूल्यों और मानों के विषय में उसकी सम्मति पर्याप्त शुद्ध थी।

रामाधीन की भावना हरे कृष्ण समझ गया और उसने वार्तालाप का विषय बदल दिया।

"परसों रत्तू काका की खाट भूतों ने फिर उलट दी।"

रामाधीन को इस विषय में रुचि थी। भूतों पर उसे पक्का विश्वास था। बोला—"भई, मैं तो पहले ही कहता था कि भूत हैं और सदा रहेंगे। कल खलिहान पर से आते दोपहर रात हो गई। घर अकेला था; आना पड़ा। सुक्खू बाबा की अमराई में होकर आ रहा था कि पत्तों की खड़खड़ सुनाई दी। मैंने सोचा, सियार होगा।

"पर ध्यान से देखा तो छायामूर्तियाँ दिखाई दीं। उनके उलटे पैर मैंने नहीं देखे, गिनगिनाती आवाज मैंने नहीं सुनी ; पर इसमें संशय नहीं कि वे भूत ही थे। मैंने तुरन्त हनुमान-चालीसा का पाठ प्रारम्भ किया। जहाँ मैंने, भूत पिशाच निकट नहिं आवै, महावीर जो नाम सुनावै का पाठ किया तो उनमें भगदड़ मच गई। मेरा सन्देह पक्का हो गया। जीभ पर हनुमान-चालीसा हो और हाथ में लाठी तो मैं किसी भूत से नहीं डरता। महावीर स्वामी का नाम लिया नहीं कि प्रेत सिर पर पाँव रख कर भागे नहीं।"

रामाधीन अन्तिम वाक्य कह नहीं पाया था कि भगौती पण्डित ने मार्ग चलते-चलते झाँका।

"आओ काका।" हरे कृष्ण ने निमन्त्रित किया।

काका आये ही इसलिए थे।

खलिहान से अन्न आने की प्रतीक्षा में घर का अन्न चुक गया था। वे एक अमावट के साथ दो मुट्ठी बहुरी खा, एक लोटा पानी पी, परमात्मा का यश गा, जीवन से कुछ असन्तुष्ट होकर उठ आये थे।

यह असन्तोष आता था और चला जाता था। वे भूखे-प्यासे, भरे पेट, खाली पेट, पैंतीस-छत्तीस वर्ष खींच ले गये थे।

भीतर आकर उन्होंने कहा—"महावीर स्वामी की दया से ही हम और

हमारे बाल-बच्चे हैं, नहीं तो ये भूत-प्रेत कभी का उन्हें खा चुके होते। हनुमान चालीसा का महातम इससे भी बड़ा है। हमारे मँझले काका सुनाया करते थे कि पांडे के पुरवा के उस ओर एक पाठक थे। बेचारों की दशा बुरी हो गई। दाने दाने को मोहताज हो गये। एक दिन काका खेत से लौट रहे थे तो उन्होंने देख लिया। दौड़ कर चरणों में गिर पड़े। काका ने कहा—हनुमान चालीसा का पाठ करो। बजरंगी सब दुःख दूर करेंगे। तब से उसने हनुमान चालीसा का पाठ प्रारम्भ कर दिया और हनुमान जी एक ही मास में प्रसन्न हो गये। घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होते ही जैसे समय बदल गया। पाठक ने जहाँ हाथ डाला, सोना पाया। खेत में उपज बढ़ गई। मकान पक्का हो गया। और वह लड़का त्रिलोचन पाठक आज भी हेड मुदर्रिसी कर रहा है।

"बजरंगी के नाम में ऐसा बल है। भूत-प्रेत तो उनकी छिंगुनी देखते ही फुर्र हो जाते हैं।"

इतना कह भगौती काका महावीर स्वामी की भक्ति में सराबोर, आनन्द में मग्न, ध्यानावस्थित, हो गये। नयन मूँदे, भौंहें झुकीं और दो बूँद हृदय का जल उनमें आ गया।

पौरुष और त्याग का जो आदर्श महावीर युगों से सम्मुख रख गये हैं वह आज तक लाँघा नहीं जा सका। सात्विक पराक्रम का ऐसा उदाहरण अन्यत्र अप्राप्य है।

हरे कृष्ण और रामाधीन भी भक्ति से अछूते न रह सके। महावीर स्वामी ने उनकी आत्माओं को भी स्पर्श कर दिया। वन्दिनी, विरहणी सीता के सम्मुख अशोक वाटिका में परित्राण की स्वयंसेवक महावीर मूर्ति उनके सम्मुख आ गई। संजीवनी धारण किये आकाश में विद्युत् गति से लक्ष्मण के प्राणरक्षार्थ वे सर्र से निकल गये।

इस पवित्रता और शान्ति के वातावरण में कुछ क्षण तीनों मौन रहे। बाहर सूर्य की देन नीम और इमली के पत्तों से छन-छन कर भूमि पर शीतल और तप्त रंगों का गलीचा बना रही थी।

इस वातावरण ने जन-मन में जहाँ एक आनन्द और भावुकता की सृष्टि की, वहाँ एक व्यापक, प्रेरक भय भी उन पर छा गया। मौन सर्वसम्मति ने वार्तालाप का विषय बदलना तय कर लिया।

"सुना है, अबकी घर पीछे एक रुपया मोटराना भी देना पड़ेगा। राजा साहब मोटर खरीद रहे हैं।" हरे कृष्ण ने जैसे भेड़ों में ढेला फेंका। इससे दोनों श्रोता प्रभावित हुए। भगौती बोले—"अबके फसल अच्छी है, कुछ मँहगाई भी है तो यह मोटराना आ पहुँचा। ठीक है, यदि कुछ ऐसा न आता तो अधिक आश्चर्य की बात होती।"

"एक रुपये में दो-चार आने और डालकर एक धोती आती है, जो साल भर चलती है।" हरे कृष्ण ने कहा—"परसू को दो बरस से धोती नहीं मिली। जान पड़ता है, इस बार भी वह राजा की मोटर के नीचे रह जायगी।"

दुःख मनुष्य सह सकता है। सहता जा सकता है। पर बारम्बार दुःख की सुधि करना, उसके कारण खोजना, अपनी विवशता से जाकर टकराना उस दुःख को कई गुना कर देते हैं।

एक रुपया देना होगा, दे दिया जायगा। अभी से उसकी चिन्ता क्यों? नंगा रहना होगा, रह लिया जायगा। अभी से उसकी कल्पना क्यों की जाय? इसी से भगौती पण्डित ने विषय पुनः बदला।

नवीन विषय के प्रति उनमें उत्साह था। बोले—"रामनाथ का बेटा नगर से लौट कर गाँव में रहने आ रहा है; चिट्ठी आई है।"

रामाधीन और हरे कृष्ण दोनों ने इस समाचार में रुचि दिखलाई।

रामनाथ का अकेला पुत्र था, और वह भी तेरह वर्ष की अवस्था में गाँव छोड़ कर भाग जाने को विवश हुआ था।

परिवार इस प्रकार निःशेष हो जाने पर पिता के बड़े भाई शिवनरायन ने उसकी भूमि पर अधिकार कर लिया। इससे उसके परिवार का भरण-पोषण हो जाने की सुविधा हो गई। वह अपने भाई के परिवार के खँडहर पर खड़ा हो, गाँव में बड़ा और प्रतिष्ठित हो गया। भाग्यशाली बन गया।

जो भाग्यशाली होता है उसी के निकट के सम्पन्न सम्बन्धी मरते हैं, यह सर्व-सम्मत है।

अब आदेश्वर नगर से लौटा आ रहा है। वह अपना भाग वापिस चाहेगा। गाँव के पंच न्याय करेंगे। वे शिवनरायन की दयनीयता में आनन्द लेकर उसे पुनः दरिद्र बना देंगे; आदेश्वर को उसके पिता का भाग दिलवा देंगे। घटना सरस होगी।

रामाधीन ने पूछा—"आदेश्वर अब कितना बड़ा होगा?"

"तीस से ऊपर होगा।" भगौती बोले—"हमारे साथ खेलता था, बड़ा सुन्दर मर्द बना होगा।"

"सुना है कि कानपुर के किसी कारखाने में···।"

"हाँ, अफ़सर था। बड़ी तलब मिलती थी। अब नौकरी से जी ऊब गया होगा तो घर आ रहा है।"

"बाल-बच्चे?"

"परदेस का क्या पता? कदाचित् अकेला है। हाँ, रुपया तो खूब कमा लिया होगा।"

"आकर पक्का मकान बनवायेगा।"

"पक्का मकान!" भगौती काका ने नाक चढ़ाते हुए कहा—"गाँव में पक्का मकान मातादीन तिवारी ने बनाया था; चार साल में परिवार साफ हो गया और मकान धूल में मिल गया। हरदत्त कायथ ने बैठक पक्की कराई थी, पहली बरसा में ही बैठ गई। सुखभूखन साहु की दूकान दो बरसा झेल गई है पर अधिक झेलेगी इसमें संशय है। हमारे गाँव को पक्का मकान फलता नहीं। आदेश्वर बनाना भी चाहेगा तो मैं उसे भरसक बनाने न दूँगा। व्यर्थ रुपया लगाने से लाभ?"

भगौती का यह विचार हरे कृष्ण और रामाधीन को भाया नहीं। यदि आदेश्वर पक्का मकान बनाने में रुपया लगाना चाहता है तो मकान चाहे दो ही मास में गिर जाय, भगौती क्यों रोके?

आदेश्वर के पास जब तक धन रहेगा वह गाँव भर के नयनों में खटकता

रहेगा। उनसे बाहर का व्यक्ति रहेगा। पर ज्यों-ज्यों वह गाँव में अपना धन अपव्यय करके निर्धन होता जायगा, त्यों-त्यों ठीक ग्रामीण होता जायगा। जब वह उनके समान दरिद्र हो जायगा तो उससे ईर्ष्या का कोई कारण न रहेगा। हरे कृष्ण और रामाधीन उसे अपना समझने लगेंगे।

परदेस में रहा है। बाल-बच्चे नहीं हैं। बड़ी तलब मिलती थी। इस सब का एक अर्थ होता था।

तैंतीस-चौंतीस वर्ष की अवस्था विवाह के लिए अधिक नहीं है। उसके पास धन है। गाँव में भूमि है। कन्या का भला चाहने वाला कोई भी पिता अपनी पुत्री का विवाह उससे कर देगा।

और विवाह के पश्चात् बाल-बच्चे होते कितनी देर लगती है? पहला सँभलने भी नहीं पाता, दूसरे तीसरे आ उपस्थित होते हैं।

सब ने कल्पना की कि शीघ्र ही आदेश्वर और उसके दादा में ठन जायगी। प्रतिष्ठित दोनों अपमान और क्षुद्रता की भूमि पर उतर आयेंगे।

यह सन्तोष का विषय था कि गाँव में अब बहुत दिन पश्चात् कुछ रोचक होने को है।

* * *

गिरने के कारण ननको की गुड़िया की बालियाँ खुल गई थीं। उसका वस्त्र अस्तव्यस्त हो गया था।

माँ जब चली गई तो वह चुपचाप गुड़िया के पास बैठ गई। बड़े प्यार से उसे उठाया। चूमा। मिट्टी झाड़ी और वस्त्र ठीक किये। बालियों की ओर ध्यान दिया। वे फिर से बनानी पड़ीं। इस कार्य में उसे काफ़ी समय लग गया।

वह जितनी शीघ्रता करती थी, उतनी ही वह बनकर बारबार उधड़ जाती थी। एक बाली टूट गई तो दूसरी को भी तोड़ उसे छोटा करना पड़ा। वह दादा के सम्मुख जायगी तो गुड़िया लेकर। वैसे नहीं। इतना सन्तोष था कि वे जग रहे हैं, बातें कर रहे हैं।

जब वह श्रृंगार कर चुकी तो उसे ले चौखट से लग खड़ी हो गई।

रामाधीन के अपनी ओर देखने की प्रतीक्षा करने लगी।

रामाधीन अपनी बातों में अधिक संलग्न दिखाई दिया। ननको को खड़े-खड़े समय अधिक हो गया तो उसका धैर्य समाप्त हो चला और उसने बायें हाथ से किवाड़ पर साँकल दे मारी।

रामाधीन क्या सबका ध्यान उस ओर गया। दादा के नयनों से नयन मिलते ही ननको उसकी गोद में दौड़ गई और चुपके से गुड़िया को औरों की दृष्टि से छुपाकर उसके सम्मुख कर दिया।

"क्या है री ननको ? हमें भी दिखा।" भगौती पण्डित ने कहा।

"कुछ नहीं।"

रामाधीन ने गुड़िया अपने हाथों में लेली। ननको के सिर से ऊपर उठाकर उसे स्वयं देखा और तभी हरे कृष्ण एवं भगौती ने भी देखा।

ननको गुड़िया केवल दादा को दिखाने लाई थी। जनता उसकी सुकुमारी पर्देवाली पर दृष्टिपात क्यों करे ?

वह चिढ़ गई। दादा से प्रशंसा पाने की लालसा भाग गई। कुण्ठित और रुष्ट होकर बोली—"लाओ मेरी गुड़िया; मैं नहीं दिखाती।"

फिर दादा के हाथ से गुड़िया ले रुवासी घर में भाग गई—जहाँ वैजंती गेहूँ को भूसी से अलग कर रही थी। उसने गुड़िया फेंक दी और भूमि पर लेट कर ज़ोर से रोने लगी।

बेटी को इस प्रकार अचानक रोते सुनकर सहदेई को क्रोध आ गया।

वैजंती ने ननको की समस्या समझ ली। बोली—"बिट्टी, गुड़िया दिखानी है ?"

ननको का रोना शान्त हो गया। वह काकी को गुड़िया दिखाने उठने लगी, तभी माँ ने दौड़ कर झटके के साथ उसे उठा लिया और पूछा—"क्यों री, इस काकी ने मारा है ?"

ननको को छूटने की शीघ्रता थी। माँ जबतक उत्तर न पा लेगी छोड़ेगी नहीं। इसलिए उसने धीरे से, जल्दी से, कह दिया—"हाँ।"

उसने आपको माँ की पकड़ से छुड़ा लिया। सहदेई दो क्षण वैजंती की

और आग्नेय नेत्रों से देखती खड़ी रही।

उसने देखा कि ननको का रोना बन्द हो गया है। उसने गुड़िया उठा ली है, हँसती-हँसती काकी की गोद में बैठकर उसे उसका श्रृङ्गार दिखा रही हैं। वैजंती ने कार्य छोड़कर उसके खेल में रुचि ली। ननको सन्तुष्ट हो गई।

सहदेई को बेटी पर क्रोध आया, और काम छोड़ खेल में लगनेवाली देवरानी पर। इसके पश्चात् वह एकाएक मुस्करा पड़ी। काकी-बेटी को खेलता छोड़ वहाँ से चली गई।

[७]

हरिनाथ उन चरित्रों में से था जिनकी संसार में बहुलता होती है। असाधारणता के कारण नहीं वरन् साधारणता के कारण।

ये लोग वे होते हैं, जो अपने पैसे के लाभ के लिए दूसरों को रुपये की हानि पहुँचाने में नहीं हिचकते। अपने शक्तिशालियों के तलवे सहलाते हैं और स्वयं अवसर पाकर दुर्बल पर अत्याचार करते हैं। चाटुकारी के बदले चाटुकारी चाहते हैं।

ऐसे लोग अपना शिकार चुनने में बड़ी सावधानी से काम लेते हैं। क्योंकि तनिक भूल से हड्डी गले पड़ जाने का भय रहता है। अब हरिनाथ ने रामाधीन पर दृष्टि डाली।

रामसरन के साथ जो दुर्घटना हो गई है, उसके कारण यह परिवार व्यवस्था-यन्त्र की स्थानीय शाखा की सहानुभूति खो बैठा है। एक-दो बार की उसकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा। हरिनाथ ने इस अवस्था से लाभ उठाने का निश्चय किया।

रामावतार वृद्ध होने पर भी उसके दबाव में आने वाला न था। गाँव में उसका कुछ मान था। उसकी ओर सहानुभूति-वश चार व्यक्ति खड़े होने को मिल सकते थे। रामविलास कसरती पहलवान था और आवश्यकता पड़ने पर लाठी का प्रयोग नाशकारी रीति से कर सकता था। इन्हीं कारणों से उसने परिवार के मोरचे में सबसे दुर्बल भाग पर आक्रमण किया।

दोपहर के समय रामाधीन के विरुद्ध जो निर्विरोध सफलता हरिनाथ को

मिली उससे उसका उत्साह बढ़ गया था। यदि रामाधीन प्रतीकार किये बिना उसकी मार सह सकता है तो और अधिक भी सह सकेगा। जितना वह सह सकता है उतना उसे सहा देने का उसने निश्चय कर लिया।

सन्ध्या समय रामावतार घर लौटे; रामविलास हरे चारे की खोज में गया; खलिहान पर रामाधीन और उसका चमार हरवाह रामसेवक रह गये।

सेवक ने आग सुलगाकर चिलम भरी और नारियल गुड़गुड़ाने लगा। रामाधीन चिकनी भूमि पर चादर फैलाकर लेट गया। चिरसंगिनी लाठी उसके निकट रक्खी हुई थी।

सूर्य की अन्तिम किरणें संसार छोड़ रही थीं। उस सुनहरे भूमि-खण्ड पर श्यामल आवरण धीरे-धीरे गहरा होता जा रहा था। क्षितिज के निकट आकाश में कुछ रक्तिम सुनहरी धारियाँ शेष थीं।

अमराई, जिसने दिन में सूर्य से भयभीत छाया को आश्रय दिया था, अब जैसे उसे उगलने लगी। अन्धकार उसमें से निकल-निकल कर अपनी सर्व-आवेष्टक भुजाओं से खेतों, मेंड़ों और खलिहानों को ढकने लगा।

रामाधीन का खलिहान अलग, कुछ एकान्त में, था। दूसरा खलिहान चार-पाँच सौ गज से निकट न था। पाँच सौ गज़ अन्धकार में पाँच मील से भी अधिक लम्बा हो जाता है।

रामाधीन ने घिरते अन्धकार की ओर देखा और अनुभव किया कि उसके भीतर भी गहरा अँधेरा भर गया है। वह जहाँ है वहाँ उसका क्या कर्त्तव्य है। सोचता है कि पृथक हो जाने में लाभ है। पर कुछ वाक्य और घटनाएँ घुमड़-घुमड़ कर आती हैं और उसे गम्भीरतापूर्वक विचारने को विवश करती हैं।

हरिनाथ उसके पीछे पड़ गया है। उसके अत्यचार वह कब तक सहेगा? एक दिन तो जमकर लोहा लेना ही होगा। उसका परिणाम कौन जानता है?

एक बार अत्याचार सहन कर उसने और अत्याचार को निमन्त्रण दे दिया है। यदि उसे कुछ हो गया; जेल जाना पड़ा; तो बच्चों का क्या होगा? परिवार जबतक सम्मिलित है भाई और बाप को कैसे भी उसकी

सन्तान की खोज-खबर लेनी ही होगी।

उसने करवट बदली। जितना अत्याचार हरिनाथ अकेले पर कर सकेगा उतना सम्मिलित परिवार पर नहीं।

रामाधीन ज्यों-ज्यों सोचता था, उसे लगता कि सम्मिलित रहना ही अभी उसके लिए वाञ्छनीय है। उसने निश्चय-सा कर लिया कि अपनी ओर से अब वह पृथक होने का प्रश्न न उठावेगा। उसे घटनाओं का रुख देखकर चलना होगा।

हरे कृष्ण के वाक्य उसके सम्मुख आये। रामसरन का कार्य, जैसा वह समझता रहा है उसके अतिरिक्त, दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। उसमें महत्व, प्रतिष्ठा और सम्मान-रक्षा की भावना है। उसका कार्य प्रशंसनीय है। ऐसे भाई को अकेला छोड़कर पृथक हो जाने पर क्या लोग उसे धिक्कारेंगे नहीं!

उसकी आत्मा स्वार्थ के दुर्गन्धपूर्ण अन्धकार से ऊपर उठी। परिवार की प्रतिष्ठा के लिए वह अपनी स्त्री और सन्तान की भेंट दे देगा।

गर्व से उसकी छाती फूल उठी। उसके नयनों में ज्योति आ गई। धमनियों में रामसरन की भावना वह निकली। वह उठकर बैठा; फिर खड़ा हो गया। अन्धकार में गर्वभरे नयनों से देखा। अपने भीतर उमड़ते शक्ति-स्रोत को सँभाल नहीं सका। टहलने लगा।

पुकारा—"सेवक!"

सेवक नारियल गुड़गुड़ा रहा था और मन्द-मन्द स्वर से एक विरहा गा रहा था। अँधेरी रात उसे भा रही थी। विरही प्राणों में जब वह अग्नि नहीं प्रज्वलित करती तो अपार शान्ति भरती है। सेवक उसीका अनुभव कर रहा था।

"महाराज!" सेवक ने उत्तर दिया।

"कैसा है तेरा बेटा अब?"

"जुर दिन में कुछ कम था, पर वह तो रात को अधिक होता है। परमात्मा जाने कैसा है?" उसने लम्बी साँस ली।

सेवक का अकेला बेटा, सत्रह साल का बेटा, लगभग एक मास से ज्वर से पीड़ित है। बीमारी लम्बी हो गई है, इससे कहा नहीं जा सकता, काल जीतेगा या मनुष्य। पर जबतक साँस है तबतक आस है। और चारा क्या है?

रामाधीन की इच्छा थी कि सेवक से उच्च स्वर से गाने को कहे। पर पुत्र की अवस्था सुनकर उसकी इच्छा ठिठुर गई।

किसका इलाज है? क्या बीमारी है? क्या पथ्य है? डाक्टर शिवरञ्जन को दिखाओ; पहाड़ ले जाओ, आदि-आदि प्रश्नों और सुझावों की सीमा अभी वहाँ तक नहीं पहुँची है।

एक प्रश्न पूछा जा सकता है। क्या रुग्णावस्था में उसे उचित भोजन मिल जाता है? पर यह पूछे कौन? वही जिसमें आवश्यकता पड़ने पर दो दिन भोजन देने की सामर्थ्य हो। रामाधीन द्रवित होकर मौन हो गया। सेवक का गुनगुनाना भी बन्द हो गया।

रामाधीन में जो उत्साह की धारा उमड़ी थी, मन्द पड़ गई। उसका टहलना बन्द हो गया। बैठने की इच्छा हुई। उस अन्धकार में अमराई की ओर उसकी दृष्टि गई। दिन के उस लज्जास्पद काण्ड के पश्चात् हरिनाथ उस वृक्ष के नीचे जाकर लुप्त हो गया था। उसके नयनों में रक्त उतर आया। यदि वह इस समय हरिनाथ को अकेला पा जाता तो...।

रामसरन का ध्यान उसे हो आया। वह रुका नहीं, झिझका नहीं। कारिन्दे के मुख से पिता के प्रति मारने-पीटने की धमकी और अपशब्द निकलते ही उसका थप्पड़ उसके मुँह पर जमकर बैठा; ऐसा कि रक्त से मुख भर गया।

इस समय उसके सामने अपने और शेष दो भाइयों में अन्तर स्पष्ट हो गया। वे उससे बलिष्ठ हैं। व्यायाम में उन्होंने कभी आलस्य नहीं किया। जो समय उसने सोने और व्यर्थ वार्तालाप में गँवाया है, उन्होंने शरीर बनाने में लगाया है। यही कारण है कि रामसरन से सब दबते हैं; रामविलास के सम्मुख कोई पड़ना नहीं चाहता; गाँव में उनकी प्रतिष्ठा है।

बल में न सही पर आत्मा में वह अपने भाइयों से नीचे नहीं जायगा। वह अब हरिनाथ से नहीं दबेगा। वही बँधी मुट्ठी के समान रहेगा। पृथक होने का नाम न लेगा। गाँव वाले देखेंगे कि भाई कैसे भाई के लिए जान देता है।

रामाधीन इस प्रकार विचारों में मग्न था कि सेवक ज़ोर से चिल्लाया—"कौन है ?"

रामाधीन का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सुना कि सेवक के चिल्लाने पर भी ढेर में से पूलों का निकाला जाना बन्द न हुआ।

सेवक ने लाठी सँभाली और शब्द की ओर जाता हुआ बोला—"कौन है ? सुनता नहीं !"

जब सेवक चोर के निकट पहुँचा तो चोर ने कहा—"कौन है रे ? सेवक है क्या ?"

"कौन हरिनाथ दादा ?"

"हाँ, कौन है यहाँ ?"

"दादा, इस समय रहने दो। जब मैं यहाँ न हूँगा, तो चाहे सारा खलिहान बाँध ले जाना।"

"अरे, तो क्या चोरी कर रहा हूँ ? पिछले वर्ष उधार दिया था, वही ले रहा हूँ।"

"दादा !"

हरिनाथ निरन्तर खलिहान में से पूले खींच-खींच कर बाँधने के लिए चादर पर रखता रहा।

उत्सुकता रामाधीन को भी वहाँ ले आई।

"कौन ? रामाधीन ?" हरिनाथ ने उस मूर्ति को पहिचानते हुए कहा। फिर शीघ्रता से उसके निकट चला गया। उसका हाथ पकड़कर बोला—"पिछले वर्ष दो बोझ उधार दिये थे, उनमें से एक आज ले जा रहा हूँ, एक कल ले जाऊँगा।"

वह फिर लौट कर पूले बाँधने लगा। सेवक ने अनुभव किया—रामाधीन

सच खड़ा है। हरिनाथ क्या कर रहा है ? कैसा उधार वापिस ले रहा है ?

पर जब खलिहान का स्वामी उपस्थित है और वह स्वयं नहीं रोक रहा है, तो वह रोकने वाला कौन ?

रामाधीन की दशा विचित्र थी। भावना उठी कि जाकर हरिनाथ के सम्मुख जमकर खड़ा हो जाय, उसका आतंक मानने से इनकार कर दे। कह दे कि ख़बरदार जो पूले को हाथ लगाया होगा तो...।"

पर वह अपने को इस कार्य के लिए प्रस्तुत न कर पाया। उसका साहस दो डग भरकर पीछे लौट चला। हरिनाथ शक्तिशाली है। वह निर्मम बैरी हो जायगा। उसे निरपराध जेल भिजवा देगा, तब क्या होगा ?"

वह अपना कर्तव्य निश्चित न कर पाया, और उस ओर हरिनाथ बोझ बाँध तैयार हो गया।

जब हरिनाथ बोझ उठा कर चलने लगा तो सेवक उसके सम्मुख जाकर खड़ा हो गया।

'दादा !'

हरिनाथ घूम पड़ा। "रामाधीन, तो तू उधार लौटाने से इन्कार करता है ?"

रामाधीन की समस्त शक्ति जैसे सूख गई। हरिनाथ के वाक्य में उसके लिए जो धमकी छिपी थी, उससे वह सिहर गया। रामाधीन एक क्षण ठिठका, फिर बोला—"जाने दे सेवक !"

सेवक को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। रामसरन का बड़ा भाई और उसका यह व्यवहार ! वह मार्ग से हट गया। रामाधीन उसकी दृष्टि में सदा के लिए गिर गया।

रामाधीन को लगा कि वह अब सेवक को मुँह नहीं दिखा सकता। वह कितनी कायरता का कार्य कर बैठा है। यह बात गाँव में फैले बिना न रहेगी।

उसका साहस खलिहान में अपने स्थान पर लौट जाने का न हुआ। वह जिस ओर हरिनाथ गया था, उसी ओर अन्धकार में धीरे-धीरे चल पड़ा।

चलता चला गया। मन का स्वास्थ्य धीरे-धीरे लौटा। वह हरिनाथ से भीषण बदला लेने की कल्पना करता लौट पड़ा।

पर क्या उसमें प्रतिशोध की शक्ति है? वह चारों ओर से अपने को बँधा पाता है। जिसमें वह फँस गया है वह जीवन भर की उलझन है। न केवल उलझन है, वह जीवन-भर की आत्म-लज्जा और आत्म-उपहास है।

[८]

घर में क्या हो रहा है, यह रामविलास को ज्ञात नहीं।

अपना काम वह कुशलतापूर्वक करता है। उसका मन उसमें लगता है। इसके अतिरिक्त और किसी बात से जैसे उसे काम नहीं है।

रामसरन की अनुपस्थिति समय-समय पर उसे खलती है, पर इस विषय में जो करना है उसके लिए उससे पहले रामावतार और रामाधीन हैं।

पशु उसके उत्तरदायित्व हैं। वह उनके लिए भरी गर्मी में भी हरा चारा जुटाता रहता है। एक बोझ घास के लिए वह पहर भर रात रहे उठकर गाँव से छः-छः सात-सात मील गया है। दिन चढ़े लोगों ने उसे हरा चारा लिये लौटते देखा है, और दाँतों तले उँगली दबाई है।

पशु उसके आत्मीय हैं, तभी वह इतना कर पाता है।

यह नहीं कि पशु उसकी सेवा से अनभिज्ञ हों। वे सब जानते हैं और रामविलास को मानते हैं। जब घर के सब लोग, हरवाह-सहित, चितकबरे मरकहे बैल के कन्धे पर जुवा रखने में असफल हो जाते हैं, तो रामविलास के कण्ठ का एक शब्द उसे शान्त कर देता है और वह सधे कुत्ते की भाँति अपना सिर झुका देता है।

बच्चा-बच्चा जानता है कि जब गाय-भैंस किसी से दुहाना स्वीकार नहीं करतीं तो रामविलास काका के पास सब एकत्र होकर जाते हैं, और रामविलास काका दो को गोद में, दो को कन्धों पर, एक को सिर पर लाद उनके सम्मुख जा खड़े होते हैं; वे तुरन्त दूध उतार देती हैं।

बच्चों और पशुओं से रामविलास की जितनी आत्मीयता है वृद्धों और अधेड़ों से लगभग उतनी ही तटस्थता।

जीवन में उसका ध्येय क्या है? यह न कोई ग्रामीण सोचता है और न उसने सोचा है। गाँव में ध्येय मनुष्य के उन पैरों की भाँति है, जो चादर की लम्बाई के अनुसार ही फैलाये जाते हैं; और उस चादर में बढ़ने की विशेष सुविधा नहीं है।

नगर में व्यापारी या नौकर धन एकत्र करने की योजना बना सकता है और उसके साथ लक्ष्य का सम्बन्ध जोड़ सकता है। लक्ष्य चाहे कितना ही विरागी क्यों न हो धन का आश्रय लिये बिना खड़ा नहीं हो सकता। लक्ष्मी के प्रति उसकी निर्भरता अमाप है। लक्ष्मी के घटते ही लक्ष्य के पैर डगमगाने लगते हैं। वह झुकने, बैठने को विवश होता है; बस, विवशता का भार बढ़ते ही लेटना उसके लिए अनिवार्य होता है। जो सदा लेटा रहता है उसकी प्रवृत्ति मिट जाने की ओर होती है। जो पानी बहता नहीं वह सूखता ही है।

रामविलास के सम्मुख रहे जाने के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य न था। वह अपने प्यारे वृक्षों और पशुओं की भाँति उत्पन्न हुआ था, वैसे ही रह रहा था, होनी ने भविष्य की रेखाएँ इसी प्रकार खींच रखी थीं।

रामविलास भी रामाधीन की भाँति पाठशाला गया था। इन पाठशालाओं के शिक्षकों की नौकरी उनकी पढ़ाने की योग्यता पर नहीं पाठशाला में अधिकाधिक बालक भरती करने की योग्यता पर निर्भर करती है। जब पण्डित राजाराम रामावतार के दरवाज़े विद्यार्थी की भीख माँगने पहुँचे तो रामावतार ने रामबिलास को उनके सामने कर कहा—"पण्डित! हमारे घर में पढ़ने-पढ़ाने की रीति तो नहीं है; पढ़ना सहता भी नहीं; पर तुम्हारी इच्छा है तो इसे ले जाओ। चार आखर सीख जायगा, काम आयेंगे तो तुम्हारा गुन गायेगा।"

पण्डित राजाराम दो दिन पश्चात् चार बालकों से लगभग घसिटवाकर रामविलास को पाठशाला लिवा ले गये।

रामविलास की प्रकृति गहरी थी। पहली कक्षा तक उसमें खूब मन लगाकर पढ़ा। जोड़, बाकी, गुणा, भाग, हिरन-गीदड़ की कहानी, कबूतर-चूहे की मित्रता, दो बकरियों की बुद्धिमत्ता, सब उसे कण्ठाग्र हो गईं।

वह दूसरी कक्षा में जाने ही वाला था कि उस कक्षा के शिक्षक ने अपने प्रारम्भिक व्याख्यान में कहा—"संसार में उत्पन्न होने का सब से बड़ा लाभ यह है कि मनुष्य पढ़ सकता है, और अच्छे-अच्छे काम कर सकता है।"

बालक और भी थे पर रामविलास कुछ अधिक था।

उसने पूछा—"पण्डित जी, उत्पन्न कैसे होते हैं?"

पण्डित जी इससे क्रुद्ध हो गये। पुत्र के अपराध पर माता को दण्ड दिया। दो गालियाँ उस बेचारी को सुना दीं।

रामविलास यह सह न सका। बस्ता उठाकर उसी क्षण पाठशाला से चला आया और कह दिया कि न वह ऐसे पण्डित से पढ़ेगा, न ऐसी पढ़ाई पढ़ेगा।

पण्डित जी की वृद्धा स्वर्गीया माता को गालियाँ भेजकर उसने अपना बदला चुका लिया। इसके पश्चात् फिर शिक्षा के मार्ग की ओर वह न गया।

वैसे तो वह महामूर्ख था—समझा जाता था पर जब पढ़ने की बात चलती तो स्पष्ट कह देता था कि यदि गालियों का अभ्यास करना है तो पाठशाला से अधिक उपयुक्त तो अखाड़ा या कबड्डी का मैदान है। भाई एवं शुभचिन्तकों के हठ करने पर भी वह पाठशाला न गया न गया।

पटवारी ने कहा—"किसान के बेटे को पढ़ाई से वास्ता?"

रामविलास पशुओं के लिए घास लेने गया। निकट हरियाली न होने के कारण पाँच मील दूर एक झील के किनारे जाना पड़ता था।

रामविलास घास का बोझ लिये आ रहा था कि नगर से लौटता हरदत्त भी साथ हो गया। चलते-चलते उसने पूछा;—"अरे रामविलास, मैंने सुना है कि तुम लोगों में बँटवारा होने वाला है?"

"नहीं तो!"

रामविलास ने बलपूर्वक उत्तर दिया। दोनों साथ चलते रहे। हरदत्त

चाहता था कि रामविलास बात करे। उसके सिर पर बोझ था। वह हाँ ना में उत्तर दे सकता था।

हरदत्त ने फिर पूछा—"रामसरन का क्या हुआ ?"

रामविलास को लगा कि यह प्रश्न मुझ से क्यों पूछा जा रहा है। वह चुप रहा। प्रश्न किया—"तुम्हारे मुकदमे का क्या हुआ ?"

"अभी फैसला नहीं हुआ। गवाही हो गई है। उनके गवाह बिगड़ गये हैं। जान पड़ता है, बेदखली नहीं होगी।"

रामविलास ने कहा—"हूँ।"

हरदत्त वास्तव में अपनी कथा सुनाना चाहता था।

"भला हमारा और राजा का क्या मुकाबला ? वे समरथ हैं; जितने गवाह चाहें जुटा सकते हैं।"

"लगान पूरा भरने पर भी बेदखली हो, यह तो अत्याचार है।"

"कारिन्दे पर विश्वास किया। उसी समय रसीद नहीं ले ली उसका यह फल यह है। मैं समझता था कि दिन-रात का उठना-बैठना है ऐसी बेईमानी क्या करेंगे ?"

"हुँ!"

"ज्यादा से ज्यादा खेत छुड़ालेंगे पर दुबारा लगान मैं न दूँगा।"

रामविलास को लगा कि क्या ये बातें वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। उसे अभी तक कुड़की बेदखली से काम नहीं पड़ा है। आगे नहीं पड़ेगा, यह वह नहीं कह सकता।

नागरिक न्यायालय की दीवारों की छाया में रह कर न्यायालय से दूर रह सकता है, पर ग्रामीण जितना न्यायालय से दूर है उतना ही निकट है।

गाँव में जिसने न्यायालय का मुख नहीं देखा, वह परम भाग्यशाली है। बात बात पर कचहरी वहाँ सजग हो जाती है; और जोंक की भाँति उनका जीवन-रक्त चूसती रहती है।

हरदत्त और रामविलास काफी दूर तक साथ-साथ चलते रहे। कोई बोला नहीं।

रामविलास के मन में रह-रह कर एक बात गूँजने लगी। यह बटवारे की बात कैसी ? और हरदत्त तक कैसे पहुँची ?

रामाधीन और दादा के बीच कोई बात अवश्य हुई होगी। रामाधीन-द्वारा वह हरदत्त तक पहुँची होगी। पर बटवारे के लिए यह कौन समय है। जब कारिन्दे के विरुद्ध कचहरी में उपस्थित होना है तो उन्हें अपनी शक्ति संगठित रखना चाहिए।

इस प्रश्न को वह बार-बार भूलने का प्रयत्न करता रहा, पर समस्या थी कि कुतुबनुमा की सुई की भाँति घूम कर उसके सम्मुख आ जाती।

हरदत्त कब उसका साथ छोड़कर चला गया, उसे पता न चला।

[६]

पशुओं की सानी-पानी के पश्चात् जब रामविलास हरिसुन्दर को गोद में लेकर चुप कराने का प्रयत्न कर रहा था, तो किसोरी उसके निकट गई। बोली—"वैजंती ने दो दिन से नहीं खाया है।"

समाचार छोटा, पर गम्भीर था। रामसरन की बहू ने यदि दो दिन से भोजन नहीं किया तो उसका कारण भी ऐसा विकट होना चाहिए। क्या केवल पति-वियोग ही है ?

"बात क्या है ?"

किसोरी ने चारों ओर देखा, बाहर के आँगन में अन्धकार था। भीतर के आँगन के दूसरे सिरे पर रसोई में अंडी के तेल का दिया जल रहा था। उस प्रकाश में सहदेई भोजन बना रही थी।

किसोरी ने पति का हाथ पकड़ उसे और बाहर के आँगन में खींच लिया। रामविलास की समझ में न आया। उसने प्रश्न दुहराया :—
"बात क्या है ?"

किसोरी ने धीरे-धीरे, लगभग फुसफुसाकर, कहा—"दोनों जनों ने उसे और देवर को खूब गालियाँ दी हैं। कहा है स्वयं तो वहाँ जाकर आराम से बैठ गया और इसे खाने को हमारी छाती पर बैठा गया।"

रामविलास ने सुना; क्रोध से उसके नयन लाल हो गये। शरीर काँप उठा। वैसे चाहे विश्वास न होता, पर हरदत्त से जो बटवारे की बात वह सुन आया है! अब उसे यह असम्भव न जान पड़ा। पर उसने अपना चित्त स्वस्थ किया। एक क्षण सोचा। फिर किसोरी से पूछा—"कहाँ है वहू?"

"अपनी कोठरी बन्द किये पड़ी है।"

नगर था नहीं। रामविलास को नगर का अनुभव भी न था। यदि होता तो बाज़ार से कुछ लाकर खिला देने की बात उसे सूझ जाती। वहाँ उसे भोजन दिया जा सकता था तो घर में से ही।

रामविलास का मस्तिष्क घूम-फिर कर वहीं आ गया। कोई उपाय उसे न सूझा। "तो क्या करें?" उसने किसोरी से प्रश्न किया। "रामसरन की बहू को भूखा नहीं सोना चाहिए।"

किसोरी ने एक क्षण सोचा। फिर बोली—"जाऊँ, देखूँ, वजंती खाने को राज़ी हो तो कुछ चबेना ले जाऊँ। जेठानी से कुछ कहा तो एक झगड़ा खड़ा हो जायगा।"

"जैसा ठीक समझो, करो। रामसरन की बहू भूखी नहीं रहनी चाहिए।"

रामविलास हरिसुन्दर को लिये आँगन में टहलने लगा। किसोरी ने जाकर वैजंती के किवाड़ स्पर्श किये। उसकी कोठरी बाहर के आँगन में थी।

रामाधीन भीतर के आँगन में रहता था, रामसरन बाहर के और रामविलास के पास दो कोठरियाँ भीतर थीं और एक बाहर।

तनिक दवाने से किवाड़ खुल गये। भीतर अँधेरा था। धीरे से पुकारा—"वैजंती।"

कोई उत्तर प्राप्त न हुआ।

किसोरी सावधानी से कोठरी में घुसी। टटोलती उसकी खाट के निकट पहुँची। स्पर्श किया, वैजंती वहाँ न थी। उसने पुनः पुकारा—

"वैजंती।"

भूमि पर लेटी वैजंती ने शब्द से इसका उत्तर न दिया। पर उसकी साँस ज़ोर से चलने लगी। जैसे कि शरीर ने एक मार्ग रुद्ध होने पर दूसरे

से उत्तर दिया हो।

किसोरी उस दिशा में बढ़ी और टटोल कर वैजंती को पा गई।

"वैजंती उठ न! कुछ खाले। ऐसे कैसे काम चलेगा।"

सहानुभूति के कुछ कण पाकर वैजंती के नयनों में अश्रु आ गये। बोली—"नहीं, मैं नहीं खाऊँगी।"

"क्यों?"

"क्या तुमने सब सुना नहीं है?"

"सुना तो है, पर ।"

"नहीं, मैं नहीं खाऊँगी। मरना होगा तो ऐसे ही मर जाऊँगी।"

वैजंती के मन में एक सम्भावना जगी। जब उसके अनशन की बात फैलेगी तो वह ससुर तक अवश्य जायगी। वह चाहती है कि उनके घर में क्या हो रहा है, यह उन्हें मालूम हो जाय। उसे विश्वास था कि वे न्याय करेंगे और वह झुकेगा उन्हीं की ओर।

"पगली हुई है!" उसने प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मैं पगली-वगली नहीं हूँ। वे लोग मुझे गाली दे लेते, मैं सह लेती, सहती आई हूँ; चुप रहती। पर उन्हें जो गालियाँ दी गई हैं वे तुमने स्वयं सुनी हैं। क्या वे अपनी खुशी से, काम से डरकर जेल गये हैं? नहीं, मैं भोजन नहीं करूँगी।"

यही शब्द कितने ही प्रकार से कहे जा सकते थे। शब्दों का अर्थ उनमें विशेष नहीं है। उनके पीछे जो मन का स्वरूप होता है वही उनका अर्थ निश्चित करता है।

किसोरी ने देखा। वह समझ गई कि वैजंती दृढ़ है। उसे वह हिला न सकेगी। किसोरी को भी सहदेई के विरुद्ध वैजंती से सहानुभूति है। वह भी चाहती है कि यह समाचार ससुर तक पहुँच जाय तो बुरा नहीं। इसलिए उसने भी विशेष प्रयत्न न किया।

रामविलास ने यह सुना और संकट में पड़ गया। क्या करे? पिता रामसरन को लेकर वैसे ही चिन्तित हैं। बटवारे की बात यदि सच्ची है तो

उससे उनकी चिन्ता बढ़ी होगी और अब यह गृह-कलह लेकर उनके निकट जाय।

पर किसोरी ने कहा कि वह खायेगी केवल ससुर के कहने से।

इस कलह का सम्बन्ध यदि रामसरन से न होता तो रामविलास उसे पिता तक न ले जाता। जब रामसरन नहीं है तो उसकी बहू के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य हो गया है।

रामविलास ने पिता से जाकर समाचार कहा। रामावतार ने सुना और उनका शरीर क्रोध से जल उठा।

कल रामाधीन के बटवारे के प्रस्ताव को उन्होंने केवल दोअर्थी 'हाँ' कहकर स्थगित कर दिया था। बीच के समय में उन्होंने इस समस्या पर खूब सोचा-विचारा है और इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि अपनी ओर से वे अभी इस चर्चा को नहीं उठायेंगे। यदि रामाधीन उसे चलाये तो भी वे उसे टालने का प्रयत्न करेंगे। पर जब उन्होंने वैजंती के अनशन का समाचार सुना, और उसका कारण ज्ञात हुआ तो वे रामाधीन पर क्रुद्ध हो गये।

सच है कि रामाधीन बड़ा है, और रामसरन सबसे छोटा है। गाली-गुफ़्ता देने का, मारने-पीटने का अधिकार जैसा सब बड़ों को होता है वैसा उसे भी है। पर उनका रामसरन सोने का है, मिट्टी का रामाधीन उसकी समानता क्या करेगा?

वे तत्क्षण भीतर गये। रामविलास से दीपक मँगाया।

भूमिका देख सहदेई घबराई।

वैजंती, क्या हो रहा है, अनुमान कर गई। इससे पहले कि ससुर प्रकाश-सहित उसकी कोठरी में प्रवेश करें, वह उठकर बैठ गई, वस्त्र ठीक कर लिये। उसे सफलता प्राप्त हुई थी।

ससुर ने द्वार पर से कहा—"बिटिया उठो, खाना खाओ।"

वैजंती ने उत्तर न दिया। वह बैठी रही। ससुर ने फिर कहा—"बिटिया, उठो।"

वैजंती ने उठने का प्रयत्न किया। पर उसे दीवार का सहारा लेना पड़ा।

रामविलास ने पुकारा—"हरिसुन्दर ।"

और किसोरी निकट आ खड़ी हो गई। देखा और फिर सब समझ गई। उसने वैजंती को सँभाला, कोठरी से बाहर निकाल लाई।

रामावतार ने गाली का प्रयोग करते हुए कहा कि उन लोगों ने बिटिया की यह दशा कर दी है!

वे कुछ क्षण शान्त रहे। भावनाएँ उनके हृदय में घुमड़ती रहीं और फिर एकाएक क्रोध के रूप में भड़क उठीं।

उन्हें लगा कि रामाधीन का निर्वाह परिवार के साथ इस प्रकार कठिन है। वह स्वयं भी पृथक होना चाहता है, अब वे रोकेंगे नहीं। उसे आज, अभी, इसी समय, हिस्सा बाँट देंगे। वह परिवार में रहने के नितान्त अयोग्य है।

वे वैजंती को चौके में लिवा ले गये। सहदेई सन्न! जो बालक जग रहे थे, वे तटस्थ आशंकित इस दृश्य को देख रहे थे।

ससुर ने सहदेई से कहा—"बहू के लिए भोजन परस।"

सहदेई को परसना पड़ा। पर उसे इस क्रिया में हार्दिक कष्ट हो रहा था। जिस समय वह कलछी से दाल थाली में डाल रही थी तो भावना थी कि यह दाल वैजंती के लिए विष हो जाती तो……।

सहदेई ने भोजन परस दिया और जेठ की आज्ञानुसार वैजंती को भोजन के लिए बैठना पड़ा।

अपने पर ससुर की इतनी ममता देख वैजंती विभोर हो गई। पति का अभाव कुछ क्षणों के लिए भूल सा गया। इस प्रसन्नता से ही उसका पेट जैसे भर गया।

सहदेई के मन में उठा, कल की छोकरी और कितना तिरिया चरित्तर आता है। ससुर को कैसा बस में कर लिया!

वैजंती से खाया न गया। दो कौर मुख से लगा वह रुक गई। दाल में आँसू गिर पड़े। पास बैठी किसोरी ने कहा—"वैजंती खा न!"

"खाया नहीं जाता।"

"तो फिर…।"

"खा लूँगी। जी सुस्थ हो जाय तो।" वह थाली पर से उठ गई। मर्द चले गये थे।

इतना भोजन छूटते देख सहदेई से न रहा गया। अपनी पराजय का बदला लेने का अवसर उसने न जाने दिया।

बोली—"अब वह जो इतना छोड़ गई है, तो कौन उसका बाप खायेगा। छूना ही था तो इतना क्यों परसवाया? जिसका पसीना बहता है उसे तो दुखेगा ही।"

वैजंती को जेठानी की इस झुँझलाहट में आनन्द प्राप्त हुआ।

रामावतार ने रामविलास से कहा कि वह अभी खलिहान चलेगा। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि रामाधीन अलग होगा और अभी होगा।

पिता पुत्र खलिहान पहुँचे। रामाधीन अँधेरे में लेटा था। सेवक नारियल गुड़गुड़ा रहा था। दोनों के मन में एक ही बात थी; हरिनाथ आज भी एक भार गेहूँ ले जाने आयेगा।

सेवक सोच रहा था कि क्या रामाधीन कल की भाँति उसे आज भी निर्विरोध ले जाने देगा? यदि हाँ तो रामाधीन का निर्वाह गाँव में कैसे होगा।

रामाधीन के मन में था कि हरिनाथ के साथ कैसा व्यवहार करे?

कल उसने हरिनाथ के अत्याचार का विरोध नहीं किया। उसका कथन भी उसने निर्विरोध स्वीकार किया। आज क्या वह उसका विरोध कर सकेगा? कौन कह सकता है कि कुछ नवीन बहाना बनाकर वह परसों फिर न आ उपस्थित होगा।

क्या इस प्रकार उसके परिश्रम की कमाई इस पटवारी के साले और कारिन्दे के बहनोई के पेट में चली जायगी?

वह अपनी समस्त नैतिक शक्ति को एकत्र करता और पाता कि इतनी पराजय स्वीकार करने के पश्चात् हरिनाथ से लोहा लेने की सामर्थ्य उसमें नहीं रह गई है।

रामाधीन इस प्रकार के दुःखद विचारों में व्यस्त था कि पिता का कण्ठ-

स्वर उसे सुनाई पड़ा। सूखते खेत को जैसे पानी मिल गया। वह अब उन्हें किसी प्रकार रोक रक्खेगा, जिससे हरिनाथ का सामना किया जा सके।

उसकी आत्मा प्रफुल्ल हो गई। उसे लगा, देवता प्रसन्न हैं, तभी अयाचित सहायता उन्होंने भेज दी है।

पर दूसरे ही क्षण उसकी यह प्रसन्नता आशंका में परिवर्तित हो गई।

रामावतार का क्रोध, जो भीतर ही भीतर घुमड़ रहा था, रामाधीन के प्रति भयानक विस्फोट के साथ उमड़ पड़ा। गाली देते हुए उन्होंने कहा कि वे उसे अब अपने घर में नहीं रखना चाहते। वह अलग हो जाय, अभी अलग हो जाय। उनकी आँखों से ओझल हो जाय।

उन्होंने सूचना दी कि वे सब का चार भाग करेंगे। तीनों पुत्रों को एक-एक देंगे और स्वयं एक रक्खेंगे। उनका भाग उनकी मृत्यु के बाद पुत्रों में बँट जायगा। अभी रामाधीन को कुल का चौथाई मिलेगा।

रामाधीन बुत बना सब सुनता रहा। वह सन्न हो गया। हरिनाथ को विरोधी बना वह अकेला उसके तलवे चूम कर ही रह सकता है।

पिता ने जो कहा उसमें उसे घोर आपत्ति थी। पर कुछ नहीं बोला—"दादा ..!"

रामावतार क्रुद्ध थे। बोले—"मेरी आँखों के सामने से चला जा। तुझे और तेरी बहू को रामसरन से जलन है। वह मेरे लिए जेल गया है। उसकी बहू को दो दिन से खाने को नहीं दिया। चाण्डाल कहीं के। जा अभी चला जा।"

रामाधीन में साहस न था कि पिता की आज्ञा का विरोध करे। और उस समय उसे वहाँ से चले जाने में एक सन्तोष भी था। वह यह कि उसका हरिनाथ से सामना न होगा।

रामावतार ने सेवक से कहा—"सेवक भई, रामविलास के साथ आज कुछ अधिक समय तक खलिहान पर रह जाना। कल से ठीक प्रबन्ध कर लेंगे।"

खलिहान से चले जाने पर रामाधीन को हरिनाथ से भेंट की आशंका न

रही और उसका समस्त ध्यान पिता के वाक्यों में भरे भविष्य पर जा लगा।

पिता के इतने क्रोध का कारण वैजंती का दो दिन तक भूखा रहना है। गाँव में भूखा रहना कोई महत्वपूर्ण बात नहीं ; उसका अन्त तिल-तिल करके और भी महत्वहीन मृत्यु से हो सकता है, परन्तु जब उस भूखे रहने से इतना महत् कार्य और प्रभाव उत्पन्न हो जाय, तो वह वास्तव में महत्व-पूर्ण है।

रामाधीन ने सोचा, न वैजंती भूखी रहती और न यहाँ तक बात पहुँचती। वह उस समय पृथक किया गया है जब कि पृथक होने की उसकी इच्छा बिलकुल न थी।

उसके भूखे रहने का कारण सहदेई है। वह इस दुर्घटना का उत्तर-दायित्व दूसरे पर डालना चाहता था। उसके लिए सहदेई उपयुक्त पात्री मिल गई और वह सहदेई पर क्रुद्ध होता चला गया।

घर पहुँच कर उसने सबसे पहला कार्य जो किया वह चौका समेटती सहदेई को वहाँ से घसीटना और बीच आँगन में ला अँधेरे में उसे पीटना था।

किसोरी से कहा—"बहू, तू चौका समेट ले।"

सहदेई उस रात रोती सोई।

बटवारे की बात जानकर उसने कहा कि यह तो वह चाहती ही थी। अच्छा हुआ अलग कर दिया और इस प्रसन्नता में वह अपनी मार भूल गई।

इन वाक्यों के निकलते ही फिर एक थप्पड़ उसके लगा और गालियों का फव्वारा रामाधीन के मुख से छूट पड़ा। वह स्तम्भित रह गई।

उसका पति अभी कल तक अलग होने का प्रयत्न कर रहा था ; आज जब उसके परिश्रम से वह अलग कर दिया गया है तो इतना उत्तेजित, दुखित और घबराया क्यों है ?

बच्चे जगे। रोये, पिटे और पुनः सो गये।

उनके माता-पिता अँधेरे में एक दूसरे को समझने की चेष्टा करते रहे। पर जो अन्धकार बाहर उन्हें एक दूसरे को देखने से रोक रहा था वही भीतर भी उनके प्रयत्न विफल कर रहा था।

[१०]

रामाधीन को घर भेज, रामविलास को खलिहान में छोड़ रामावतार वहाँ से लौट पड़े। वे वहाँ रह न सके।

लौटे घर की ओर नहीं। उस अँधेरी रात में वे और दूर खेतों की ओर निकल गये। उनके भीतर एक तूफ़ान उठ रहा था, जो उन्हें निरन्तर चले जाने को बाध्य कर रहा था।

कई मील इधर-उधर निरुद्देश घूमने के पश्चात् उन्हें लगा कि कुछ थकन और श्रान्ति उन पर आ रही है।

एक गिरे वृक्ष के तने पर वे बैठ गये, लाठी अपने निकट रख ली और फिर दोनों हाथों से सिर थाम लिया। दो क्षण के लिए उनमें भीतर बाहर अन्धकार छा गया। सिर भारी-भारी हुआ, हृदय भरा, गले में अटकन पैदा हुई। रोने की प्रवृत्ति, इच्छा, हुई और फिर टपाटप आँसू उनके नयनों से झरने लगे।

रामावतार उस बालक के समान थे, जो भुँझला कर अपने प्यारे खिलौने तोड़ डालता है। और फिर क्या, कैसे हो गया है, यह समझने में असमर्थ होकर रोने बैठ जाता है। वह पिता था, जिसने अपने हाथों से अपने परिवार को खण्ड-खण्ड कर दिया था। वह मनुष्य था जिसने नशे में अपना हाथ काट कर फेंक दिया था और जो अब विह्वल हो गया था।

वह रोते रहे। उनके चारों ओर रात्रि का अन्धकार घुमड़-घुमड़कर अपनी रहस्यमयी वाणी के करुण स्पर्श से उनके शरीर और आत्मा को सिहरा रहा था।

रात धीरे-धीरे बढ़ी। उसमें नमी आने लगी। रामावतार वहाँ बैठे अन्धकार में शून्य की ओर देखते रहे। इस क्रिया में उनके आँसू न जाने कब थम गये।

उन्हें लगा कि उनके यहाँ किसी प्रिय की मृत्यु हो गई है। यह भावना धीरे-धीरे शरीर धारण करने लगी। यहाँ तक कि वे इससे भयभीत हो गये।

इन विपत्ति के दिनों में ऐसी धारणा अशुभ है। और सबसे अधिक विपत्ति में है रामसरन।

रामसरन के अनिष्ट का ध्यान आते ही वे सजग हो गये। अपनी दुर्बलता को बलात् दूर कर दिया। उठे, लाठी सँभाली, चारों ओर देखा। समय पर्याप्त हो गया था।

वे जगे और उठकर घर की ओर चल दिये।
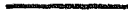
दूसरा अध्याय

[१]

हरिनाथ का गाँव से प्राचीन सम्बन्ध न था। वह पटवारी भगीरथलाल की पत्नी के साथ सात वर्ष की अवस्था में गाँव में आया था। वहीं खेला कूदा और जो कुछ विधाता ने लिख दिया था उसी के अनुसार, न तनिक कम न अधिक, पढ़-लिख गया।

उसकी बहिन का विचार था कि हरिनाथ पढ़-लिखकर कम से कम डिप्टी साहब का मुहर्रिर बनेगा। पर जब उसने पढ़ने के स्थान पर पाठशाला से पुस्तकें चुराने में अधिक रुचि दिखाई, तो शिक्षक और बहनोई दोनों सतर्क हो गये।

बहिन ने बहुतेरा समझाया; बहनोई ने उससे भी अधिक भय दिखाया। ग्यारह वर्ष के हरिनाथ ने भय का उत्तर भय से दिया। उसने बहिन से स्पष्ट कह दिया कि यदि उसके प्रति वे लोग अपने व्यवहार में परिवर्त्तन नहीं करेंगे तो वह उन्हें छोड़कर भाग जाने को वाध्य होगा।

बहिन रामकली पिता के अकेले कुलदीपक को इस प्रकार नयनों के ओट न होने देना चाहती थी। वे दोनों एक विशाल, और कुछ अर्थों में समृद्ध, परिवार के अवशेष थे।

परिवार की परम्परा का सञ्चालन अब हरिनाथ के हाथ में था, और रामकली पिता के परिवार का अन्त नहीं देखना चाहती थी। जब हरिनाथ ने पाठशाला में रुचि न दिखाई तो बहिन ने उसके लिए ससुराल की व्यवस्था की। और उनके बारह बरस के भाई के लिए चौदह बरस की भाभी आ गई। छोटे भाई के लिए बड़ी भाभी की व्यवस्था जान-बूझ कर की गई। बहिन ने सोचा था कि भाभी ऐसी होनी चाहिए जो उसके प्रखर भाई का शासन कर सके, उसे संयत रख सके। जब उन्होंने चुनाव किया, अथवा जब उन्होंने

समझा कि उन्होंने चुनाव किया, तो इस बात का ध्यान रक्खा कि बहू सुन्दर ही नहीं स्वस्थ भी हो; और हरिनाथ की बहू चम्पा सुन्दर से अधिक स्वस्थ थी।

पिता पटवारी थे, भाई कानिस्टिबिल और चम्पा स्वयं, कहा जा सकता है, माँ होने से पहिले ही माँ-जैसी लगती थी। शरीर से स्थूल, मुद्रा से गम्भीर, वर्ण में चम्पा से अधिक नील कमल के निकट।

अब हरिनाथ तीस के आस-पास था। परमात्मा की दया से, उसके बहिन-बहनोई के आशीष से, उसके परिश्रम और पत्नी के संरक्षण से, उनके अब चार पुत्रियाँ थीं। रामकली की बड़ी इच्छा थी कि हरिनाथ के एक पुत्र हो जाता। पितृ-वंश आगे चलने का कम से कम बहाना ही मिल जाता। पर एक कन्या और होकर मर गई। पुत्र नहीं हुआ।

चम्पा पुत्र की माता होना चाहती थी। पर रामकली समझती थी कि उसे चिढ़ाने के लिए पुत्र को पुत्री में परिवर्त्तित कर लेती है। इस क्रिया के कारण वह भाभी से असन्तुष्ट थी, और क्रुद्ध हो चली थी। मन ही मन न जाने क्या-क्या योजनाएँ बनाती पर जो प्रकट होता था वह था तीव्र असन्तोष।

भाई की इस गृहस्थ-समस्या को लेकर पटवारी-पत्नी अपनी चिन्ता गूँथती रहती थीं। परिवार के अन्य सदस्य इस ओर जैसे ध्यान ही न देते थे और इसीलिए उन्हें अच्छे नहीं लगते थे। उनके अपने पुत्र थे; पर एक भांजे का अभाव उन्हें बुरी प्रकार खल रहा था।

हरिनाथ को इसकी चिन्ता न थी। उसे केवल एक बात की चिन्ता कभी-कभी हो जाती थी और वह यह थी कि उसकी बहिन बहुत चिन्तित रहती है। बहिन जब तक है, उसे अन्य चिन्ता व्याप नहीं सकती; वह व्यापने नहीं देती। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् बहनोई की कृपा भी उन पर से उठ जायगी, इस पर उसे पूर्ण विश्वास है।

बहिन ने उसे मकान और दो बीघा खेत दे दिया है। नये कारिन्दा ने और खेतों का सुभीता भी कर दिया है। हरिनाथ गाँव के उन लोगों में से

है जिनका आय-व्यय का लेखा हानि में नहीं रहता। इसके कई कारण हैं; प्रथम यह है कि सब दारू-प्रेमी समझते हैं कि गाँव में दारू की दुकान न होने पर भी वह हरिनाथ के यहाँ प्राप्य है। कारिन्दा साहब, थानेदार साहब और इनके अतिरिक्त और किसी साहब को वह इस विषय में अनुग्रहीत कर सकता है।

हरिनाथ ने जीवन में निर्द्वन्द्व रहना सीखा है। उसकी चिन्ता केवल अपने तक है। वह सब से अधिक ऐसा लगता है कि, अपने को प्यार करता है। इसी में उसकी परम स्वतन्त्रता का मूल जटिलता से सम्मिलित है।

हरिनाथ का खलिहान रामाधीन के खलिहान से आध मील अमराई की दूसरी ओर था। दोनों के बीच सीधा मार्ग अमराई में होकर था। इस मार्ग के दोनों ओर दो-तीन खलिहान और थे पर इतनी दूर कि झुटपुटे में वहाँ से मनुष्य नहीं पहिचाना जा सकता था।

हरिनाथ का खलिहान केवल उसका खलिहान न था। वह उसकी बहिन का, बहिन के जेठ का और जेठ के सब से छोटे भाई का भी खलिहान था। यदि हरिनाथ का खलिहान किसी रहस्य-मय रीति से वृद्धि को प्राप्त होता है, तो इसमें सभी को प्रसन्नता थी। क्योंकि उतना ही उनपर भार कम होता जाता था।

हरिनाथ तीसरे पहर अपने खलिहान में बैठे थे। सामने सिल पर भंग रक्खी थी। रामधन कहार पानी लेने गया था। रज्जू गड़रिया एक छोटी झोंपड़ी के लिए छप्पर बना रहा था। हरिलाल चमार चार बैलों को गेहूं के ऊपर एक गड़े डंडे के चारों ओर हाँक रहा था। उसका लड़का निरधुन फैलते गेहूँ-तृणों को समेट-समेट बैलों के खुरों के नीचे डाल रहा था, और उसकी चमारी ज्वर से काँपती एक ढेर की आड़ में पड़ी बैलों के ही समान सतृष्ण नयनों से गेहूँ के दानों को देख रही थी।

फसल के इन्हीं दिनों में चुराकर, सिल्ले बिनकर, वह वर्ष में दो-चार दिन गेहूँ की रोटी खा सकती थी। भगवान् ने इन्हीं दिनों उसे बीमार डाल दिया।

पशु वर्ष के अन्य महीनों में गेहूँ का भूसा खा सकते हैं; पर चमार परि-

चार को गेहूँ का कोई भाग भी स्पर्श करने को न मिलेगा। पैसे के रूप में यदि मज़दूरी पाना सम्भव होता तो चाहे वे गेहूँ खरीद कर खाते चाहे मटर। पर मज़दूरी का रूप पाने वाले की इच्छा पर नहीं; देनेवाले की इच्छा पर है।

देनेवालों के पास इतने सिक्के नहीं कि वे उन्हें अपनी लोलुपता से बचा कर चमार को दे सकें। देश में अब भी सिक्के अभी इतने व्यापक नहीं हुए हैं कि साधारण ग्रामीण उन्हें अपने प्रत्येक कार्य में प्रयोग कर सके।

हरिनाथ स्वच्छ और महीन धोती पहिने था और शरीर से अंगोछा लपेटे था। सूर्य की किरणें पुरानी झोपड़ी से टकरा, उसके शरीर से बाल-बाल बच निकली जा रही थीं मानों वे भी इस प्रतापी पुरुष के प्रताप से भयभीत हों।

भंग घोटने में हरिनाथ के परम सहयोगी थे छदम्मी साहु। वे थे कत्था-वर्णी; उनके ओष्ठद्वय निरन्तर ताम्बूल-सेवन से रक्तवर्ण हुए रहते थे। उनके शरीर में सब से प्रमुख स्थान उनके घटाकार उदर को प्राप्त था। साहु ने सौभाग्य की अथक प्रतीक्षा की थी। जो दूसरों के प्रायः दुर्भाग्यपूर्ण समय-श्रोत में से बूँद बूँद उनकी ओर रिसा था। उसे बटोरने में वे प्रयत्नशील रहे थे।

वे गाँव के ही नहीं, पटवारी के, कारिन्दे के, थानेदार के और तो और राजा के कृपापात्र थे।

चार वर्ष पहले जब ताल्लुकेदार राजा साहब गाँव पधारे थे तो अकेले छदम्मी साहु को ही गाँव में उनके सम्मुख बैठने को मोढ़ा दिया गया था। उन्होंने ही उनसे हाथ मिलाने का सौभाग्य प्राप्त किया था। शेष प्रजा को अन्नदाता अथवा भूमिदाता को दूर से ही जुहार-प्रणाम करके सन्तोष करना पड़ा था।

दूसरे सहयोगी थे ठाकुर शिवनन्दन सिंह। वे वृद्ध होते हुए भी क्षत्रिय थे। पन्द्रह पर कानस्टिबिल रहने के पश्चात् वे कुछ धन ले गाँव लौट आये थे। कहते हैं कि बड़े साहब से झगड़ा हो जाने के कारण, उन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया है। यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस कथन को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वे पुराने भंग-भक्त हैं। पुलिस बारक में, जहाँ अन्य

क्लब और समितियाँ थीं, वहाँ उनके अथक परिश्रम से भंग-भक्त असोसिएशन की स्थापना हुई थी। स्वयं डिपटी सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब एक बार उसके अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। ठाकुर शिवनन्दन किसी समय कसरती पहलवान थे। पर अब चुचके जा रहे थे।

इन तीनों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति समयानुकूल होने पर ही इस यज्ञ में सम्मिलित होते थे। स्थायी सदस्य यही तीनों थे। समिति के कोषाध्यक्ष थे छदम्मी साहु। आगे बढ़कर व्यय करते और कहना नहीं होगा कि चन्दा भी वे अकेले ही देते थे।

हरिनाथ अपनी कल की विजय पर प्रसन्न था। प्रसन्न था कि दो पहर रात जाने की प्रतीक्षा है और फिर एक भार गेहूँ उसके यहाँ भाग्य के झोंके से आ पड़ेगा। यह प्रसन्नता पक्की थी। उसने नींव ऐसी जमा दी कि हिलेगी नहीं।

सेवक चमार को विश्वास हो गया कि हाँ, हरिनाथ उधार दिया हुआ ही ले रहा है। और रामाधीन ! कितना डरपोक है वह !

वह मुस्कराया। फिर छदम्मी साहु को अपने निकट आसन देते हुए और ठाकुर के लिए बैठे-बैठे खाट बिछाकर अपने निकट खींचते हुए उसने सिल की ओर देखा। यह भंग जो बिना कुछ व्यय किये हुए चली आती है।

रामधन ने चार गोले बनाये। सबसे बड़ा ठाकुर के लिए और सबसे छोटा अपने लिए। सिल की धोवन हरिलाल और रज्जू में बँट गई।

हरिनाथ भंग के विषय में कंजूसी नहीं बरतता था। जो उपस्थित होते सभी को भाग मिलता था। हरिनाथ का प्रसाद सहर्ष स्वीकारा जाता था।

भंग पीकर वे मिल बैठे और बातों का सिलसिला जम चला।

"छदम्मी साहु ने जितनी भंग पुण्य की है उससे उन्हें स्वर्ग में बड़ी सरलता से भंग का बगीचा प्राप्त हो सकता है।" निकाले कान्सटिबिल और अब कारिन्दे के नीचे चार रुपये की सिपहगीरी के अभिलाषी ठाकुर बोले।

"भला ठाकुर इसमें भी कोई बात कहने की है। छदम्मी साहु के प्रताप से ही गाँव में बड़ों की प्रतिष्ठा बची हुई है।"

साहु को अपनी प्रशंसा सुनने का अभ्यास था। जब किसी को रुपये की

आवश्यकता होती तो वह उनके पास याचनार्थ आता। वे प्रथम स्पष्ट कह देते कि जो जमा-पूँजी बाल-बच्चों का पेट काटकर उन्होंने लोगों के लाभार्थ एकत्र की थी वह समाप्त हो गई है। जो लेता है लौटाने का नाम नहीं लेता। बीस रुपये बीस वर्ष से अदा नहीं हुए। वे याचक की सहायता करने में असमर्थ हैं।

पर छदम्मी साहु को पिघलाने के उपाय थे। जिन्हें रुपयों की आवश्यकता होती थी उन्हें वे तत्क्षण और स्वयं ज्ञात हो जाते थे।

वे उनके सम्मुख रुवासे हो जाते, गिड़गिड़ाते, अपनी प्रतिष्ठा का सहायक-संरक्षक उन्हें बनाते और फिर हाथ उनकी ठोड़ी में देते-देते पैरों में टोपी द देते। इस अनुष्ठान से लक्ष्मी उनके कोष में द्रवित हो जाती थीं और गाँव के एक परिवार की मान-रक्षा हो जाती थी।

ये प्रशंसात्मक वाक्य उनके लिए नवीन नहीं थे। पर अभ्यस्त हो जाने पर भी उनका आनन्द उनके लिए प्राचीन नहीं हुआ था। उनके अस्तित्व को सुखी बनाये रखने के लिए वह आवश्यक हो गया था। चाटुकारी उनके लिए खाद थी। वे उसीमें पनप और फल-फूल सकते थे।

हरिनाथ को साहु की प्रशंसा इतनी न भाती थी। उसका विचार था कि पैसा कमाता कोई और है, रखता कोई और है, तथा व्यय होता है किसी अन्य के भाग्य से।

जितने नरनारी वहाँ उपस्थित हैं उन सब में अधिक भाग्यवान वह है।

परिश्रम करने पर यदि सुख प्राप्त होता है तो वह सुख परिश्रम-द्वारा जीता जाता है। भाग्य का उसमें विशेष हाथ नहीं होता; भाग्यवान तो वह होता है जो बिना परिश्रम किये दूसरे के धन पर सुख-भोग करता है।

इस परिभाषानुसार कदाचित् वही सब से अधिक मात्रा में भाग्य का स्वामी था। उसे छदम्मी साहु की प्रशंसा यदि बुरी लगी तो यह स्वाभाविक ही था।

ऐसे समय में जो अस्त्र प्रयोग किया जाना था वह उसे ज्ञात था। वह अस्त्र था कारिन्दा साहब की चर्चा। कारिन्दे वैसे घर में चाहे कुछ भी हों, पर जब तक कारिन्दे हैं और उस गाँव में हैं, तब तक अफसर हैं। छदम्मी

साहु कितने ही धनाढ्य क्यों न हों, उनसे हेठे हैं।

कारिन्दे साहब के साथ अपने सम्बन्ध की चर्चा कर वह महत्त्व को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होता था।

बोला—"यह जो अपने कारिन्दा हैं, इन्हीं के भतीजे के मामा की बरात में मैं गया था बरात क्या राजाओं की बरात थी। समधी कलक्टरी में सदर बाबू थे। उन्होंने जैसा भंग का प्रबन्ध किया वैसा मैंने अपने जीवन में कहीं देखा नहीं।

सब का ध्यान इस राजा की बरात की ओर आकर्षित हुआ। भंग-प्रबन्ध का वर्णन सुनने के लिए सब उत्सुक हो गये।

ठाकुर इसलिए कि अपने भंग-भक्त-असोसिएशन के प्राचीन विशेष अधिवेशनों से उसकी तुलना कर सकें। और छदम्मी साहु इसलिए कि अभी चाहे न हो कभी तो उनके बेटा होगा ही और उन्हें उसका विवाह करना होगा। आज राजा के यहाँ का जो वर्णन सुनेंगे अभी से उसकी नकल की तैयारी में लगेंगे जिससे हरिनाथ पुहारे में सुना सके कि भंग का प्रबन्ध या तो देखा था राजा के यहाँ या फिर छदम्मी साहु के यहाँ।

"भंग से ड्यौढ़ा बादाम, रबड़ी-सा दूध और सुन्दर बूटेदार काँच के गिलासों में। ऐसा कि पीते ही जाइए।"

छदम्मी साहु ने सोचा इसमें क्या है? वे भंग से दूना बदाम देंगे और बादाम का भाव उनके सम्मुख आ गया।

"हम जो भंग खाते हैं यह तो लकीर पीटना है। जैसा मयस्सर हो जाय उसी में परमात्मा को धन्यवाद देते हैं।"

हरिनाथ ने कभी मानव को धन्यवाद देना नहीं सीखा। उसने अपने प्रत्येक लाभ के लिए कृतज्ञता प्रकट की केवल परम पिता के प्रति; जिनके प्रताप से वह है और सब कोई हैं। जो मूल को सींचता है उसे पात-पात सींचने की आवश्यकता क्यों हानी चाहिए।

उसने आशा की थी कि छदम्मी साहु अपनी नित्य प्रति की भंगचर्या की आलोचना सुनकर कुछ कहेंगे; अपने को नीचा समझेंगे। पर उसने अनु-

भव किया कि इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

पटवारी का साला और कारिन्दे का बहनाई छदम्मी साहु का ध्यान उनकी क्षुद्रता की ओर आकर्षित न कर सके, यह उसकी असफलता, उसका अपमान है। असहनीय है।

अब उसने तेज प्रहार करने की सोची। बोला—"समय था कि इस प्रकार की भंग की ओर मैं आँख उठाकर भी नहीं देखता था। चमारों हरवाहों को बाँट देता था।" और फिर उसने छदम्मी साहु की ओर देखा।

उसे सफलता प्राप्त हुई थी। साहु के कत्थई चेहरे पर यद्यपि लालिमा प्रत्यक्ष नहीं हो पाई थी तथापि अपना साधारण भाव वे खो बैठे थे और सोचने को बाध्य हुए थे।

उनके भीतर से किसी ने कहा—"अच्छा? भीख माँगकर, चोरी कर, पेट भरते हो और ऐसी भंग तुम बाँट देते थे?" अन्दर से विद्रोही हो उठे। पर शान्त बैठे रहे।

ठाकुर इस वार्तालाप पर चौंके। वे दोनों में से किसी को अप्रसन्न न करना चाहते थे, इससे विषय बदलने के लिए पूछा।

"क्यों हरिनाथ, तुम्हारे सदर मुहर्रिर के यहाँ भंग के अतिरिक्त और कोई तेज़ चीज़ नहीं थी क्या?"

"थी क्यों नहीं ठाकुर।" अपने सम्बन्धियों की प्रशंसा हरिनाथ हृदय खोलकर किया करता था। इस विषय में वह साधारण ग्रामीण से भिन्न था।

गाँव में लोग महत्व प्राप्त करना चाहते हैं, पर अपने बल के आधार पर या अपनी महत्ता के कारण नहीं, वरन् दूसरों की निर्बलता के कारण। अपने को सबल तथा महत् बनाने की चेष्टा का स्थान दूसरे को दुर्बल और ओछा दिखाने की चेष्टा ले लेती है।

इसीलिए बाप बेटे की बुराई, बेटे बाप की बुराई, भाई भाई की बुराई करते रहते हैं। सद्वाक्यों और कार्यों की कमी और असद्विचारों की अधिकता हो गई है।

गाँव में मानव-प्रतिभा और शक्ति के विकास के लिए विस्तृत क्षेत्र नहीं

है। वह वहाँ तालावों के जल की भाँति सीमित, संकीर्ण, बँधी रह कर सड़ गई है। उसमें से जब निकलती है तो दुर्गन्ध ही निकलती है।

यदि किसी प्रकार उस पर से यह पहाड़-सा भारी ढक्कन हटा दिया जाय तो प्रथम दुर्गन्ध के उफान के पश्चात् जो निकलेगा वह शिव और स्वस्थ होगा।

हरिनाथ का अपना महत्त्व सम्बन्धियों के महत्त्व पर आश्रित था इसलिए वह इस नियम का अपवाद था।

"भंग के साथ 'रम' थी और पीने के लिए ...। जितने सुन्दर गिलास मैंने वहाँ देखे कभी देखने में नहीं आये।"

साहु ने मन में कहा—"तूने देखा ही क्या है?"

रामधन ने हरिनाथ का महत्त्व बढ़ाते हुए पूछा—"कैसे गिलास थे हरिनाथ दादा?"

हरिनाथ इस प्रश्न से प्रसन्न हो गया।

"क्या बताऊँ रामधन, बस देखते ही बनता था। गिलास थे कि जैसे देवताओं ने बनाये हों। रंग-बिरंगे बेल-बूटों से सजे। ये बूटे भी शीशे के अन्दर। बाहर-भीतर काँच और बूटे उसके भीतर बन्द।"

प्रशंसा की तीव्रता से वह आगे न बोल सका। प्रभाव सभी पर पड़ा। काँच के भीतर बेल-बूटे बन्द!

"बड़े मँहगे रहे होंगे?" साहु की रुचि जागी। उन्हें लगा कि कम से कम एक ऐसा गिलास उनके यहाँ अवश्य होना चाहिए।

"दाम तो मैंने पूछे नहीं। पूछने की सुधि ही किसे थी। पर पाँच सात रुपये से कम क्या रहे होंगे। सुना था कि दिल्ली से मँगाये हैं। सोचा दिल्ली राजधानी है। ऐसा भाग्य कहाँ कि उसके दर्शन करें। इससे गिलास हाथ में लेकर ही मैंने अपने को दिल्ली में में समझा।"

हरिनाथ का महत्त्व बढ़ गया। साहु को लगा कि हरिनाथ के अनुभव में कुछ है जो उनके पास नहीं है। ठाकुर शिवनन्दन भी आश्चर्य कर रहे थे कि पन्द्रह वर्ष की कान्सटेबिली में एक बार भी वैसा गिलास उन्हें देखने

को न मिला। पर सरलता से हार मानने वाले वे न थे। बोले —"एक बार हमारे सरकारी वकील साहब ने कलक्टर साहब को पार्टी दी थी। पचास से ऊपर आला अफसर थे। मैंने अपने हाथों से दर्जनों गिलास उठाकर रक्खे थे। काँच के भीतर ऐसा सुनहरा काम कि देखते ही बनता था। मैंने वैसे काहे को ह्विस्की चखी होती। वह तो उस दिन खानसामा से मित्रता हो गई। उसने एक पग बढ़िया चितकबरी निकाल दी। जी खुश हो गया। उस दिन जैसी नींद मुझे कभी नहीं आई।"

हरिनाथ ने सोचा "ह्विस्की"। और वह केवल "रम" की चर्चा कर पाया है। पर अब ऊँचा चढ़ने की सम्भावना न थी। साहु को यह विषय विशेष रोचक न था। भंग से आगे का क्षेत्र उनके लिए अपरिचित था इसलिए वे सुनते रहे।

वकील की चर्चा जो बीच में आ गई तो उन्हें अपने मुकदमे स्मरण आ गये। जो मनुष्य व्यापार या लेन-देन करता है, उसका एक पाँव कचहरी में होता है। जब कचहरियों की इतनी बहुतायत न थी तब मनुष्य इस जन्म में दिया आगामी जन्म में लेने के लिए छोड़ दिया करता था। फल होता था कि वह उसे यहाँ और वहाँ दोनों स्थानों में प्राप्त हो जाता था। पर कचहरियों ने इस व्यवस्था में विघ्न डाल दिया है। अब देनदार को यदि यहाँ प्राप्त नहीं होता तो परलोक में भी प्राप्ति की विशेष सम्भावना नहीं रह जाती।

"धन तो वकील कमाते हैं।" ठाकुर ने सरकारी वकील का वैभव स्मरण करते हुए कहा।

"क्यों नहीं! योग्यता भी तो वैसी ही रखते हैं।" साहु बोले—"आदमी को फाँसी से उतार लाते हैं। जजों की आँखों में धूल झोंकना क्या साधारण काम है?"

"जज क्या यह तो यमराज को ठगना है।"

"रुपया उनके यहाँ नहीं तो क्या हमारे यहाँ बरसेगा जिन्हें दो बातें भी करनी नहीं आतीं।"

हरिनाथ ने अनुभव किया कि वह बातें तो खूब कर लेता है। कैसी भी

झूठ बात हो सच्ची जँचा देता है। कम से कम श्रोता उसे सत्य स्वीकार कर लेते हैं! यदि वह केवल बी० ए०, एल-एल० बी० और होता तो आज वकील होता। और उसका भाग्य जो बिना बी० ए०, एल-एल० बी० हुए ही इतना तेज़ है उस समय पता नहीं उसे कहाँ पहुँचाता। धन उसके ऊपर मेंह-सा बरसता। नहीं पढ़ा, बुरा हुआ। पर न पढ़कर भी कौन-सा बुरा है। हज़ारों से अच्छा है।

"अपने नगर में तो आज माथुर से बढ़कर कोई वकील नहीं। ज़िले में उसकी धाक है। जब वह बोलता है तो हाकिम काँप उठते हैं।"

"एक बार तो जज साहब की कलम छूट गई।"

"दीना ठाकुर के लड़के को कालेपानी से ऐसा बचा लाया कि सीधा घर।"

"दिमाग़ की करामात है।" ठाकुर ने कहा—"वे लोग घी-बादाम खाते हैं। उससे दिमाग़ बढ़ता है। परमात्मा जिसे देता है उसे दिमाग़ भी देता है।"

"तुम्हारे बहनोई के मामले का...?" साहु ने पूछा—"यदि रामावतार ने माथुर को कर लिया तो पुलिस को कठिनाई होगी।"

"है भी लड़का कितना ढीठ। झिझका नहीं; छूटते ही एक झापड़ दिया ता।"

ठाकुर का स्वर हरिनाथ को न भाया। पर भौंहें सिकोड़ने के अतिरिक्त उसने और कुछ न किया।

"हाँ, कुछ तो सोचना चाहिए था। ज़मींदार के कारिन्दा हैं। आज चाहें तो गाँव से निकाल बाहर करें। पानी में रह कर मगर से बैर।"

"आज नहीं तो किसी दिन इसका फल मिलता ही।"

"रामावतार का दिमाग़ आज कुछ चढ़ भी रहा है। तीन बेटे हैं। कमाऊ हैं; खर्च कुछ है नहीं; पैसा इकट्ठा हो रहा है। उसी की गर्मी है।"

"अब सब गर्मी निकल जायगी।" हरिनाथ ने सब टिप्पणियाँ सुन-कर कहा।

हरिलाल, जो अब तक बैल हाँक रहा था, एकाएक खड़ा हो गया। उसने कुछ सुना था, कुछ अपने पास से पूरा कर लिया। मुँहफट होने के लिए बदनाम था। अच्छी लगे या बुरी; मुँह पर स्पष्ट कह देता था। वह स्पष्ट कहता था कि यदि उसे कोई कुछ देता है तो मुफ़्त नहीं देता। वह दिन भर हाड़ तोड़ता है तब कहीं आधा पेट भोजन पाता है।

बोला—"ठाकुर दादा, कारिन्दा साहब भी तो आदमी को आदमी नहीं समझते। गाली सदा ज़बान पर बनी रहती है। यदि एक पड़ गया तो क्या बुरा हुआ?"

हरिनाथ अपने चमार की इस स्पष्टवादिता पर चौंक पड़ा। चीख़ा—"क्यों रे चमार के, चुप नहीं होता? अभी कान पकड़ कर बाहर निकाल दूँगा।"

"साले बाबू, तुम बैठे रहो, तुम अभी कान पकड़ कर निकाल दोगे, यह हो सकता है। मैं चला जाऊँगा; पर अभी घण्टे भर में तुम्हारी बहिन का संदेशा पहुँचेगा।"

हरिनाथ के मन में तो आया कि हरिलाल को पकड़ कर पीटे और इतना कि बस जान निकल न जाय पर उसे अपनी इस इच्छा पर संयम करना पड़ा।

हरिलाल के अस्वस्थ हो जाने पर उनके खलिहान का सब काम रुक जायगा। उसने सोचा कि इस सदिच्छा को वह कुछ समय के लिए स्थगित कर रक्खे यही सब के लिए और विशेषतया उसके लिए अच्छा है।

हरिलाल उसकी बहिन का खेती-बारी में दाहिना हाथ है। रामकली उसके सब उपद्रव सहन कर सकती है; पर इसे सहन कर सकेगी इसमें उसे सन्देह है।

साहु, रामधन और ठाकुर ने हरिनाथ, हरिलाल के विरुद्ध असमर्थ हरिनाथ, की ओर देखा। हरिलाल पुनः बैलों को हाँकने लगा।

रामधन में भी हरिलाल के वाक्यों ने बल-संचार किया। उसे भी कारिन्दा के विरुद्ध शिकायत थी। बहुत दिनों से मन में घुमड़ रही थी। वैसे उसकी इच्छा कुछ कहने की न थी। पर हरिलाल ने जब इतना कह दिया

और किसी ने कोई विरोध नहीं दिखाया, तो वह अपने को संयत न रख सका।

मुँह से निकल ही तो गया—"हरिलाल ठीक कहता है, उसने और भी कारिन्दे देखे हैं; उनकी सेवा की है, पर ऐसा बदमिज़ाज नहीं देखा।"

यहाँ रामधन से भारी भूल हो गई। हरिलाल के मूल्य ने उसकी रक्षा की। पर रामधन का उस तराजू पर विशेष मूल्य न था। इसलिए मुँह से वाक्य निकलते ही हरिनाथ ने उठकर एक थप्पड़ लगाया।

रामधन समझ न पाया। हरिलाल उससे भी अधिक कहकर शान से छाती फुलाकर काम करता रहा और उसे हरिनाथ ने तनिक सी बात पर पीट दिया।

रामधन तगड़ा था। यदि केवल भौतिक बल पर निर्णय होना होता तो वह हरिनाथ से दुर्बल न था। पर इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी इस विरोध में सम्मिलित थे।

ठाकुर और साहु कुछ बोल नहीं सके। रामधन ने अपना अँगोछा उठा लिया; लाठी सँभाल उठकर चल दिया।

"ओबे रामधन!" हरिनाथ ने पुकारा।

रामधन ने सुना और सुना नहीं। घूमकर एक बार उसकी ओर देखा और चलता चला गया। उसके मुँह लगना उसने उचित न समझा। गाली वह खाता रहा था पर मार का अभ्यस्त न था।

फिर धीरे-धीरे एक भय उस पर आ गया। उसने कारिन्दे की बुराई की है। कारिन्दे से प्रायः काम पड़ता रहता है। सेवा-शुश्रूषा में निरन्तर उपस्थित रहना पड़ता है।

भय की सीमा विद्रोह में होती है। और अब उसने सोचा कि होगा सो देखा जायगा। वह कहाँ तक दबेगा। जो कहा वह झूठ नहीं कहा। वह आदमी को आदमी कब समझते हैं।

इस काण्ड के पश्चात् बैठक टूटने को हुई।

हरिनाथ शीघ्रता में रामधन पर प्रहार कर तो बैठा, पर भय उसमें उदय हो गया। वह किसी ब्राह्मण, वैश्य, और किसी सीमा तक क्षत्रिय का अपमान

कर सकता था और निर्भय रह सकता था। उसका अनुभव था कि ये लोग स्वयं अपने ही सम्मान-रक्षार्थ झगड़े को आगे नहीं बढ़ाते। पर कहार अपने उसी सम्मान की रक्षा के लिए मरने-मारने को उद्यत हो जा सकता है। उस दशा में समस्या टेढ़ी हो सकती है।

छदम्मी साहु आज की बैठक से असन्तुष्ट थे। हरिनाथ के वाक्यों और व्यवहार से असन्तुष्ट थे। वे अपना व्यय करके उसे खिलाते हैं, तो क्या इसलिए कि वह उनके मुख पर ही उनके व्यय और उनकी सदिच्छा का अपमान करे। यह हरिनाथ, जिसे वे प्रतिष्ठित समझते थे, नीची जातियों के मुँह लगता है। उन्हें उसकी संगत असह्य हो गई।

मन ही मन वे उससे खिंचे। पर उन्होंने संसार देखा था। उसे भीतर-बाहर से समझा था। इसलिए ऊपर कोई चिन्ह अपनी आन्तरिक अवस्था का प्रकट न होने दिया। बोले—"चलें हरिनाथ।"

हरिनाथ भी खिन्न हो रहा था। कारिन्दा साहब की बुराई सुनना एक बात थी और रामधन को मार बैठना और संगीन बात थी

सम्भावना थी कि साले और बहनोई दोनों इस विषय में डाटे जायँगे।

रामधन स्वयं में तो कुछ नहीं; पर उसकी स्त्री है जो थानेदार साहब के यहाँ काम करती है। नारी की सिफारिश, वह अपने उदाहरण से जानता है, कभी व्यर्थ नहीं जाती।

ठाकुर शिवनन्दन सिंह ठहरे रहे। उन्हें कारिन्दे की सिपहगिरी प्राप्त करनी थी। और इस विषय में भावी स्वामी के दूरस्थ बहनोई की सेवा और चाटुकारी से लाभ ही हो सकता था।

साहु के चले जानेपर बोले—"आजकल ये शूद्र बहुत सिर चढ़ गये हैं। ताड़ना न दीजिए तो वश में न आयें। अच्छा किया जो रामधन के एक लगा दिया। इस चमार के भी यदि एक लग जाता तो''''।"

उनकी दृष्टि इन वाक्यों से हरिनाथ के मुख पर आने वाली प्रसन्नता की मुस्कान खोजने लगी।

हरिलाल ने ठाकुर की बात सुन ली। उसने काम छोड़ दिया और इस

बार दोनों के सामने आकर खड़ा हो गया।

ज्वर से काँपती घरवाली चिल्लाई—"क्या हो गया है तुम्हें? बड़े आदमियों के मुँह लगते हो।"

हरिलाल ने कहा—"हाँ दादा, चमार पीटने के ही लिए तो हैं। अपना काम छोड़कर, आराम छोड़कर, हारी-बीमारी भुलाकर तुम्हारा काम करें और ऊपर से गाली खायँ, मारने की धमकी खायँ। हरिनाथ बाबू, ये हैं तुम्हारे बैल। कहो तो खोलकर बाँध दूँ। मेरे बस का यह काम नहीं। पिटना और मजदूरी करना है तो सड़क पर मदद लग रही है। भगवान सब को देता है। चल रे निरघुन।"

हरिनाथ भड़कने वाला था, पर पीछे सँभल गया। उसने ठाकुर की ओर देखा। ठाकुर को स्पष्ट हो गया कि उसने जो कहा है उससे हरिनाथ अप्रसन्न हुआ है, क्योंकि उसका प्रभाव हरिलाल पर बुरा पड़ा है। उनकी चाटुकारी हानिकारक सिद्ध हुई है।

हरिनाथ बोला—"जाओ भई, काम करो। ठाकुर ने कुछ कह दिया है; पुलिस के आदमी हैं। मैंने कुछ कहा नहीं।"

इससे अधिक हरिलाल चाहता भी न था। वह पुन: अपने काम में लगा। बैल हाँकते-हाँकते बोला—"ठाकुर नीच के भी जी है।"

दोनों ने सुन लिया। बोले नहीं।

ठाकुर ने कुछ स्वर नीचा करके कहा—"बाबू समय आ रहा है, जब इन लोगों का राज होगा। कायथ-छत्री हल जोतेंगे।"

हरिनाथ ने इस वाक्य पर भी कुछ ध्यान न दिया।

ठाकुर ने पूछा—"बीड़ी पियोगे, बाबू?"

फिर दोनों ने पान छाप बीड़ी सुलगाई। ठाकुर को कुछ सन्तोष हुआ। कहीं न कहीं तो बात जमी ही। पूछा—"क्यों बाबू हमारी नौकरी के विषय में कारिन्दा साहब से कुछ बातचीत हुई थी?"

"ठाकुर, क्या मैं मित्रों की बात भूल जाने वाला हूँ। तुम्हारे विषय में लगातार तीन घण्टे तक बातचीत होती रही।"

ठाकुर ने अपने को महत्वपूर्ण अनुभव किया।

"कारिन्दा साहब कहते थे कि ठाकुर सिपहगिरी के योग्य नहीं हैं और मैं बराबर कहता रहा कि उनके समान योग्य मनुष्य इस काम के लिए आस-पास के गाँवों में नहीं है।"

"फैसला क्या हुआ ?" ठाकुर ने उत्सुकता से पूछा।

"कुछ नहीं मेरे निरन्तर कहने का भी उनपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, एक बात उन्होंने स्वीकार कर ली है कि वे यदि ठाकुर को नहीं रख रहे हैं तो अभी किसी और को नहीं रक्खेंगे।" हरिनाथ झूठ पर झूठ कहता गया—"इस बीच में यदि तुम कहो तो मैं खास कोशिश कर सकता हूँ।"

उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से ठाकुर की ओर देखा। ठाकुर बोले—"पान-तमाखू के लिए सोरह आना ले लेना, बाबू।" अपने पुलिस विभाग के ज्ञान और अनुभव का उन्होंने प्रयोग किया।

हरिनाथ खिल उठा। बोला—"ठाकुर मैं कोशिश करूँगा पूरी। वैसे रखना न रखना कारिन्दा साहब के हाथ में हैं। हाँ, आशा बीस बिसे है कि रक्खे तुम्हीं जाओगे।"

"बाबू यह काम कर दो तो तुम्हारे गुन गाऊँगा। आजकल बड़ी तंगी है।"

"समय बड़ा नाजुक आ रहा है। न धन में कन है न जन में कन है। जैसे निभ जाय वही जानो।"

"ठीक कहते हो बाबू।"

इसके पश्चात् हरिनाथ उठ गया। ठाकुर शिवनन्दन ने अपनी नौकरी के विषय में एक बार पुनः उसे स्मरण कराया और फिर गाँव की ओर चले।

[२]

भोजनादि से निश्चिन्त होकर हरिनाथ खलिहान पर आ पहुँचा। रात झुकी आ रही थी।

वह भूला न था कि रामाधीन के यहाँ से आज एक भार और लाना है।

पर रात के चढ़ आने की प्रतीक्षा थी।

इस विषय पर विचारने से उसके मन में हठात् उठा कि उसने केवल दो बोझों की बात क्यों कही। अब यदि वह कल एक बोझ और लाना चाहे तो किस बहाने लायेगा ?

जो वह कर रहा है, अत्याचार है, यह उसे अज्ञात नहीं था। पर यह अधिकार उसका है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर रहती है यह उसने चाहे पढ़ा न हो, पर गाँव के जीवन में इस सत्य को वह भली भाँति समझ पाया था। बड़ी मछली का बड़प्पन उसी समय तक स्थिर रह सकता है जब तक कि वह छोटी मछलियों को खाती रहे। जिस क्षण वह अपनी इस क्रिया में चूकने लगती है, उसका अपना अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। 'बली की जय' के नियमानुसार हरिनाथ जानता था कि वह जो कुछ बिना दण्ड पाये कर जाता है, वह सब न्याय-संगत है। कम से कम क्षमा तो है ही। जीवन की दौड़ में यदि दूसरे को जीवित रहना है तो उसे भी रहना है। जीवन-साधनों की छीना-झपटी में वह पीछे नहीं रहना चाहता।

इस प्रश्न का एक नवीन दृष्टिकोण भी था। रामसरन-काण्ड के कारण रामावतार का परिवार उसके साले का बैरी है, उसका बैरी है, इसलिए उसे अधिकाधिक हानि पहुँचाने की चेष्टा उसकी होनी ही चाहिए। वह इसमें चूकेगा नहीं। गुसाईं जी ने कहा है—रण चढ़ि करिय कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई।

हरिनाथ को अपने खलिहान में बैठना असम्भव हो गया। वह उठा और शीघ्र ही अमराई की सघन अँधियारी में खो गया। वहाँ अन्धकार स्थिर वृक्षों के कानों में अपने प्राणों का रहस्य फुसफुसाता प्रतीत होता था।

जिस समय हरिनाथ अमराई में प्रविष्ट हो अदृश्य हो गया, उसी समय अमराई से निकल निरघुन अपने पिता की ओर चला।

हरिलाल ने नारियल भूमि पर रख दिया। जो गेहूँ अभी अधूरा बैलों-द्वारा लतियाया गया था, उसमें से हिलोर कर पाँच-सात सेर एक कपड़े में बाँध निरघुन की बगल में दे दिया, और उस अधूरे चूर्ण भूसे को वैसा ही

फैलाकर नारियल ले बैठ गया।

निरघुन जिस प्रकार अन्धकार में से प्रकट हुआ था उसी भाँति उसमें घुल गया।

हरिलाल ने आज जो किया वह एक दम नवीन तो न था; पर बहुत दिनों पश्चात् था और चोरी की भावना से नहीं, बदला लेने, दण्ड देने की भावना से अधिक किया गया था।

उसे ज्ञात था कि हरिनाथ दूसरों का माल चुरा अपना भण्डार भरता है। उसने अस्पष्ट तर्क किया कि क्यों न वह उसमें से अपना भाग लेले।

उसकी गुड़गुड़ी रात की निस्तब्धता पर प्रहार करती रही।

हरिनाथ ने अपने खलिहान की ओर से निश्चिन्त हो रामाधीन के खलिहान की ओर दृष्टि उठाई। वह हरिनाथ के कल्पना-पटल पर अपनी सब सूक्ष्मताओं-सहित प्रत्यक्ष हो गया। हरिनाथ को लगा कि यदि वह अधिक बलवान होता तो और भी बड़ा भार बाँध सकता।

उसने विचारा रामाधीन होगा और होगा सेवक। वे ही कलवाले। उनमें से किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो उसे रोके। वह आज कल से बड़ा बोझ बाँधेगा। और कल्पना में वह बोझ अपने आकार-प्रकार में उसके सम्मुख प्रत्यक्ष हो गया।

अब यह चोरी नहीं है, ऋण वसूल करना है। बोझा बाँधकर वह रामाधीन से ही उठवा देने को कहेगा। उसकी आत्मा को कितना आनन्द होगा जब रामाधीन स्वयं बोझा उठाकर उसके सिर पर रक्खेगा।

रात का अन्धकार और अन्धकार की सघनता बढ़ती जाती थी और उसके साथ-साथ हरिनाथ का हृदय भी बढ़ता जाता था।

रामाधीन के खलिहान के निकट पहुँच कर हरिनाथ ठिठका। अन्धकार में भी चारों ओर देखा। फिर चादर बिछाकर गेहूँ के पूले उठा-उठा कर रखने लगा।

सेवक इसकी प्रतीक्षा कर ही रहा था। आज हरिनाथ आयेगा अवश्य। उसकी इच्छा कहाँ तक पूर्ण होगी, यह एक रोचक प्रश्न था।

सेवक हरिनाथ से प्रसन्न न था। हरिनाथ के अतिरिक्त महत्व ने छोटे-बड़े सभी को उसका वैरी बना लिया था।

जब खलिहान में आहट हुई तो सेवक सतर्क हो गया। उसी समय उठकर रोकना उसने उचित न समझा।

रामविलास को इस प्रकार की सम्भावना का पता न था इसलिए उसने इसे वायु के कारण समझा, वास्तव में कुछ न समझा।

सेवक आहट-द्वारा हरिनाथ के क्रिया-कलाप को कल्पना में देखता रहा। ये क्षण उसके लिए अत्यन्त कष्टकारी थे, पर निकट भविष्य में प्राप्त होने वाले आनन्द की भावना उन्हें सह्य बना रही थी। सुन्दर नाटक प्रारम्भ होने के पहिले उत्सुकता के क्षणों में जो दशा दर्शकों की होती है, लगभग वही दशा सेवक की थी।

सेवक ने सुना कि हरिनाथ ने बोझ बाँधना प्रारम्भ कर दिया है। बोझ बाँधने का कार्य अभी आधा ही हुआ था कि रामविलास की झपकती आँख खुल गई। और जैसे स्वप्न में से उठकर पुकारा—"कौन ?"

सेवक तत्क्षण उसके पीछे बोला—"कौन ?" और फिर कूद लाठी ले हरिनाथ की ओर लपका।

"चोर है, महराज !" मार्ग में से ही सेवक चिल्लाया।

रामविलास की निद्रा जैसे पर लगाकर उड़ गई। रामविलास के खलिहान में उसके होते चोरी ! और चोर अछूता निकल जाय !

स्प्रिंग के समान उसके पैर तन गये। वह उछल कर खड़ा हो गया। लाठी हाथ में सँभाल ली।

"रोक लेना काका, जाने न पाये।" और स्वयं उधर लपका।

"कौन ?" रामविलास ने निकट पहुँचकर पूछा।

"अरे, यह तो हरिनाथ दादा हैं।" सेवक ने भोला बनकर उत्तर दिया।

"हरिनाथ दादा !" और रामविलास हरिनाथ के अत्यन्त निकट चला गया।

रामाधीन के स्थान पर दूसरा कण्ठ सुनकर हरिनाथ चौंका। उसे ज्ञात

हो गया कि आज उसका कार्यक्रम और योजना दोनों असफल हो गये हैं।

"हरिनाथ दादा, क्या चोरी करने को यही खलिहान मिला है ?" रामविलास ने पूछा।

"कौन ? रामविलास ?"

"हाँ दादा, मैं ही हूँ। कहो ?"

वह उसके और भी निकट चला गया। हरिनाथ एक डग पीछे हटा। बोला—"रामाधीन कहाँ है ?"

"क्यों ? मैं हूँ तो। अब तो चोरी करते पकड़े गये हो। काका, चौकीदार को पुकार तो लो।"

"नहीं सेवक, ठहरो।" हरिनाथ ने विनती की और रामविलास की मुद्रा अन्धकार में पढ़ने की चेष्टा की। पर अन्धकार अन्धकार था, रामविलास, हरिनाथ और सेवक सब के लिए।

एक क्षण हरिनाथ स्तब्ध रहा। फिर जैसे बुद्धि उसकी रक्षार्थ आगे बढ़ी। बोला—"रामविलास, यह चोरी नहीं है। रामाधीन को मैंने रुपये दे दिये हैं और उसने दो बोझ मेरे हाथ बेच दिये हैं। एक आज ले जा रहा हूँ, एक कल ले जाऊँगा।"

"मैं नहीं जानता दादा, रामाधीन कौन है ? वह अलग हो गया है। उसे रुपये दिये हैं तो उसके खलिहान पर जाओ। काका, चौकीदार को पुकार लेना जिससे वह भी देखे कि ...।"

"नहीं सेवक।" हरिनाथ ने विनय की।

"अच्छा दादा, जाओ इस बार तो छोड़ दिया। दूसरी बार इतनी दया मैं न दिखा सकूँगा।"

हरिनाथ ने अब कुछ कठोरता का प्रयोग करना चाहा। सोचा वैसे काम बन जाय तो....।

"तो तुम लोग मेरे रुपये मार खाना चाहते हो ? यह कोई भलमनसाहत नहीं है।"

रामविलास को क्रोध आ गया। एक दम उसके निकट जाकर बोला —

"जाते हो या नहीं ?"

स्वर में धमकी थी । हरिनाथ सहम गया । वह अपनी चादर बोझ से अलग करने को झुका ।

"क्या कर रहे हो दादा ? मैं कह रहा हूँ, जाओ ।"

"चादर तो निकाल लूँ ।"

"चादर !"

"हाँ ।"

"हमारे खलिहान में तुम्हारी चादर कैसे आई । समझे कि नहीं । मैं यहाँ से कोई वस्तु न ले जाने दूँगा । खैर चाहते हो तो चुपचाप चले जाओ ।"

चादर हरिनाथ की थी । जिस सच्चाई से रामविलास अपने खलिहान की रक्षा के लिए प्रस्तुत था, उसी मनोयोग से हरिनाथ अपनी चादर लेने को अग्रसर हुआ । बोझ की गाँठ खोलने लगा ।

सेवक ने याद दिलाई—"दादा, कल भी तो तुम एक बोझ ले गये थे न ?"

"हाँ, भई सेवक । क्या तुम्हारे सामने रामाधीन ने आज एक बोझ देने का वचन नहीं दिया था ।"

"दादा, मुझे याद नहीं पड़ता ।"

हरिनाथ भौंचक रह गये । यह चमार भी उसके विरुद्ध हो गया है । आज हवा ही वैसी चल रही है । उसने सोचा कि चादर लेकर वहाँ से चल देना ही उचित है ।

"दादा, गये नहीं ?"

रामविलास सोच रहा था कि हरिनाथ कारिन्दे का सम्बन्धी है और रामसरन कारिन्दे के कारण आज जेल में बन्द है । जमानत तक नहीं हुई है । उस पर हत्या की चेष्टा का अभियोग लगाया जाने को है । इसीके कारण आज दादा रामाधीन को पृथक कर देने को बाध्य हुए हैं ।

यह विचारधारा इस समय हरिनाथ को अपने खलिहान में चोर रूप में

पाकर क्रोध संयत करनेवाली न थी।

हरिनाथ बोझ की गाँठ खोल रहा था कि अचानक रामविलास उसके ऊपर टूट पड़ा ; उसने कमर पकड़ कर उसे उठाया और सिर के बल भूमि पर दे मारा।

हरिनाथ के मुख से चीख निकलने वाली थी, पर वह सँभल गया। रामविलास ने कहा—"चिल्लाओ दादा, चिल्लाओ, जिससे सब लोग आ जायँ और देख लें कि कारिन्दा का बहनोई कैसे चोरी करता पकड़ा जाता है। चिल्लाओ !"

इन शब्दों के साथ उसने उसकी पसलियों पर घूसों से प्रहार करना प्रारम्भ किया। हरिनाथ चिल्ला नहीं सकता था। चुपचाप पिटता रहा। सेवक वहाँ से हट गया।

"सेवक" पर्याप्त पिट चुकने पर हरिनाथ ने विवश होकर पुकारा।

"सेवक नहीं है। एक आदमी को बुलाने गया है।"

हरिनाथ को सन्तोष हुआ कि वह सेवक के सम्मुख नहीं पिट रहा है। पर भय हुआ कि यह मनुष्य कौन है, जिसे वह बुलाने गया है।

कुछ देर बाद रामविलास ने उठते हुए कहा—"जाओ, अब सीधे चले जाओ।"

"चा'''दर ?"

"मैं कहता हूँ कि अभी चले जाओ।"

"तो तू चादर नहीं देगा ? जानता नहीं है किससे बैर मोल ले रहा है। सारे परिवार को धूल में मिला कर छोड़ूँगा।"

इस बार दो थप्पड़ खा, लाठी-चादर वहीं छोड़ हरिनाथ चल खड़ा हुआ। अपने खलिहान में पहुँच खाट पर बैठा और कराह कर लेट गया। उसे गहरी भीतरी चोट आई थी।

कराहने का स्वर सुनकर हरिलाल उठकर आया।

"कौन ? बाबू, तुम लौट आये ?"

हरिनाथ बोला नहीं। पर स्वर में सहानुभूति पा रोकने पर भी पीड़ा-

सूचक स्वर कण्ठ से निकल ही गया।

"क्या जुर हो गया है ? आजकल मौसम बड़ा खराब हो रहा है। ओढ़ लो, ऐसे न लेटो।"

हरिनाथ ने उत्तर न दिया।

"चादर कहाँ है झोंपड़ी में ?"

हरिनाथ चुप रहा।

"क्यों ? क्या हाल है ?" हरिलाल की चिन्ता कुछ बढ़ी।

वह उसे स्पर्श नहीं कर रहा था। यह अत्यन्त अस्वाभाविक बिलगाव दो मानवों को उस हार्दिक सहानुभूति के क्षण में पृथक रहने को विवश कर रहा था। जब दो बार और पुकारने पर भी हरिनाथ ने ठीक उत्तर न दिया तब हरिलाल ने उसे स्पर्श करने का निश्चय किया।

चरण स्पर्श करके बोला—"बाबू, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं। तू जा लेट रह। मैं जग रहा हूँ।"

"नहीं तुम सो जाओ। जुर हो आया है।"

हरिनाथ का विचार था कि जो कुछ उसके साथ हुआ है वह उस पर विशेष प्रभाव न डाल सकेगा। इस के कारण उसे ज्वर हो आयेगा, यहाँ तक वह कल्पना न कर सका था। पर स्थिति अधिक गम्भीर जान पड़ी, वह चुप रहा।

हरिलाल ने पूछा—"बाबू, चादर कहाँ है ? बताओ ऊपर डाल दूँ।"

"झोंड़ी में होगी।"

हरिलाल झोंपड़ी में गया। अन्धकार में टटोला पर चादर न मिली।

"नहीं है वहाँ।"

"रहने दे, जा लेट रह।"

हरिलाल विवश अपने स्थान पर लौट नारियल गुड़गुड़ाने लगा। उसने सोचा कि जुर ही ऐसी वस्तु है जो उसकी पत्नी और कारिन्दे के बहनोई दोनों में भेद नहीं मानती।

हरिनाथ के चले जाने के बाद रामविलास ने कहा—"काका, चादर खोल

लो ; अपने काम में लाओ।"

"भैया ?"

"हाँ, अब वह कई दिनों में उठेगा।"

"बहुत मार दिया है क्या ?"

"नहीं काका।"

सेवक ने हरिनाथ की चादर खोल उसे तीन हिस्सों में बाँट दिया।

[३]

आदेश्वर के आगमन का समाचार धीरे-धीरे गाँव में महत्व प्राप्त करता जा रहा था। कुछ लोग थे जो उत्सुकता से उसके आगमन की राह देख रहे थे। वह आयेगा; अपने साथ चाहे और कुछ लाये या न लाये, धन अवश्य लायेगा। गाँव की भूमि यदि भूखी है तो लक्ष्मी की। लक्ष्मी सागर से निकल कर धीरे-धीरे इन गाँवों में समाती जा रही हैं। जिन गाँवों को उत्पादक होना चाहिए था वे धन पचा जाने वाले बन रहे हैं। धन बाहर से आता है और पता नहीं कहाँ चला जाता है। गाँव वैसे ही दरिद्र और दीन बने रहते हैं।

एकाएक एक दिन दो इक्के आकर शिवनरायन के दरवाज़े पर खड़े हो गये। तीन ट्रंक थे, एक बिस्तर और एक बोरा बर्तन। उन सब के साथ एक मनुष्य था। सम्पूर्णतः वह मनुष्य था भी, यह भली-भाँति पहिचाने बिना नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसका समस्त शरीर साधारण मनुष्य का सा न था। रंग उसका पक्का था। शरीर में केवल मुख ही उसका सम्पूर्ण था। उसके दाहिने ओर का समस्त अंग भंग था। दायाँ हाथ उसके नहीं था। उसके स्थान पर अब भाँगे वृक्ष की शाखा की भाँति एक छः-सात इंच का ठूँठ रह गया था। इस ओर की पसलियाँ भी टूट कर पुनः जुड़ी थीं इसलिए खाल के नीचे वे स्पष्ट टेढ़ी-मेढी जान पड़ती थीं। उसका दाहिना पैर था तो पूरा, पर बेकार था। वह सूखा हुआ था और मृत शाखा की भाँति वृक्ष के तने से लटक रहा था।

वह एक बैसाखी दाहिने कन्धे के नीचे लगा कर कुछ उछल कर ही चल-

सकता था। ऐसे व्यक्तित्व को देखने के लिए जो नर-नारी वहाँ एकत्र हुए वे अपने नयनों पर विश्वास न कर सके।

इन लोगों ने एक स्वस्थ और स्वरूपवान आदेश्वर की कल्पना की थी। इसी से जो मनुष्य उन्होंने अपने सामने देखा, उसे वे आदेश्वर मानने को प्रस्तुत न हुए।

सगे-सम्बधियों ने पूछा—"भैया, तुम कौन हो? किसके यहाँ आये हो?"

क्योंकि आकर चाहे लड़े झगड़े ही; उनका आदेश्वर ऐसा अंगहीन नहीं हो सकता।

उस लँगड़े तथा लूले ने बताया कि वह आदेश्वर है, और अब जहाँ वह उत्पन्न हुआ था वहीं, अपने माता-पिता की भूमि में, मरने के लिए आया है।

उसे बोलता पाकर दर्शकों, विशेषतः लड़कियों, के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह लँगड़ा इतनी अच्छी तरह बोल सकता है!

बड़ों ने देखा, आदेश्वर बात मरने की कह रहा है, पर मरने के उसमें कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। वह स्वस्थ है। जब मौत की बात करता है तो हँसता है।

इक्के से कूद आदेश्वर एक ओर खड़ा हो गया; बैसाखी अपनी काँख में लगा ली। दोनों इक्के वालों ने सामान उतार कर नीचे रख दिया। उसने पैसे दिये और चलते समय एक ताँगेवाले से कहा—"महमूद, अधिकारी से कह देना एकाध चक्कर लगा जाये।"

"ज़रूर कह दूँगा, बाबूजी।"

ताँगेवालों की उसके प्रति आदर-भावना देखकर ग्रामीणों की हृदय-भावना में भी कुछ आदर आ गया। उन्हें अनुभव हुआ कि यह जो मनुष्य इस प्रकार किसी कारण लँगड़ा-लूला हो गया है, अपने में कुछ असाधारणत्व रखता है।

हरे कृष्ण की दृष्टि उसके मुख की ओर गई। उसने देखा कि मुखाकृति साधारण होने पर भी मुद्रा में कुछ असाधारणत्व है। वह इतने मनुष्यों के

बीच तमाशा बना खड़ा तनिक भी कुण्ठित नहीं होता।

ऐसा लगा कि वह इन सब से पृथक, सब से ऊँचा, उन सबको कुछ देने आया हो। मुद्रा से जान पड़ता था कि वह ऐसे बहुत से भेद जानता है जिससे वे लोग अनभिज्ञ हैं। उसके मुखमण्डल पर खिन्नता का नाम नहीं है। एक हल्की मुस्कान बारबार थिरक कर गम्भीरता में परिवर्तित हो जाती है।

भगौती पण्डित ने उसके आने का पत्र पढ़कर शिवनरायन को सुनाया था। वे साथ के थे भी। आगे आये। पूछा—"आदेश्वर हो क्या ?"

आदेश्वर ने ध्यान से उनकी ओर देखा। "भई, आप का चेहरा पहचाना तो लगता है पर नाम स्मरण नहीं आता।"

"मैं हूँ भगौती। हम सब साथ उस इमली के नीचे खेला करते थे।"

आदेश्वर के नयन कुछ क्षण के लिए अन्तर्मुखी हो गये। वह अतीत में लौट कर अपने खेल देखने लगा। एक समय था, उसे भी प्यार करने वाले थे। माँ थी, पिता थे, प्यारे परिजन थे। वह भगौती के साथ हँसता-खेलता था; और आज है कि कोई उसके प्रति क्रियात्मक सहानुभूति प्रकट करने का साहस नहीं कर पाता। वह एक समय संसार का प्यारा था। संसार उसके साथ था और आज वह उसके विरुद्ध खड़ा अवहेलना से मुस्करा रहा है! भूत में उसने भगौती को पकड़ पाया। पहिचान की मुस्कान उसके ओठों पर दौड़ गई—नयनों से झाँकने लगी।

वह उछल कर उसके निकट पहुँचा। ध्यान से उसके मुख का निरीक्षण किया, जैसे कि किसी पत्थर का निरीक्षण बारम्बार जौहरी करता है, और अपने बायें हाथ से उसका दाहिना हाथ पकड़ कर दबा दिया। बोला—"अरे भगौती, तुम ऐसे हो गये कि पहिचाने भी नहीं जाते। कहो मज़े में तो हो न ? कितने बाल-बच्चे हैं भई ?"

भगौती ने देखा कि लँगड़ा आदेश्वर प्रश्न करने में बहुत तेज है। आत्मीयता की मात्रा भी विशेष है। उत्तर दिया—"सब भगवान् की दया है।"

"भगवती पर भगवान की दया न होगी तो किस पर होगी ?"

सबके चेहरे शान्त थे। जैसे उसने बड़ी गहरी बात कही हो और उसका

समझना साधारण जन-बुद्धि के परे हो। भगवती और भगवान का एक वाक्य में प्रयोग असाधारण जँचा। पर इससे अधिक उन लोगों के लिए उसमें न था। स्वयं भगौती पण्डित ने हलकी सी खीस निकाल दी।

"सामान वामान रखवाओ, तो फिर निश्चिन्त बैठकर बातचीत होगी।" भगौती ने कहा।—"कहाँ हैं शिवनरायन दादा?"

शिवनरायन थे नहीं। उनकी पत्नी ने भगौती की इच्छा समझ अपने पंचवर्षीय पौत्र को घर के भीतर बुला लिया और द्वार बन्द कर लिया। यह लँगड़ा-लूला उसके बालकों का दुर्भाग्य बन कर आया है।

शिवनरायन की पत्नी का यह व्यवहार किसी को अच्छा न लगा। अन्य लोगों ने उसका सामान उठाकर उसकी बैठक के सामने रख देना चाहा पर आदेश्वर ने इस पर आपत्ति की।

"ये लोग यदि मुझे घर में नहीं लेना चाहते तो मैं भी इनके यहाँ ठहरने को तैयार नहीं हूँ। क्या तुम लोगों में से मुझे कोई एक कोठरी रहने को देगा। मैं किराया दूँगा।"

दो-चार मनुष्य और एकत्र हो गये। किराया मिलेगा यह सुनकर कई आदमियों ने उसे अपने यहाँ निमन्त्रित करना चाहा। पर तनिक विचारने पर सभी लोग एक ही निश्चय पर पहुँचे। किसी ने उसे एक कोठरी देने की धृष्टता न की।

कोठरी देने का अर्थ शिवनरायन से वैर मोल लेना हो सकता है। इस नवीन व्यक्ति के लिए, लगँड़े लूले के लिए कौन समर्थ से वैर मोल ले?

किसी को पता नहीं, आदेश्वर कैसा व्यक्ति है। अभी कुछ ऐसा वैसा निकल आवे तो? कुछ खोट है तभी तो नगर से भाग कर गाँव में आया है।

गाँव में घर बनते हैं स्वयं रहने के लिए—अपने परिवार के लिए, किराये पर देने के लिए नहीं। परिवार में पराये व्यक्ति को कौन सम्मिलित करना चाहेगा?

आदेश्वर गाँव के सम्मुख अपनी एक किराये की कोठरी की माँग लिये

खड़ा रहा। कोई भी आगे नहीं आ रहा है, इसीलिए सभी ने इस दिशा में सहानुभूति दिखाना अस्वीकार कर दिया। इस विशेष असफलता से आदेश्वर एक क्षण कुण्ठित हुआ, फिर मुस्काया।

बोला—"तो इतने बड़े गाँव में मुझे एक कोठरी भी किराये पर न मिलेगी ?"

उपस्थित मनुष्यों ने कठोर मौन साध भूमि अथवा आकाश की ओर देखना प्रारम्भ किया। कुछ वहाँ से चल दिये।

आदेश्वर को अब तक आशा थी कि कोई न कोई उसे आश्रय देने को प्रस्तुत हो जायगा। अब अनुभव ने बताया कि वह व्यर्थ थी। वह संसार में अकेला है, एकदम अकेला है। संसार उसे उसके गाँव में, अपनी पितृ-भूमि में मरने देने को भी प्रस्तुत नहीं है। उसका हृदय भर आया। नयनों में आँसू आ गये।

वह कितनी इच्छाएँ, भावनाएँ, हौंस और साध लेकर इस गाँव में आया था। वह किसी का हृदय दुखाना नहीं चाहता था। चाहता था केवल अपने बचपन के रहस्यमय मोहक दृश्यों को देखते रहना और उन्हीं के मध्य जीवन की अन्तिम घड़ियाँ पूरी करना।

ये इच्छाएँ और आकांक्षाएँ बालकों-जैसी कही जा सकती हैं। पर डाक्टरों ने उसे अपने जीवन को अधिक समय तक बनाये रखने के लिए नगर छोड़ने का आदेश दिया था। नगर का तीव्र गतिमान जीवन उसके स्वास्थ्य के लिए भार हो रहा था।

गाँव में लौटने की सम्भावना ने उसके सम्मुख बचपन के दृश्यों और चित्रों को पुनर्जीवित कर दिया था। प्राचीन स्मृतियों के नवीन चित्र उसके हृदय को पुलकित करते थे।

उसने गाँव में एक स्वर्ग की कल्पना करली थी। कोई उसका अपना न था। जो कुछ कमाया खाया; पुस्तकों, सभाओं की भेंट किया और इससे भी जो बचा वह क्षण में लखपति होने की लालसा में सट्टे में गवाँ दिया।

उसके सब दुःखों, असफलताओं, और निराशाओं के विरुद्ध गाँव का

कल्पित जीवन उसे आशा से भर देता था। आशा की क्षीण रेखा उसे वृक्षों, तालों और ऊबड़-खाबड़ भूमि पर दिखाई देती थी। पर आज वह भूमि उसे स्वीकार करते मुख बिचका रही है। जहाँ वह अपनापन कल्पित कर रहा था वहाँ उसे घोर परायापन मिला।

नगर में, किराया देने पर, उसे स्वागत करने वालों की कमी नहीं थी। पर गाँव है कि न उसे स्वीकार करता है, न किराया स्वीकार करता है।

सब लोग धीरे-धीरे वहाँ से चले गये। केवल कुछ बालक रह गये।

आदेश्वर अपने ट्रंक पर बैठ गया। उसने सुना, शिवनरायन के घर में बालक रो रहे हैं। वे बाहर निकल लँगड़े-लूले का तमाशा देखने को उतवाले हैं और उनकी माँ उन्हें मार रही है, धमका रही है और डरा रही है कि किवाड़ न खोल, नहीं तो वह लँगड़ा-लूला घर में घुस आयेगा।

आदेश्वर के हृदय में एक ऐंठन हुई। उसके घर का द्वार उसके विरुद्ध ही बन्द है। जहाँ वह उत्पन्न हुआ है, जहाँ उसका नाल गड़ा है, उस घर में घुसने का अधिकार उसका नहीं है। वह उस पर अधिकार करने नहीं आया है। मृत्यु, जिसे डाक्टरों ने कह-कहकर उसके लिए अत्यन्त प्रत्यक्ष बना दिया है, जिसे अब वह मूर्तिमान देखता है, जो बात-बात में, अनन्त एकाकी क्षणों में उसके सामने होकर निकल जाती है, उसी मृत्यु की केवल प्रतीक्षा करने आया है।

नारी से विवाह की आकांक्षा पूर्ण होने से पहले ही दुर्घटना ने उसके गले में हार डाल दिया। मशीन का पट्टा वह हार बन गया और वह छोटा सा फोरमैन उस मशीन को अपने अंग भेंट दे बैठा।

सर्पिणी की भाँति उस मशीन ने अपनी ही सन्तान को खा डाला। उसीने आदेश्वर के हृदय में महान आशाओं की सृष्टि की और उसी ने उसे मसल कर नष्ट कर दिया। वह महानता के स्वप्न उसी के बल पर देख रहा था, उसीने उसे घसीट कर, साधारण से भी नीचे, अँधेरे में, सब कुछ छीन कर, छोड़ दिया। वह यन्त्रवाद के हताहतों में से था।

यन्त्र ने जो किया वह नियम की निर्ममता से, पर आदेश्वर उस निर्ममता

से उसे सह न पाया । उसके हाथ-पैर क्या टूटे वह भीतर-बाहर से टूट गया। उसे कोई आश्रय यदि जीवित रखे हुए था तो वह था उसका स्वेच्छाचारी अहंकार। वह अहंकार, जिसे पीस-पीस कर अन्याय और अत्याचार का आधार प्रस्तुत किया जाता है।

आदेश्वर को समस्त निराशाओं, समस्त असफलताओं के बीच बल केवल इसी स्थान से मिलता था। निराशा के क्षणों में वह अपने से कहता—आदेश्वर पराजय नहीं स्वीकार करेगा। पीठ नहीं मोड़ेगा। रोयेगा वह क्यों? वह सहेगा, सब सहेगा, और हँसते-हँसते।

अन्तिम मंजिल पर जो मृत्यु चिकित्सकों के लिए भयानक बन बैठी है, वह उसे भयानक नहीं लगती। वह उसके लिए एक विचित्र अस्पष्ट रहस्य-मय वातावरण में लिपट गई है। वह अपार सौन्दर्यमयी हो गई है।

वह उसका स्वागत करेगा। इसी तैयारी में वह लगा है। वह अपने हृदय का द्वार खोल देगा। जीवन के वसंतकाल में जो उसने कमाया वह सब उसके सम्मुख भेंट चढ़ा देगा।

उसके पश्चात् मृत्यु और वह एक गाढ़ालिंगन से निमग्न हो जायँगे। मृत्यु सुन्दर है और दिनोंदिन अधिकाधिक सौन्दर्य एकत्र करती जा रही है।

आदेश्वर वहाँ अकेला रह गया। धूप उसकी ओर धीरे-धीरे, मृत्यु की ही भाँति, सरकने लगी।

उसके पैर के नख सूर्य के रंग से रँग उठे। पर उसका हृदय अन्धकार-मय रात्रि के रंग से रँगा था। वह क्या करे?

क्या यहाँ से लौट जाय? पर यहाँ सड़क से दूर इक्का बुलाकर कौन लावेगा?

सब चले गये हैं। पता नहीं शिवनारायण हैं या नहीं? यदि नहीं हैं तो भी उनका रुख उसे ज्ञात हो गया है। भिखमंगे की भाँति प्राप्त आश्रय वह स्वीकार न करेगा। इसी द्वार के निकट, अथवा उससे दूर एक वृक्ष के नीचे अपनी पुस्तकों के बीच वह मर जाना स्वीकार करेगा। पर दया की लपटों में वह अपना बचाखुचा शरीर न झुलसायेगा।

पर वह असहाय है। यदि उसके हाथ-पैर काम के होते तो वह सब सामान कभी का वहाँ से हटा लेता। पर हाथ पैर काम के होते तो…?

कैसा मूर्ख है वह। अथवा ये क्षण कितनी मूर्खता से भरे थे। यदि उसके हाथ पैर काम के होते तो वह वहाँ क्यों होता?

नगर में अपने मकान में होता, जहाँ सेवा यदि वैसे नहीं प्राप्त होती तो खरीदी जा सकती है। इस समय की अपनी विचारधारा पर उसे हँसी आ गई।

सूर्य की किरणें और आगे बढ़ीं। वे उसके घुटनों तक पहुँची। निकट की नीम ने वायु के प्रति अपना सिर हिलाया। वायु में गर्मी आ चली। लू का एक झोंका आदेश्वर के मुख को भूरा बना गया। उसका हृदय इस समय भी खिल उठा!

लू का यह झोंका आज उसने कितने दिनों पश्चात् अनुभव किया है। इस मिट्टी का स्पर्श आज कितने समय पश्चात् उसे प्राप्त हुआ है। वह इसे अधिकाधिक अनुभव करने को कई वर्षों के भूखे की भाँति उतावला हो गया।

इस तप्त लू के स्पर्श ने कुछ क्षणों के लिए उसे निराशा से पृथक कर दिया। जिस ओर से झोंका आया था उसी ओर मुँह फेर लालसा-भरी अधमिंची आँखों से और की प्रतीक्षा करने लगा।

वह इस कार्य में व्यस्त था कि उसका ध्यान ट्रंक पर किसी के कर-स्पर्श सेभंग हुआ।

घूम कर देखा। पाया, एक नारी है। जो युवती है, पान से उसका मुख रचा है। वस्त्र भी उसके एकदम दरिद्र नहीं हैं।

दोनों के नयन मिले। उसने नारी के नयनों में भय, संकोच, उत्सुकता, और समर्पण का भाव देखा। वह उसकी कठिनाई समझ गया। बोला—"क्या है?"

युवती के नयनों में जल आ गया। आदेश्वर के साथ क्या हुआ है, यह उसने देखा है। वह आदेश्वर को पहले से नहीं जानती।

आदेश्वर जब गाँव से चला गया था, उसके बहुत दिनों बाद इस गाँव में आई है। और अब अपना सब कुछ खोकर, मिट्टी बन कर, मनुष्य की ठोकर

खाती यहीं रह गई है।

बोली—"महाराज, मेरे यहाँ चलोगे ? मैं नाइन हूँ।"

उसे भय था कि नाइन होने के कारण उसकी प्रार्थना अस्वीकार न हो जाय। वह उस पर एहसान नहीं कर रही थी। वह अपनी आत्मा की एक क्षुधा के कारण यह करने को बाध्य हुई थी।

आदेश्वर गम्भीर हो गया। ध्यान से उस नारी की ओर देखा, जो वरदान बनकर उसके अभिशप्त जीवन में प्रविष्ट होने को चेष्टा कर रही है। वह मुस्कराया। बोला—"तुम नाइन हो ?"

युवती ने शीघ्रता से उत्तर दिया—"हाँ।" जैसे कि इस विषय में वह अधिक समय तक कष्ट नहीं सह सकती थी।

"परन्तु तुम्हारे परिवार के लोग क्या इसे स्वीकार करेंगे ? मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण तुम बुराई में पड़ो।"

युवती ने उस मनुष्य को, जिसके मुखसे ऐसे वाक्य निकले, ध्यान से देखा। जीवन में यह प्रथम पुरुष है, जिसने उसकी भलाई-बुराई के विषय में सोचा है। और भी हैं पर उनके लिए तो वह नारी है, नगण्य नारी है।

बोली—"मेरे तो कोई नहीं है।"

"अच्छा। जैसी तुम्हारी इच्छा हो। कहाँ है तुम्हारा घर ?"

"ताल के उस ओर, पीपल के पेड़ के नीचे।"

युवती ने हाथ उठाकर संकेत किया। पर आदेश्वर ने उसीकी ओर देखा ध्यान से। उसके मुख को मन में अंकित किया। बोला—"तुम स्वतन्त्र हो तभी परोपकार कर सकती हो। पर यह तो बताओ कि यह सामान तुम्हारे यहाँ तक जायेगा कैसे ?"

"कैसे जायेगा ?" युवती का मुख-मण्डल प्रसन्नता से खिल उठा। "मैं ले चलूँगी। तुम यहीं बैठे रहो। मैं इन्हें रख आऊँ तो फिर तुम्हें लेती चलूँगी।"

आदेश्वर को यह सब अत्यन्त रोचक लगा। बोला—"अच्छा जो तुम्हारी इच्छा हो करो।"

दुपहरी में नाइन के यहाँ पहुँचकर आदेश्वर ने उससे सबसे पहले पानी माँगा। रूपमती ने उसकी ओर अविश्वस्त नयनों से देखा। जो हो गया था उस पर वह विश्वास नहीं कर रही थी।

"मैं तुम्हें पानी दूँ ?"

"क्यों क्या हुआ ? पानी ही नहीं खाने को भी देना होगा। देखती हो कि मैं इस अकेले हाथ से चूल्हा-चौका नहीं कर सकता।"

रूपमती ने आदेश्वर की हीनता पर ध्यान दिया। कैसा सुन्दर पुरुष इस प्रकार अपाहिज हो गया है। उसका हृदय द्रवित हो गया।

पानी देते हुए उसने पूछा—"यह सब कैसे हुआ ?"

"बैठोगी तो बताऊँगा। जो हमें उठाता है, वह गिराता भी उतनी ही बुरी प्रकार है। मिल में सब पिस गया है।"

रूपमती ने उसके हाथ के ठूँठ का स्पर्श किया। पैरों में जहाँ खाल सिकुड़ कर पैर को सदा के लिए मोड़ गई थी, उसे देखा।

फिर उसकी दृष्टि उन ट्रंकों की ओर गई। उत्सुकता बढ़ी—इनमें क्या है ?

पूछा—"इन में क्या है ?"

आदेश्वर ने ताली का गुच्छा उसके सामने फेंक दिया।

"देख लो जो कुछ है, यही है।"

रूपमती ने धड़कते हृदय से ट्रंक खोला। पाया कि वह पुस्तकों से भरा है।

पुस्तकें ! उसे विश्वास न हुआ। उसने दूसरा ट्रंक खोला। उसमें भी पुस्तकें; तभी तो इतने भारी थे ! तीसरे ट्रंक में उसे कपड़ों के दर्शन हुए।

इन पुस्तकों का क्या होगा ? उसने सोचा। विचार यह भी हुआ कि चुराई हुई होंगी। आदेश्वर पढ़-लिख सकता है, यह कल्पना उसकी न थी। वह नगर से आया है। पैसा, कपड़ा, लत्ता पास होगा, यह कल्पना उसकी थी। पर ये पुस्तकें ! उससे रहा न गया।

पूछा—"ये कैसी हैं ?"

"अरे, ये बड़ी अच्छी हैं, इन्हीं के आश्रय मेरा जीवन है।"

उसे विश्वास न हुआ।

"क्या करते हो इनका ?"

"पुस्तकों का पढ़ने के अतिरिक्त और क्या किया जाता है ?"

"तुम पढ़ते हो ?"

"हाँ, भई, हाँ।" उसने रूपमती की ओर देखा। तुम्हें विश्वास नहीं होता। मैंने पढ़ाई की परीक्षा किसी के सम्मुख नहीं दी; पर तुम्हें, जान पड़ता है, बिना परीक्षा लिये विश्वास न होगा।

बोला—"क्या पढ़ कर सुनाऊँ ? हिन्दी या अंग्रेज़ी ?"

अंग्रेज़ी ! रूपमती के कानों ने सुना। उसे विश्वास न हुआ। हिन्दी तक बात ठीक थी; पर अँग्रेज़ी !

उसका मुख आश्चर्य से खुल गया। वह अपने घर किसे ले आई है ! वह आदेश्वर को साधारण मानव समझ कर घर लाई थी, पर वह तो अब धीरे-धीरे देव में परिवर्त्तित हो रहा है।

आदेश्वर ऐसा है ! यदि वह पहले से यह जानती तो कदापि उसे अपने यहाँ निमन्त्रित करने का साहस न कर पाती।

उसकी मुद्रा देख आदेश्वर मुस्काया। साधारण भारतीय नारी के अज्ञान पर द्रवित भी हुआ।

बोला—"लाओ, यह ऊपर की पुस्तक दो; तुम्हें अंग्रेज़ी पढ़कर सुनाऊँ।"

रूपमती ने यन्त्रवत् आज्ञा-पालन किया। आदेश्वर ने मनुष्य के अधिकारों पर वह पुस्तक हाथ में लेली। और रूपमती से कहा—"बैठ जाओ; सुनो; यह अंग्रेज़ों की; गोरों की भाषा है।

रूपमती मूर्तिवत् बैठ गई।

आदेश्वर ने पढ़ना प्रारम्भ किया। रूपमती कुछ क्षण बैठी सुनती रही। फिर उसकी दृष्टि आदेश्वर के मुख की चेष्टाओं की ओर जा लगी। गिटपिट के साथ उसने उन ओठों के विचित्र आकारों को देखा। उसे मुस्कराहट आई।

आदेश्वर ने देखा। उसने और भी तेज़ी से पढ़ना प्रारम्भ किया। अंग्रेज़ी के वे शब्द अब जैसे रूपमती को गुदगुदाने लगे। उसकी मुस्कान शीघ्र ही हँसी में परिवर्त्तित हो गई।

आदेश्वर की गति और भी तेज़ हुई। वह खिलखिला पड़ी। और फिर हँसी और इतनी हँसी कि पेट में बल पड़ गये। लोट गई। आदेश्वर ने पढ़ना बन्द कर दिया।

"मुझे घर में लाकर भूखा ही रखना है क्या ?"

रूपमती शीघ्र ही उठ बैठी। उसने अपने को संयत किया। पूछा—"जो पढ़ा है इसका अर्थ समझते हो ?"

"क्यों नहीं। तुम समझोगी ? बैठो, समझाऊँ।"

"नहीं, अभी नहीं। तुम्हारे लिए खाने को बना दूँ। मुझे तो अब तुम से डर लगता है।"

हँसी से बीच की दीवार पर्याप्त गिर चुकी थी।

"क्यों ?"

"तुम पढ़ सकते हो। गाँव में कोई अंग्रेज़ी नहीं जानता। पटवारी का लड़का पढ़ने जाता है। पर खरच बहुत है; वे भी अब छुड़ाने वाले हैं।"

"मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा। पढ़ोगी न ?"

"न भई, तुम्हारी गिटपिट मैं नहीं पढ़ूँगी। हाँ, यदि हिन्दी पढ़ा दोगे तो पढ़ लूँगी। फिर मैं रामायण बाँच सकूँगी। नाई की रामायण वैसी ही बँधी रक्खी है, उन बातों को आज आठ बरस हो गये।"

उसके नयनों में आँसू आ गये।

"चलूँ, तुम्हारे लिए कुछ बना दूँ। हाँ, यहाँ धुआँ होगा। बाहर पीपल के नीचे खाट डाले देती हूँ। वहाँ लेट जाओ। वहीं नहाने को पानी रख दूँगी।"

आदेश्वर पीपल के नीचे लेट कर सोचने लगा। रूपमती रस्सी-गगरा ले पानी लेने गई।

[४]

आदेश्वर के ताऊ पैंसठ वर्ष के थे। उन्होंने अपनी गृहस्थी बहुत सँभाल कर बनाई थी। कभी कोई कच्चा काम नहीं किया था। वे स्वयं भी पण्डित थे। संस्कृत श्लोक बोल सकते थे। समय पड़ने पर उसका अर्थ भी कर सकते थे। पर उस अर्थ का क्रियात्मक संसार में क्या स्थान है, इसकी जानकारी से कोरे थे।

उनका सब से बड़ा पुत्र जो तीन पुत्रियों से छोटा था, अब अठारह वर्ष का था। परन्तु वैसे उसका होना न होना बराबर था। उसे पराये तो दूर अपने शरीर के विषय में भी विशेष ज्ञान न था। वह सनक गया था। कुछ का विचार था कि किसी ने कुछ कर दिया है और उसका दिमाग़ खराब हो गया है। पर मस्तिष्क का विशेष सम्बन्ध प्रजनन से नहीं जान पड़ता, इसी से उसका विवाह पण्डित शिवनरायन ने बारह वर्ष की अवस्था में ही कर दिया था।

कन्या के पिता ने पण्डित शिवनरायन को देखा, उनकी खेती-बारी को देखा, और लड़के को देखने की आवश्यकता ही न समझी। विवाह अपने अर्थ में सफल हुआ था। पुत्रवधू ने परिवार को दो पुत्र और एक पुत्री दी उन्हीं पोती-पोतों को द्वार के भीतर बन्द कर उनकी दादी चिल्ला रही थीं।

शिवनरायन की पत्नी में कोई असाधारणता न थी। या यह कहा जा सकता है कि उनकी असाधारणता उनके अत्यन्त साधारण होने में थी।

आदेश्वर जब तक उनके दरवाजे ट्रंक पर बैठा रहा तब तक वे बार-बार किवाड़ के छिद्र से झाँक झाँक देखती रहीं और उसकी विवशता में कदाचित् आनन्द लेती रहीं। कदाचित् मनाती भी रहीं कि वह यहाँ से टल जाय जिससे उनके परिवार में जो शान्ति है वह नष्ट न हो, पोतों के लिए भूमि सुरक्षित रहे।

पर जब उसने रूपमती को एक-एक कर सब ट्रंक ढो ले जाते देखा, तो उनकी छाती पर साँप लोटने लगा। कुछ भी हो आदेश्वर उनका है। उसे लगा कि उन ट्रंकों में जो कुछ है, उस सब की स्वामिनी वह नाइन होगी।

जब ट्रंक हैं, उनमें ताला लगा है, और वे भारी हैं तो उनमें कुछ होगा अवश्य। वह आदेश्वर की जीवन भर की कमाई है। चाहे कितना ही थोड़ा हो, कुछ होगा अवश्य।

जब आदेश्वर बैसाखी के सहारे रूपमती के साथ चला गया, तो वे पड़ोसिन के द्वार पर चिल्ला कर बोलीं—

"वह गाँव भर की रंडी हमारे बेटे का सामान अपने यहाँ ढोकर क्यों ले गई। हमारे बीच पड़ने का उसे क्या काम?"

पड़ोसिन की अवस्था उतनी अर्थात् तिरसठ वर्ष की तो न थी पर अपने पति से वे बड़ी थीं और शिवनरायन की पत्नी से आठ वर्ष छोटी।

उसने सोचा—लड़का धूप में तपता रहा; तब कुछ नहीं बोली और अब छाती फट रही है!

पर ऐसा खोल कर तो कहा नहीं जा सकता। उसे भी आवश्यकता पड़ती है। बोली—"भरे-भरे ट्रंक देखे, मुँह में पानी भर आया। सब माल हथिया लेगी, और उसके यार बेचारे लड़के को मार-पीटकर बाहर कर देंगे।"

तभी मार्ग चलती तेलिन ने ब्राह्मणियों की यह कथा सुन उसमें रस लिया। आज इनकी नीची हुई है। बोली—"जब आप लोगों ने उसे अपने घर में स्थान नहीं दिया तो वह बेचारी लिवा ले गई। कोई गोद में उठाकर नहीं ले गई। अपनी खुशी से गया है।"

वृद्धाओं को उसका यह बीच में बोलना बुरा लगा। शिवनरायन की पत्नी बोलीं—"तेलिन, तुम जाओ, अपना काम करो।"

"हाँ, महराजिन, जा तो रही हूँ। पर रूपमती ने बुरा नहीं किया। वैसे चाहे वह कितनी ही बुरी हो पर यह काम उसने अच्छा किया है। अपाहिज की सेवा की है। जितनी सेवा वह कर सकती है उतनी तुम से नहीं होती महराजिन!"

शिवनरायन की पत्नी कट-कट गईं। जी में आया कि उसे कच्चा खा जाय। तेलिन वहाँ से चली गई।

बलदेव कायथ उधर होकर निकले। उन्होंने हरपाली को सुनाकर

कहा,—"अब तो कलजुग आ गया है। बाँभन के लड़के वेश्या-नाइनों के हाथ का बनाया खाने लगे हैं।"

"क्या बात हुई भैया?" पड़ोसिन ने इस नवीन समाचार में रुचि लेते हुए पूछा।

"अरे हरबक्स की दादी! बात क्या होती? मैं अभी रूपमती के द्वार पर होकर आ रहा था। देखा धूमधाम से चूल्हा जल रहा है। पूछा, क्या बात है। तो वह बोली—"देखते नहीं मेरे यहाँ अतिथि आये हैं।" मैंने पूछा—क्या यह तेरे हाथ का बनाया खायँगे? तो सुनकर बोली—'जब मेरे यहाँ आये हैं, और बनवाया है, तो क्यों न खायेंगे? क्या मैं आदमी नहीं हूँ।' तभी तो हरबक्स की दादी, मैं कह रहा हूँ कि कलजुग, घोर कलजुग आ गया है। बाँभन सूद्रों के हाथ का खाने लगे। धरम कहाँ रहा?"

यह समाचार शिवनरायन की वृद्धा पत्नी को अत्यन्त कष्टकर हुआ। यह क्या किया आदेश्वर ने? कुल में कलंक लगाया।

बोली—"भैया! परदेस करके आया है। परदेस में कोई क्या करता है कौन देखता है। पर देस में तो सँभलकर रहना चाहिए।"

"तभी तो कहता हूँ काकी, बाँभनों में वह धरम नहीं रहा।" और वह अपने मार्ग चले गये।

दोनों वृद्धाएँ एक दूसरे की ओर देखने लगीं। दोनों ने सोचा कि वैसे चाहे उसे घर में लौटा लेने की बात भी होती, पर अब वह असम्भव है। नाइन के हाथ का खाकर जो अपने को पतित कर चुका है, उसे घर में नहीं घुसाया जा सकता और वे झुँझला उठीं—आदेश्वर से अधिक रूपमती के ऊपर। आदेश्वर नाइन के यहाँ क्यों जाता? अवश्य ही इस गाँव की वेसवा ने उसके ऊपर कोई जादू-मन्तर कर दिया है।

आदेश्वर रूपमती के यहाँ टिका है, उसके हाथ का उसने खा लिया है, यह समाचार गाँव-भर में विद्युत्-गति से फैल गया। मौन सर्वसम्मति से निश्चय हो गया—आदेश्वर ब्राह्मण परिवार से बाहर।

परिवार से, जाति से उसे बहिष्कृत कर दिया, पर मनुष्यता से बाहर

उसे न कर सके; गाँव के बाहर उसे न कर सके। फल इसका विपरीत हुआ। ऐसे मनुष्य को देखने के लिए बहुत, और वार्तालाप करने के लिए कुछ, मनुष्य लालायित हो गये।

जब शिवनरायन तीसरे पहर घर लौटे, तो हरपाली ने दुखित होकर कहा—"देख ली तुमने अपने प्यारे भतीजे की करतूत ?"

शिवनरायन मार्ग में उसे दस स्थानों पर सुन आये थे। उनके परिवार पर टिप्पणियाँ हो रही थीं। उस परिवार का भूत खालकर देखा जा रहा था। अपने परिवार के प्रति गाँव की इस भावना से वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फिर भी बोले—"क्या हुआ ?"

'क्या तुम्हें नहीं पता ?"

"मैं अभी खेत से आ रहा हूँ। मुझे क्या पता ?"

"तुम्हारे भतीजे उस रंडी रूपमती के यहाँ ठहरे हैं और वहीं उसके हाथ का खाया है।"

शिवनरायन ने सब सुन लिया था और उसके ऊपर शत्रुमित्रों की टिप्पणियाँ भी उनके कानों में पड़ चुकी थीं, इसलिए वे आकाश से न गिरे। पर उन्हें महान् कष्ट अवश्य हुआ।

बोले—"मेरे बुढ़ापे में दाग लगाने के लिए यह कमबख्त क्यों जीता रहा। मशीन में आया तो पूरा ही क्यों न आ गया !"

न पत्नी ने, न उन्होंने और न समाज के किसी उत्तरदायी मतदाता ने इस बात पर विचार किया कि यदि वह रूपमती के साथ नहीं जाता तो क्या करता ? क्या सदा उसी पेड़ के नीचे पड़ा रहता ?

पर अब वह समस्या तो थी ही नहीं। स्वयं कुछ करने को रह ही नहीं गया था। रह गया था केवल दूसरे को दोष देना।

इस शुभ कार्य को सब ने करना प्रारम्भ किया।

सामान्य भावना थी कि आदेश्वर को वहीं पड़े-पड़े मर जाना चाहिए था, वह बेसवा नाइन के यहाँ क्यों गया और उसके यहाँ क्यों खाया।

सब कुछ सोच-समझ कर, शुद्ध होकर, शान्त होकर, शिवनरायन ने

निश्चय किया कि वे अब उससे बोलेंगे भी नहीं; कोई वास्ता न रक्खेंगे। पर एक बात और यह होती तो अच्छा होता। यदि सरकार भी जाति-बहिष्कृत मनुष्य को उसका भाग जब्त कर दण्ड देती तो...। आदेश्वर का भाग शिव-नरायन के पास रह जाता और समस्त घटना शुभ हो जाती। पर सरकार के तो धरम-करम कुछ है ही नहीं। उन्होंने पत्नी से कह दिया—"मैं उसका मुँह भी नहीं देखना चाहता।"

पर घरवाली इसके विरुद्ध थी। आदेश्वर का मुख चाहे देखा जाय या न देखा जाय। न देखा जाय तो बुरा न होगा, पर उसके ट्रंकों में क्या है यह अवश्य देखा जाना चाहिए, और यही देख लेने को वह उतावली हो रही थी।

बोली—"नहीं तुम्हें जाना चाहिए। लोक-दिखावा हो जायगा। और... उसके साथ चार बड़े ट्रंक थे, जिन्हें वह बेसरम वेसवा उठा ले गई है। जाओ, देख आओ, वह क्या लाया है? कह देना कि जिसे अपना माल सौंप दिया है, उसी से जमीन-जायदाद ले। अब इस द्वार आने की आवश्यकता नहीं है।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।"

पर ट्रंकों की बात सुनकर निश्चय हिलता प्रतीत हुआ। यदि वे ट्रंक, ट्रंक नहीं उनमें रक्खे कपड़े और रुपये, उनके घर में आते तो—

हरपाली ने उसका स्वागत क्यों नहीं किया। मन में आया कि उसके ऊपर क्रुद्ध हों, पर उसका फल क्या निकलेगा? जो होना था हो गया।

"नहीं, मैं उसका मुँह भी नहीं देखूँगा।"

पर आश्चर्य कि वह घर से बाहर निकल, सबसे छोटे मार्ग से, रूपमती के घर की ओर चले।

आदेश्वर भोजन कर चुका था; कुल्ली कर रहा था। रूपमती उसके हाथ पर पानी डाल रही थी। एक स्वच्छ तौलिया हाथ पोंछने के लिए उसने ले रक्खा था।

शिवनारायन ने वह देखा जो किसी ने नहीं देखा था। औरों ने, चाहे ठीक ही हो, अनुमान किया था कि आदेश्वर ने बेसवा नाइन के यहाँ

भोजन किया है; पर शिवनारायन ने प्रत्यक्ष ही देखा।

शिवनारायन जाकर दूर खड़े हो गये। उनकी दृष्टि तौलिये की स्वच्छता पर लग गई। कौन है गाँव में कारिन्दा के अतिरिक्त जो इतना स्वच्छ वस्त्र प्रयोग करता है? एक प्रकार का आतंक उन पर छाने लगा। उन्होंने अपने को सँभाल लिया। इस पतित का आतंक वह मानें! यह नाइन के हाथ का बनाया भोजन करनेवाला कुलांगार!

आदेश्वर ने ताऊ की ओर देखा। उसने उन्हें पहचान लिया। धीरे-धीरे तौलिये से अपना अकेला हाथ पोंछा और फिर अपने पूज्य को प्रणाम किया।

शिवनारायन ने देखा कि नाइन के यहाँ खाकर वह तनिक भी लज्जित नहीं है, और न कुण्ठित ही है। जैसे कितने दिनों से उसके यहाँ रह रहा हो।

कुछ बोलना था इसलिए बोले—"कहो आदेश्वर, अच्छे तो हो?"

आदेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, वह बैसाखी के सहारे पीपल के नीचे अपनी खाट की ओर चला। रूपमती ने शीघ्रता से जाकर एक और खाट वहाँ डाल दी और उस खाट को सरकाकर छाया में कर दिया।

आदेश्वर जाकर खाट पर बैठ गया। बोला—"हाँ, दादा! अच्छा क्या, जीवित हूँ। सोचा, शेष दिन यहाँ आकर पूरा करूँ। इसीसे चला आया।"

"अच्छा किया। अपना घर अपना ही है।" शिवनारायन ने यन्त्रवत् कहा। रूपमती चली गई थी; फिर भी उसके द्वार की ओर तथा चारों ओर देख कर बोले—"पर इस नाइन के यहाँ...।"

आदेश्वर सब समझ गया। किसी को दोष देना उचित न समझा। बोला—"दादा, हम लोगों के लिए छुआछूत क्या? नगर में रह आये हैं, दिन भर काम करने के बाद चूल्हा फूँकने की हिम्मत नहीं रहती। ढाबे में खाना होता है। वहाँ कौन जाने बाँभन है कि चमार। तीसों जाति खाती हैं।"

शिवनारायन आदेश्वर की इस धृष्टता से चकित हो गये। ऐसे भयानक सत्य को न छिपाना, न उसके लिए लज्जित होना! उन्होंने तत्काल फल निकाल लिया। उन्होंने उसके कर्म को उसकी शारीरिक अवस्था से जोड़ दिया। समझ लिया कि यह जो उसका अंगभंग हुआ है, इसका कारण उसका यह

अधरम ही है। जो धर्म से गिर जाता है; धर्म उसे अछूता नहीं छोड़ता। ट्रंकों में क्या है, वे केवल यही देखना चाहते थे। ऐसे भतीजे के निकट बैठने की उन्हें तनिक भी इच्छा नहीं थी। पर उठने की इच्छा होने पर भी वे उठ न पा रहे थे। भय भी था कि रूपमती के द्वार पर इस बुढ़ापे में बैठा कोई उन्हें देख न ले। पर वे ट्रंक। वे ही उन्हें बाँध कर रख रहे थे।

कुछ क्षण बीते। दोनों स्तब्ध। आदेश्वर को यह शान्ति भारी ज्ञात हुई। पूछा—"दादा, कोई नई बात हुई है गाँव में ?"

शिवनारायण ने सोचा—इसे गाँव की बात से मतलब ? पर उत्तर देना चाहिए। और उन ट्रंकों को देखने की इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है जब आदेश्वर की सदिच्छा उन्हें प्राप्त हो। अन्यथा रूपमती सब दबाकर रख चुकी होगी। बोले—"हाँ, बहुत दिनों से कुछ नहीं हो रहा था, पर आजकल एक घटना हो गई है।"

"क्या ?" ग्राम्यजीवन में आदेश्वर की रुचि जगी।

"रामावतार के छोटे लड़के ने कारिन्दे के थप्पड़ मार दिया है और अब वह फौजदारी....।" इसके बाद पूरा हाल उन्होंने उसे सुना दिया।

आदेश्वर ने बड़ी रुचि दिखाई। उसे लगा कि नगर छोड़कर उसे कोई विशेष हानि नहीं हुई है, वहाँ वह मज़दूरों में भाषण देता था, यहाँ किसानों में देगा। वर्ग-संघर्ष कहाँ नहीं है। दलित पीड़ित सभी स्थानों पर हैं। वह लेटा था उठकर बैठ गया।

"आगे क्या होगा, दादा ?"

"होगा क्या ! रामसरन को जेल हो जायगी। उसका भाई पहले ही अलग हो गया है। बुढ़ापे में रामावतार की मट्टी खराब होनी थी, वह होगी। मेरा बेटा यदि ऐसा करता तो मैं उसकी ओर देखता तक नहीं; पैरवी करना तो दूर रहा। भला भैया, तुम्हीं बताओ; कारिन्दा यहाँ के राजा हैं। ज़मीन-जगह सब के वे मालिक हैं। पटवारी उनके हैं। नहीं भई, राजा से वैर नहीं चल सकता। चक्की के पाट के नीचे दाने की क्या बिसात ?"

आदेश्वर बोला नहीं। दादा की बात सुन ली। उसने सोचा—हमारे

राष्ट्र-निर्माता इन लोगों के कन्धे पर राष्ट्र बनाने जा रहे हैं। जो अपने पुत्र के लिए कष्ट सहने को प्रस्तुत नहीं वे राष्ट्र के लिए क्या कष्ट झेलेंगे। उसने नयन मूँदे और पुनः लेट गया।

शिवनरायन ने सोचा—ट्रंकों में क्या है, कैसे ज्ञात हो ? वे घर जाकर क्या उत्तर देंगे।

तभी आदेश्वर के मन में एक विचार जगा। गाँव में आने से भोजन-प्राप्ति की समस्या उसका पीछा नहीं छोड़ेगी। उसे भोजन का प्रबन्ध करना ही होगा। कमाना ही होगा। वह उठा, घर को ओर चला। शिवनरायन उसके पीछे-पीछे। यदि वह इस समय अपने ट्रंक खोले तो वह सब देख पायेंगे।

रूपमती उसके सामान को ठीक से लगा रही थी।

"लाना, जरा ताली देना।"

रूपमती ने गुच्छा आदेश्वर के हाथ में दे दिया। शिवनरायन ने देखा—आदेश्वर ने सब कुछ रूपमती को सौंप दिया है। उनका सिर घूमने लगा ; पर वे खड़े रहे।

आदेश्वर ने बड़े ट्रंक का ताला खोला। उत्सुकता शिवनरायन में लहरा गई। वे दृष्टि गड़ाकर उसमें देखने लगे। देखा—उसमें कुछ घास जैसी रेशे-दार साफ-साफ वस्तु भरी है। एक कोने में कुछ कपड़े रक्खे हैं। वे स्वच्छ थे ; मूल्यवान भी जँचे।

आदेश्वर ने सींकों का एक अधबना टोप निकाला और दो तीन औज़ार। शिवनरायन सोच रहे थे कि आदेश्वर वस्तुओं को उलटे-पुलटेगा, तो उन्हें और भी देखने को मिलेगा। पर उसने उसके बाद ट्रंक बन्द कर दिया। ताली रूपमती के सामने फेंकदी।

बायें हाथ से वस्तुओं को सँभाल वह खाट पर आ बैठा। शिवनरायन की इच्छा तत्क्षण वहाँ से चले जाने की थी। पर आदेश्वर इस सामान का क्या करेगा, यह देखने की उत्सुकता वे दबा न सके। शिशुत्व वृद्धावस्था में पुनः अवतीर्ण होता है।

आदेश्वर ने बायें पैर की अंगुलियों से टोप को पकड़ा ; शिथिल दाहिनी अंगुलियाँ उसकी सहायता करने लगीं। वह बायें हाथ से शीघ्र ही तेज़ी से टोप बुनने लगा।

उसके इस कौशल को शिवनरायन देखते रहे। पूछा—"आदेश्वर क्या करोगे इसका बुनकर ?"

"बेच दूँगा। अब मुझसे और कोई काम नहीं होता, तो यह सीख लिया है।"

शिवनरायन को लगा कि आदेश्वर के प्रति प्रारम्भ से ही विरोध भाव रखकर उन्होंने अपनी हानि ही की है। अपने घर रहता तो ट्रंकों में जो है वह अपना होता। इस मज़दूरी की आय भी उन्हीं के घर में आती। भूमि बाँट देने की बात उठती ही नहीं।

उनकी इच्छा हुई कि उससे घर चलने को कहें। पर अब वह नाइन के हाथ का खा चुका है। समस्त गाँव यह समाचार जानता है। वे कह नहीं सके।

सोचा—प्रायश्चित्त किया जा सकता है। वह गंगा-स्नान कर आये; ब्राह्मण-भोजन करा दे।

पर वे यह उस समय उसे सुझा न सके। ज्यों-ज्यों उसके हाथ शीघ्रता से चलते देखते त्यों-त्यों उन्हें आन्तरिक कष्ट अनुभव होता। उसके हाथ चलते गये, जैसे कि वे शिवनरायन के हृदय पर चल रहे हों। उनका कष्ट बढ़ता गया, पर धीरे-धीरे पीड़ा असह्य हो गई।

विचार आया कि गाँव में इसे खरीदेगा कौन ?

पूछा—"ये कहाँ बिकेंगे ?"

"नगर से कोई न कोई आकर ले जायगा। मैं प्रबन्ध कर आया हूँ। अथवा मैं ही चला जाऊँगा।"

शिवनरायन की पराजय सम्पूर्ण थी। आदेश्वर को पैसे प्राप्त ही होंगे। वह परकटा होने पर भी उन से अधिक उड़ सकता है। उनकी पीड़ा घनीभूत होकर उनके मस्तिष्क में भर गई। उन्हें लगा कि वे वहाँ बैठे न रह सकेंगे।

वे उठ खड़े हुए और बिना कुछ बोले वहाँ से चले गये।

द्वार से रूपमती और खाट से आदेश्वर उन्हें देखते रहे।

रूपमती जाकर आदेश्वर के निकट खड़ी हो गई। आश्चर्यचकित नयनों से उसके शीघ्रता से चलते हाथों को देखती रही। यह केवल पढ़ा-लिखा ही नहीं, कैसे-कैसे काम जानता है।

पूछा—"यह क्या बना रहे हो?"

"टोप।"

"टोप?"

"हाँ।"

"किसके लिए?"

"क्यों, तुम्हारे लिए। तुम पहनोगी नहीं?"

रूपमती लज्जित हो गई। उसके कपोलों पर अरुणिमा छा गई।

उसके इतने मनुष्य हैं पर कभी किसी ने उससे टोप पहनने की बात नहीं कही।

"नहीं, ठीक बताओ।" उसने प्रसन्नता से उसके कार्यव्यस्त चेहरे को देखते हुए कहा।

"ठीक ही तो बताया है। आओ, देखूँ तुम्हारे सिर पर ठीक बैठता है या नहीं?"

रूपमती की तीव्र इच्छा वहाँ बैठ जाने की हुई। वह स्थान खुला था। भीतर संकोच था; वह एक डग पीछे सरक गई।

"भागती क्यों हो? अब मैं तुम्हारे यहाँ आ गया हूँ तो टोप पहिनाये बिना जाऊँगा नहीं।"

रूपमती आनन्द में नहा उठी। उससे किसी ने इस प्रकार की बात नहीं की थी। वह आकर उसकी खाट के निकट बैठ गई। दो क्षण उसके पैरों की पकड़ को, हाथ की चाल को, और दृष्टि की सतर्कता को देखती रही। बोली—"सच बताओ, इसका क्या करोगे?"

"यह काम है जो मैं करता हूँ। इसे नगर में बेच दूँगा। जो मज़दूरी

मिलेगी, उससे अपना निर्वाह होगा।"

"तुम बाज़ार में बेच आओगे ?"

रूपमती को अभी पूर्णतया विश्वास नहीं हुआ।

"क्यों नहीं ? तीन वर्षों से मैं यही कर रहा हूँ।"

"कितना मिल जाता है ?"

"यदि अच्छी तरह काम किया जाय तो चालीस-पचास रुपये मास में बच सकते हैं।"

रूपमती में स्वाभिमान जाग उठा। उसे जीवन में नवीन द्वार खुलते दिखाई पड़े। उनके सम्मुख विस्तृत खुले मैदान थे, जहाँ वायु में दुर्गन्ध, विलासिता और अपवित्रता न थी।

"तो तुम मुझे यह काम सिखादोगे ?"

"सीखोगी ?"

"हाँ।"

"क्या-क्या सीखोगी ? पहले पढ़ना सीखोगी या टोप बुनना ?"

"दोनों साथ-साथ। फिर दोनों जने बैठकर टोप बुनेंगे और एक-साथ नगर में जाकर बेच आयेंगे।"

रूपमती ने यह कह तो दिया। पर उसका चेहरा लाल हो आया।

"तो ज़रूर सिखाऊँगा तुम्हें। मैं बुनता हूँ, तुम देखो। ध्यान से देखना ही सीख लेना है।"

तब वह बुनने लगा। रूपमती देखने लगी।

उसके सम्मुख भविष्य का पवित्र पट फैला हुआ था। वह अब प्रतिष्ठित नारी जीवन बिता सकेगी।

[५]

रामाधीन को पृथक कर देने से रामावतार की गृहस्थी में एक नवीन समस्या का प्रवेश हुआ। अब तक घर के भीतर का सब प्रबन्ध रामाधीन की बहू करती थी। पर अब सहदेई से यह आशा नहीं की जा सकती थी।

किसोरी बड़ी थी; सब भार उसी पर आपड़ा। फिर भी घर में जबतक कोई बड़ी-बूढ़ी न हो बात बनती नहीं।

आन्तरिक प्रबन्ध में कोई कठिनाई नहीं थी। भोजनादि ठीक समय पर मिल जाता था। घर की सफाई, पशुओं की देख-भाल सब हो जाती थी। पर जब दूसरे घरों से इस घर के सम्बन्ध की बात आ पड़ती थी, तो कठिनाई होती थी। सहदेई इस विषय में विशेष सहायक होने की उत्सुकता नहीं दिखाती थीं। ससुर के विरुद्ध उसका अभियोग यह था कि उन्होंने सम्पत्ति के तीन न करके चार भाग क्यों किये? अपने लिए एक भाग क्यों रक्खा। जब वे अपने प्यारे दो बेटों के साथ रह रहे हैं तो क्या वे बेटे उन्हें खाने को नहीं देंगे?....

उसके ये विचार मन में ही न रहे। परिवार में क्या, आधे गाँव में व्याप गये। वे इतने शक्तिशाली हो गये कि रामावतार को बहू के सामने अपनी स्थिति रखने को विवश होना पड़ा।

शिक्षक के सम्मुख बालक की भाँति वे बोले—"बहू, रामाधीन मेरा सब से पहला बेटा है। सब से अधिक प्यार मैंने उसे ही किया है। जब उसी ने मुसीबत के समय मुझ से अलग हो जाने की उत्सुकता दिखाई तो बता मैं और किस पर विश्वास करूँ? वृद्धावस्था में रामविलास और रामसरन ने यदि भोजन न देकर मुझे घर से निकाल दिया, तो मैं कहाँ भीख माँगता फिरूँगा। मैं उस चौथाई को छाती पर रख कर तो ले ही न जाऊँगा। मरने के बाद वह भी तुम्हीं लोगों का है।"

सहदेई कुछ बोली तो नहीं, पर उन्हें ज्ञान हो गया कि वह सन्तुष्ट नहीं हुई है। उसकी ज़िद यही रही कि जो बेटे प्यारे हैं, वही खाने को क्यों नहीं देते। उसे इस पर विश्वास नहीं हुआ कि रामाधीन को कभी उन्होंने प्यार किया है। वे अब अर्द्ध-वैरी में परिवर्त्तित हो गये थे।

रामावतार इन दिनों विशेष चिन्तित इसलिए थे कि पुलिस ने रामसरन पर अभियोग कठोर लगाया था। उसका कहना था कि यदि अन्य लोग बीच-बचाव न करते, कारिन्दे को न बचाते, तो यह रामसरन उन्हें जान से मार डालता।

सज़ा तो होगी ही; इसमें सन्देह न था, पर कम और अधिक का प्रश्न था। वैजंती थी कि रो-रो कर मरी जा रही थी। उसका रोना देख वृद्ध की छाती और भी फटती। जो साहस वे बटोरते थे, वह बहू की दशा देख छूट जाता था। वकील के लिए रुपयों की चिन्ता अलग सवार थी।

हरेकृष्ण ने कहा,—"आदेश्वर नगर से आया है। इतने दिनों तक रहा है। वह कदाचित् कुछ काम की सलाह दे सकेगा।"

रामावतार सोचता था कि इस मुकदमे में यदि वह माथुर को कर पाता तो...। वह सब से बड़ा वकील है। यह कदाचित् उनके जीवन का अन्तिम मुकदमा है। इसके आगे वे जीना नहीं चाहते।

अपने आदर्शों को उन्होंने अपने ही हाथों खण्डित होते देखा है; और अधिक देखने के लिए वे पीड़ित नहीं रहना चाहते। बस एक बार रामसरन को बचाकर ला पाते। उनके जीवन की यही अन्तिम साध थी।

रामावतार को अनुभव हो रहा था कि यह झगड़ा दूसरे झगड़ों से भिन्न तल पर है। अन्य झगड़े आपसी थे, प्रायः दीवानी से सम्बन्ध रखते थे। यह है फौजदारी; शासक और शासित के बीच। शासक की प्रतिष्ठा का प्रश्न था; शासित का अपराध कुछ तो था ही।

वे अनुभव कर रहे हैं कि उनके इष्टमित्रों की संख्या में कमी होने लगी है। लोग उनके निकट आते सकुचाते हैं। रामाधीन का अलग हो जाना भी प्रायः इसी का द्योतक है। जो उनके साथ है, उनके पास आता जाता है, वही कारिन्दा के विरुद्ध है। ऐसे व्यक्ति को अपमानित करने, हानि पहुँचाने, कष्ट देने की अलिखित और अकथित आज्ञा कारिन्दा के सिपाहियों को मिल जाती थी। वे तदनुसार कार्य प्रारम्भ कर देते थे।

दो दिन हुए हरिकृष्ण को एक सिपाही, पुलिस का नहीं कारिन्दे का, बुलाने आया।

"कारिन्दा साहब ने बुलाया है।"

अभी सूर्य पूर्णतः निकल नहीं पाये थे। वह तत्काल कपड़ा पहन तैयार हो गया। हरवाह से कहा—"भई, तू खेत पर चल। मैं आ रहा हूँ।"

गढ़ी में पहुँच सिपाही ने कहा—"पण्डित, बैठ जाओ। कारिन्दा साब अभी आते हैं।"

हरेकृष्ण खाट पर बैठ गया। सिपाही नारियल गुड़गुड़ाने लगा। बैठे-बैठे हरेकृष्ण को कई घण्टे होगये। दोपहर होने को हुआ। खेत में आवश्यक कार्य था।

"अरे महमूद, कारिन्दा साब कितनी देर में आयेंगे?"

"बैठे रहो पण्डित, अभी आते ही होंगे।"

और महमूद वहाँ से उठकर चला गया।

हरेकृष्ण की वहाँ बैठे-बैठे विचित्र दशा हो गई। उसे एक एक क्षण महीने के समान बीत रहा था। कारिन्दे का भय था जो उसे वहाँ बाँधे हुए था। यदि वह वहाँ से उठकर चला जाता है तो पता नहीं कि वे उससे कितने क्रुद्ध हो जायँ।

वह बैठा रहा। उसने मेज़ को और टूटी गद्देदार आरामकुर्सी को देखा, जिस पर बैठने का अधिकार अपनी उपस्थिति में कारिन्दा सा'ब को, और उनकी अनुपस्थिति में केवल उनके सम्बन्धियों को था। उसकी दृष्टि मेज़ से दूर बिखरे उन मोढ़ों पर गई। जिनके पैरों का चमड़ा कट चुका था और जिनके सरकंडे वर्षों से घिसते चले आ रहे थे।

साधारण ग्रामीण के बैठने के लिए भूमि थी या दो खाटें।

कोई वहाँ और था नहीं। अकेला हरेकृष्ण बैठा असाध्य रोगी की भाँति मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे कष्ट होता था, भीषण कष्ट होता था, तड़प तड़प उठता था। पर मौत न आती थी।

उसने अपनी दृष्टि जैसे भगवान् की ओर प्रार्थना के लिए उठाई और वह जाकर उस भवन के दो शहतीरों के ऊपर लगी पैंतालीस कड़ियों में अटक गई। वह उन्हें गिनने लगा।

वे कड़ियाँ एकदम साफ, सीधी और चिकनी थीं। गोल रंदे द्वारा उनके किनारों पर हल्की रेखाएँ अंकित थीं। उन विशालकाय शहतीरों की लम्बाई चार बड़े-बड़े कमल-पुष्पों द्वारा पाँच भागों में विभाजित कर दी गई थी।

पैंतालीस कड़ियाँ उसने गिनीं। खरीदने वालों ने उन्हें गिना था, बढ़इयों ने उन्हें गिना, फिर छोटे इंजीनियर और राजों ने उन्हें गिना; और उसके पश्चात् जो कोई अभाग्य का मारा उनके नीचे बैठा उसने उन्हें गिना। ऐसे लोगों ने उन्हें एक बार नहीं, दो बार नहीं; बार बार गिना है। उन कड़ियों के साथ विचित्रता यह है कि पैंतालीस होने पर भी प्रत्येक गिनती में वे पैंतालीस नहीं होतीं। ऊनकी संख्या चालीस और पैंतालीस के बीच कम ज़्यादा होती रहती है। हरेकृष्ण ने बार-बार ध्यान लगाकर उनकी ओर देखा। और झुँझला-झुँझलाकर अपने संख्या-ज्ञान को उनके विरोध में उपस्थित किया।

तनिक-सी आहट हुई और उसका ध्यान उसी ओर चला गया। हृदय उछल पड़ा। कारिन्दा सा'ब आ गये, अब उसे छुट्टी मिल जायगी।

पर जिस ओर से वह शब्द आया था, उस ओर दृष्टि डालने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ दीवार में कोई मार्ग नहीं है। तीन-चार हाथ ऊँची दो खिड़कियाँ हैं और कारिन्दा सा'ब उसकी उपस्थिति में, उछलकर उन खिड़कियों से न कूदेंगे। ध्यान से देखने से ज्ञात हुआ कि खार लगी दीवार की एक परत गिर पड़ी है और उसे ही उसने कारिन्दा समझ लिया है।

बैठे-बैठे-दोपहर हो गई पर कारिन्दा साहब का पता नहीं। महमूद भी वहाँ से गया तो लौट कर नहीं आया। उसने निश्चय किया कि अब चल देना चाहिए। जो होगा, देखा जायगा।

वह उठकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही कारिन्दा ने तो नहीं, उनके अकेले मुंशी ने प्रवेश किया।

बोले—"हरेकृष्ण, बैठे-बैठे ऊब गये क्या? रामावतार के दरवाज़े घण्टों बैठे रहते हो तब तो जी नहीं ऊबता।"

हरेकृष्ण की समझ में सब आ गया। उसे आज्ञा है कि रामावतार से सम्पर्क रक्खा तो खैर नहीं। पर वह बोला कुछ नहीं।

उसकी स्थिति कैंची की दो धारों के बीच में थी। एक ओर कारिन्दा जीवन-शासक है और दूसरी ओर गाँव का अपना समाज है, जिससे वह टूट नहीं सकता। सम्बन्ध बनाये ही रखना होगा। जब कारिन्दा बात भी

नहीं पूछते तब वह समाज ही काम आता है।

बोला कुछ नहीं। खड़ा मुंसी के मुँह की ओर देखता रहा। फिर जैसे कुण्ठित-सी एक दृष्टि उसने समस्त कमरे पर डाली।

मुंशी मुसकाये। उसी भाँति, जैसे कहा जाता है, भेड़िया शिकार को देख कर हँसता है। फिर व्यङ्ग के साथ बोले—'आप तशरीफ ले जा सकते हैं; अभी कारिन्दा सा'ब को फुरसत नहीं है।'

हरेकृष्ण सब कुछ समझ कर वहाँ से चल दिया।

(६)

हरेकृष्ण के साथ जो कुछ हुआ वह रामावतार को मालूम हो गया। ज्यों-ज्यों मुकदमे की तारीख निकट आती गई, रामावतार और रामविलास को विशेष रूप से और रामाधीन को कुछ सीमा तक समस्त गाँव का अपने प्रति वैराग्य अनुभव होने लगा।

उनके दरवाज़े आना तो लोगों ने बन्द कर ही दिया; जिनका मार्ग भी उस ओर से था, वे भी लम्बे मार्ग से चक्कर काटकर जाने लगे। जब किसी के द्वार पर उनमें से कोई जाता, तो वे लोग मुख से कुछ न कहते, पर वैसे उठकर चल देते। कोई बहाना उठ जाने का निकाल लेते। इस तरह यह परिवार का गाँव अछूत बन गया। पर सहानुभूति प्रायः सब की उनकी ओर ही थी। क्योंकि वह उनमें था और उसने गाँव की प्रतिष्ठा के लिए हाथ उठाया था।

उनकी, बड़े-बूढ़ों की, प्रतिष्ठा इन अधिकारियों ने धूलि में मिला रक्खी है जो बिना गाली बोलना नहीं जानते, जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते, जो अपने पिता के समान वृद्धों से पशुवत् व्यवहार करते हैं।

उन्हीं के विरुद्ध रामसरन ने हाथ उठाया था। उसदिन समस्त गाँव में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई थी।

गाँव की आत्मा घुट रही थी। ऊपरी शान्त आवरण के नीचे भीषण विस्फोटक कसमसा रहे थे; मन ही मन भड़क रहे थे।

कौन कौन शासन-यन्त्र के विरुद्ध हैं यह जानने के लिए अधिक व्यक्तियों की सेवाओं को कारिन्दा साब ने स्वीकार किया था। किसी ने सेवाओं के परिवर्त्तन में धन स्वीकार किया था, किसी ने भविष्य में स्थायी नौकरी का आश्वासन माँगा था और किसी ने इस ढंग से कारिन्दा साब की मैत्री जीत लेने की धृष्ट योजना बनाई थी।

खेत कौन-से दो व्यक्ति साथ गये, गूलर के वृक्ष के नीचे कौन बातें कर रहे थे, ताल में पशुओं को पानी पिलाते समय कौन-कौन उपस्थित थे, यह सब समाचार, पूरे व्यौरे के साथ, कारिन्दा साब को प्राप्त होते। अपराधी सेवा में बुलाये जाते और उन्हें उचित आदेश तथा चेतावनी दी जाती थी।

इस व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप गाँव में किसी व्यक्ति को दूसरे का विश्वास न रहा। प्रत्येक दूसरों को कारिन्दे का व्यक्ति समझने लगा।

किसी समाज को नष्ट-भ्रष्ट या पराजित करने को इससे घातक दूसरा अस्त्र आज तक आविष्कृत नहीं हुआ है। कारिन्दे ने कुशल अनुभवी शासक की भाँति उसका प्रयोग किया और फिर प्रसन्नता से समाचार सुना कि रामावतार का परिवार गाँव में अकेला और असहाय बना दिया गया है।

मुकदमा कायम हो चुका था। पुलिस अपनी कार्रवाई कर चुकी थी। हत्या का प्रयत्न प्रमाणित करने की सब चेष्टाएँ हो रही थीं। थानेदार और कारिन्दा को पूर्ण विश्वास था कि रामसरन को वे लम्बी सज़ा दिलवा सकेंगे। सज़ा इतनी लम्बी कि समस्त गाँव उससे भयभीत हो जाय और भविष्य में शासन-यन्त्र के दाँतों में उँगली देने का कोई साहस न करे।

फिर भी कारिन्दा साहब चाहते थे कि रामावतार आकर उनके सम्मुख रोये, गिड़गिड़ाये; रामसरन के लिए क्षमा-याचना करे; और वे उसकी प्रार्थना ठुकरा देने अथवा झूठे व्यर्थ आश्वासन देने का आनन्द प्राप्त कर सकें। वह चाहते थे कि उन्हें वह आनन्द प्राप्त हो, जो बधिक को जीव की हत्या करने से पहले, उसे खिलाने-पिलाने और उसके साथ खेलने से प्राप्त होता है।

गाँव से यह अलगाव रामावतार को खल रहा था। यदि वह युवक होते तो कदाचित् इतना अनुभव न होता; वृद्धावस्था में इतना दुःख और अकारण

उन्हें भाया नहीं। वह प्रायः टूट से गये, और अपनी असहाय अवस्था पर रो पड़े। पर जब भी वह रोये, अकेले में रोये। अपने रोने को उन्होंने परमात्मा से भी छिपाने का यत्न किया। रोना लज्जा का विषय है, यह उनकी आत्मा अत्यन्त कटु अनुभव से जानती थी।

इस अवस्था में लज्जा ही उनकी रक्षक थी। लज्जावश लजवंती झुक जाती है। पर जो भीतर तक लजालु है वह तन कर खड़ा हो जाता है। उसे विपत्ति के सामने झुकने में लज्जा आती है।

रामावतार रोते-रोते अचानक रुक गये। अँगोछे से आँसू पोंछ डाले। और फिर अपने सम्मुख देखा। धूप फैली थी और उसके बीच बीच बादलों की छाया थी। मन में उठा कि जीवन धूप-छाँह है। यदि बादल आ जाते हैं तो धूप क्या चमकना बन्द कर देती है? यदि वे समस्त कष्ट नहीं सहेंगे तो कौन सहेगा? क्या होगा? अधिक से अधिक रामसरन को पाँच-सात वर्ष की जेल हो जायगी। पर उसकी बहू जो है। यही सबसे कोमल और कठिन स्थान है।

उनके मस्तिष्क में एक जटिलता और अस्पष्टता भरी हुई थी; वह जैसे धीरे से, चुपके से, घुल गई। आलोक का धब्बा उस अन्धकार में दृष्टिगोचर हुआ। वे अपना काम करेंगे। फल? उसका क्या करना; वह उनके हाथ में नहीं है। होइहै सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे भावुकता छोड़ काम करेंगे। वे जानते हैं कि इस प्रकार का निश्चय अधिक चलेगा नहीं। जहाँ वे वैजंती को रोते सुनेंगे, वहीं घर से निकल अकेले बैठ स्वयं रोने लगेंगे; पर निश्चय तो कर ही लेना चाहिए कि अब वे न रोयेंगे।

गाँव में उन्हें सहायता देना तो दूर कोई सम्मति देने को भी प्रस्तुत नहीं। स्वयं रामाधीन अब उनसे बचकर रहता है। वह कारिन्दा के भय से आजकल जैसे परम भयभीत है। उन्होंने निश्चय किया कि वे अब जातिच्युत आदेश्वर के पास जायँगे; वह कदाचित् क्या करना चाहिए, इस विषय में उनकी सहायता कर सकेगा।

आदेश्वर इस मुकदमे में रुचि ले रहा था। पर अब तक उसके निकट इस परिवार में से कोई नहीं गया था। अन्य लोग भी विशेषतया उसकी ओर आकर्षित नहीं हुए थे। लोगों का आकर्षण प्रारम्भ हुआ ही था कि एक बात चल पड़ी।

आदेश्वर के आ जाने से रूपमती को उसका पत्नीत्व प्राप्त हो गया। वह सिपाहियों की इच्छा-पूर्ति की सामग्री नहीं रह गई। आदेश्वर का लूला-लंगड़ा व्यक्तित्व समर्थ व्यक्तित्व था।

कारिन्दा सा'ब आदेश्वर के आगमन से प्रसन्न न थे। वह बाहर से आया था। और गाँव से बाहर व्यक्ति प्रायः सभी स्थानों में अपने अधिकारों के प्रति जग पड़ा है। जागरण का आलोक गाँव में पहुँचने से ग्रामीणों के नेत्र खुल जाने का भय था। जहाँ प्रकाश नहीं होता वहाँ जीवों के नेत्र होने पर भी उनमें दृष्टि का विकास नहीं होता। भय था कि आदेश्वर गाँव में कहीं दीपक न बन जाये।

एक बात और थी। उन्होंने विचारा था कि आदेश्वर को अपने पास बुलावें और उसे ऊँच-नीच समझावें। पर जब से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उसके पास पुस्तकें अंग्रेज़ी की हैं, और वह धारा-प्रवाह पढ़ सकता है तब से वे इस विषय में संकुचित हो गये हैं।

उनके बड़े भाई का लड़का एफ० ए० में पढ़ रहा है। उसकी छुट्टी होने वाली है। वह हो जाये तो वे उसे बुलवायेंगे और तभी आदेश्वर को भी ज्ञात हो जायगा कि वह कितने पानी में है।

भय था कि आदेश्वर जब इतना पढ़ा है तो अंग्रेजी लिख भी सकता होगा। अंग्रेज़ी में लिखी अर्जियों से वे घबराते थे। उन्हें विश्वास था कि अंग्रेज़ी की अर्ज़ियों पर हाकिम अवश्य और शीघ्र विचार करते हैं। वे हाकिमों को प्रभावित कर सकती हैं। यही सब सोच-विचार कर उन्होंने इस आस्तीन के साँप को अभी छेड़ना उचित नहीं समझा।

वह पड़ा रहता है तो पड़ा रहे। उसके कारण उनके मुंशी, उनके सिपाहियों को यदि असुविधा होती है तो भले हो।

आदेश्वर टोप बुन रहा था और रूपमती ध्यान से देख कर सीख लेने का प्रयत्न कर रही थी। उसने भी कुछ रेशे हाथ में लेकर उन्हें मोड़ना आरम्भ किया था, तभी पुलिस के दो सिपाही आधी वर्दी पहिने उधर आये।

उन्होंने चार मोटी-मोटी पुस्तकों की बगल में विचित्र-शरीरी आदेश्वर को टोप बुनते देखा तो झिठक गये। कुछ क्षण खड़े रहे फिर एक ने रूपमती को संकेत से बुलाया।

रूपमती ने शान से उसे कुछ ठहरने का संकेत किया। वे लोग आदेश्वर की रूप-रेखा देखते उसके हाथ पाँव की चाल अवलोकन करते खड़े रहे।

रूपमती देर लगा कर उनके निकट गई। दूर लेजाकर उन्हें समझा दिया कि वह अब साहबों के लिए टोप बनाती है। वे ही लोग उसे खाने को देते हैं। यह लँगड़ा लूला व्यक्ति उन्हीं का आदमी है।

साहबों का आदमी है, यह गाँव के सिपाहियों के लिए बड़ी बात थी। ऐसे आदमी को उन्होंने सलाम करना उचित समझा और अपने विचार को कार्यान्वित किया। आदेश्वर ने कुशल-प्रश्न पूछ उन्हें विदा दी।

उसकी तटस्थता एवं वार्तालाप की ऊँची रीति देख उन्हें रूपमती के कथन पर विश्वास हो गया। विवशता हृदय में मचल कर रह गई। यदि वह साहब का आदमी न होकर और कोई होता तो वे पराजित होने पर भी उसके प्रति द्वेष रखते; पर साहब का मनुष्य होने से उनकी पराजय इतनी पूर्ण हुई कि आगे द्वेष रहने को कहीं स्थान न रह गया।

[७]

इतने दिन आदेश्वर को आये हो गये, रामावतार कभी उसके निकट न आये। कारण प्रत्यक्ष था। उसने न केवल नाइन के हाथ का खाया था वरन् नाइन के यहाँ रह रहा था। गाँव वाले कहते थे कि उसने नाइन को घर में डाल लिया है।

ऐसे मनुष्य से कोई भी प्रतिष्ठित प्राणी सम्बन्ध न रक्खेगा। हाँ, आदेश्वर यदि उसके स्थान पर आता तो वे कभी उसे दुतकारते नहीं।

गाँवों में लोगों को टहलने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती इसलिए वहाँ टहलने की बात करना हँसी उड़वाना है। पर आदेश्वर वहाँ टहलने जाता था और उसके जाने की दिशा थी रामावतार के घर की ओर नहीं, दूसरी ओर। वह बैसाखी के सहारे उन खेतों के चारों ओर चक्कर काटा करता था, जो उसके थे और अब भी उसके हो सकते थे।

वह उन आम्र वृक्षों के चारों ओर मँडराया करता था जिनपर चढ़-चढ़ कर उसने आम तोड़े थे। वह उस गूलर को स्पर्श कर पुलकित होता जिसके खोंते में से उसने छोटी मक्खियों का मधु तोड़कर खाया था।

इस भ्रमण में वह पुरातन घटनाओं और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों का स्मरण कर हृदय भर भर लाता। जब वह लौटता तो उसके नयन प्रायः आँसुओं से तर होते थे। वह आँसू बहाता और नित्यप्रति उसी ओर घूमने जाता।

लौटने पर रूपमती उसके अश्रु पोंछती। दोनों दुखी अपना भूत स्मरण कर रो देते। कुछ क्षण पश्चात् एक दूसरे के करुण अश्रुओं में वे अपनी-अपनी शान्ति पा जाते थे। आँसुओं के समुद्र में भावना का आश्रय ले वे सहानुभूति से मुस्करा पड़ते। फिर रूपमती का रामायण-पाठ महुवे के तेल के दीपक के प्रकाश में प्रारम्भ हो जाता था। वह अशोक वाटिका में विरहिणी सीता की कथा को बार-बार पढ़ती और उसमें एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करती। इस पतित समझे जाने वाले घर में दो खण्डित जीवन पुनर्निर्माण की चेष्टा कर रहे थे।

रामावतार को इस समय भी आदेश्वर के निकट जाने में एक झिझक अनुभव हुई। पर आवश्यकता होती है जो इस प्रकार की सब बाधाओं को तोड़ डालती है।

रामावतार ने देखा कि आदेश्वर खाट पर लेटा है परिश्रम से थककर। एक पूर्ण टोप उसके निकट रक्खा है, दूसरे का प्रारम्भिक भाग बन रहा था। उसकी खाट से कुछ दूर रूपमती एक नवीन नींव पर बुन रही थी। रूपमती के द्वार पर होने की कल्पना कर वे सिहर उठे।

उन्हें देख रूपमती उठकर खड़ी हो गई। दौड़कर एक खाट उठा लाई। बिछाकर बोली—"बैठो, काका।"

रामावतार बैठ गये। रूपमती की ओर और फिर लेटे आदेश्वर की ओर देखा।

"अभी लेटे हैं। पाँच मिनट में उठ बैठेंगे। जगाने की आवश्यकता न पड़ेगी। तुम बैठो।"

रामावतार बैठ गये। यदि सन्ध्या तक भी बैठा रहना पड़ेगा तो वे बैठेंगे।

पीपल के पेड़ से छनकर धूप के चकत्ते भूमि पर बिखरे हुए थे। उनमें से एक आदेश्वर के पैर पर पड़ रहा था। यहीं उस लुंज पैर पर रामावतार की दृष्टि जम गई।

उन्होंने देखा आदेश्वर कितना अपाहिज है। पर फिर भी जिये जा रहा है। और अपने जीवन से कितना सन्तुष्ट है। उन्हें उससे ईर्ष्या-सी हो आई। इतनी प्रसन्नता! इतना सन्तोष!

वे देख ही रहे थे कि आदेश्वर जैसे उनकी दृष्टि के गुदगुदाने से जाग गया। नेत्र खोले तो रामावतार को बैठा पाया।

"पालागी काका!"

रामावतार ने आशीष दिया।

"बाल-बच्चे सब प्रसन्न?"

"कहाँ आदेश्वर! रामसरन की विपत्ति तो तुमने सुनी ही होगी। अब तो जैसे समस्त गाँव वैरी हो रहा है। सूझ नहीं पड़ता कि क्या करूँ?"

"हाँ, काका, जमींदार के विरुद्ध कौन खड़ा होगा; पर साहस नहीं छोड़ना। यदि जायेगा तो रामसरन भले काम के लिए जेल जायेगा।"

रामावतार का बूढ़ा हृदय कृतज्ञता से भर गया। गाँव में आदेश्वर ही पहिला व्यक्ति है जिसने खुलकर रामसरन की प्रशंसा की है।

इस प्रशंसा ने वृद्ध को अत्यधिक बल प्रदान किया। आदेश्वर के प्रति वह अपने को खोल देने को लालायित हो गया।

"भैया, जेल हो चाहे जो हो; जो होना है वह तो होगा ही। पर एक बार कोई अच्छा वकील उसके लिए कर पाता। भलीभाँति लड़ लेने पर मेरी साध पूरी हो जाती।"

उनका हृदय भर आया।

"काका, घबराओ नहीं; भगवान् सब भला ही करेगा। यदि नगर में रामसरन ने ऐसा कार्य किया होता तो आज सहस्रों आदमी उसके पीछे होते पर यहाँ गाँव में तो लोग चूहों की भाँति डरते हैं।"

"क्या करें भैया, रहना यहीं है; राजा हैं, चाहे जितना दुःख दे सकते हैं।"

आदेश्वर चाहे उसकी विशेष सहायता न कर सके, पर इतने वाक्यों ने उनके हृदय से भार उतार लिया। उन्हें अपने पर विश्वास हो चला। उन्हें ज्ञात हो गया कि वे अकेले नहीं हैं। एक व्यक्ति है जिससे वे अपने मन की बात निःसंकोच कह सकते हैं; जो इस सम्बन्ध में सहानुभूति और साहस के दो शब्द कह उनका उत्साह बढ़ा सकता है; जिसे साधारण भय छू तक नहीं गया है। उस समय उन्हें लगा कि निर्भीकता का मूल्य कितना बड़ा है।

पूछा—"भैया, अब क्या करना चाहिए ? तुम सहर में रहे हो तुम्हें ।"

उन्हें लगा कि आदेश्वर उन्हें बीच में टोंकना चाहता है; उन्हें यह भी लगा कि यह कहकर वे अपनी सांसारिक अनभिज्ञता प्रकट कर रहे हैं। उन्होंने सुधारा।—"मैंने मुकदमे लड़े हैं फौजदारी के नहीं, दीवानी के।"

आदेश्वर ने कहा—"काका, सब ठीक जायगा। यहाँ मेरी जान-पहिचान विशेष नहीं है। कानपुर होता तो मैं आपकी पर्याप्त सहायता कर सकता था। फिर भी जैसा काम रामसरन ने किया है, उसके पीछे जनता को खड़ा होना ही चाहिए।"

रामावतार को आदेश्वर बहुत अच्छा लगने लगा। ऐसे पुरुष का अंग-भंग परमात्मा ने क्यों किया ? कदाचित् इसीलिए कि वह यहाँ आकर उनका साहस बढ़ाये।

आदेश्वर ने रामावतार की ओर दखा, और ध्यान से देखा। वह उनसे

एक ऐसा प्रश्न करने वाला था, जिसका ठीक उत्तर देने में मनुष्य की आन्तरिक बाधा बहुत अधिक होती है। पर वही प्रश्न वास्तव में रामसरन की रक्षा की कुंजी है।

रामावतार ने सिर ऊँचा किया। उसके नेत्रों से नेत्र मिलाये, फिर निकट खड़ी रूपमती की ओर देखा।

आदेश्वर ने पूछा—"काका, यह बताओ, तुम इस मुकदमे में कितना रुपया व्यय करना चाहते हो? कचहरी में काम या तो गहरी जान-पहिचान से होता है या रुपये से।"

यह प्रश्न रामावतार के लिए भयंकर था।

वे अब तक सब कुछ रामसरन पर वार देने की बात सोच रहे थे। पर अब प्रश्न तुरन्त वार देने का था। वे तीव्रता से विचारने को विवश हुए। पहले भी इस प्रश्न पर उन्होंने विचारा था, पर इतनी स्पष्टता से नहीं।

इस कठिन और जटिल प्रश्न के हल को वे उस समय तक टालते रहे हैं जब तक कि अन्तिम निर्णय का समय नहीं आ गया, और निर्णय तुरन्त करना आवश्यक नहीं हो गया।

दो हल थे और दोनों सुलझावों से दुःख और पीड़ा का निकास होता था। इस विषय में गोलमाल कर वे अपने को ठगते रहे थे। जो वे नहीं कर सकते थे, वही करने की उनकी इच्छा थी और समझते थे कि कर ले जायँगे। पर अब वे अपने को असमर्थ पा रहे थे।

उन्होंने सोचा था कि रामसरन के लिए वे अपना सर्वस्व दाँव पर लगा देंगे। घर बेच देंगे, भूमि गिरवी रख देंगे, ऋण ले लेंगे। पशु बेचेंगे और मुकदमा लड़ेंगे। रुपया पानी की तरह बहायेंगे और रुपया ऐसा तरल है जो पीछे अपना चिन्ह छोड़ जाता है। यह प्रभाव रामसरन के पक्ष में होगा।

पर अब आदेश्वर को उत्तर देना है। वे कितना रुपया व्यय करना चाहते हैं; अर्थात् कितना रुपया व्यय करने की सामर्थ्य उनमें है। इच्छा और आकांक्षा का प्रश्न है नहीं है, प्रश्न है सामर्थ्य का। उन्हें वास्तविकता पर उतरने को बाध्य होना पड़ा।

जिस हतोत्साहक फल को वे टालते रहे थे वह सम्मुख आ गया। उन्होंने देखा कि रामसरन जेल जाकर कुछ वर्षों में छूट आयेगा। पर जो भूमि वे कुछ सौ में गिरवी रक्खेंगे उसके छूटने की विशेष आशा सुदूरवर्ती भविष्य में भी नहीं दिखाई पड़ती। और फिर यदि गिरवी ही रखनी है तो वे खायेंगे क्या ? रामसरन की बहू क्या खायेगी। एक दुःख के ऊपर भूख का दुःख और आरोपित होगा।

रामसरन और भूमि के बीच जब द्वन्द्व हुआ तो उन्होंने निर्णय राम-सरन के विरुद्ध किया। परिवार के लिए व्यक्ति के स्वार्थ की बलि देनी उन्होंने स्वीकार की।

जब वे भूमि गिरवी रखने नहीं जा रहे हैं तो उनकी धनराशि अत्यन्त सीमित हो गई। उन्होंने आदेश्वर की बेधक दृष्टि से अपने को बचाते हुए उत्तर दिया —"भैया, बहुत कुछ करके डेढ़ सौ रुपये से ऊपर जाने की मेरी सामर्थ्य नहीं है।"

आदेश्वर ने सुन लिया; कुछ कहा नहीं।

इससे रामावतार को सन्तोष हुआ। वे सोच कुछ और रहे थे। उन्होंने सोचा था कि डेढ़ सौ सुनकर आदेश्वर कहेगा; जिस पुत्र ने तुम्हारे लिए अपना जीवन झोंक दिया; उसके लिए आज तुम डेढ़ सौ रुपये लेकर कचहरी चले हो। डेढ़ सौ रुपये में क्या होगा ?

यह सत्य है कि डेढ़ सौ रुपये में क्या होगा। पर वे आगे अस-मर्थ थे।

आदेश्वर ने कहा —"काका, फौजदारी का मुकदमा है। रुपया अधिक खर्च होगा। परन्तु तुम चिन्ता न करो। रामसरन की रक्षा सारे गाँव का कार्य है। रुपया आयेगा और हमसे जो कुछ हो सकेगा सभी उसकी रक्षा के लिए किया जायगा। तुम वकील करो, और अच्छा वकील करो।"

आदेश्वर के चेहरे पर एक तेज आ गया। श्रमिकों के उस नेता की आत्मा पीड़क शक्तियों की चुनौती पाकर युद्ध को खड़ी हो गई। उसकी आन्दोलन-संचालन और संगठन शक्ति को जैसे किसी ने खोदकर सर्पिणी

की भाँति जगा दिया हो।

उसने निश्चय कर लिया कि रामसरन की रक्षा का उत्तरदायित्व समस्त गाँव का है, उसका है, और वह इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करेगा।

वह गाँव में मरने के लिए आया है। यदि मरते मरते अपने अन्तिम श्वासों से वह इस गाँव की मृतप्राय आत्मा को अनुप्राणित कर सका तो उसके प्राणों की अन्तिम घड़ियाँ अकारथ नहीं जायेंगी।

बोला—"काका, तुम चिन्ता न करो। भगवान् की कृपा से सब ठीक होगा। महावीर स्वामी कार्य में सहायता देंगे।"

रामावतार का मस्तक कृतज्ञता से झुक गया। आदेश्वर के मुख का उत्साह उसे छू गया। भगवान् हरेकृष्ण का भला करे, जिसने उन्हें आदेश्वर के पास परामर्श के लिए आने की सम्मति दी।

वे आदेश्वर के प्रति सहानुभूति से भर गये। उनके कुल का यह लड़का! यदि इसने नाइन के हाथ का न खाया होता तो....।

बोले—"आदेश्वर भैया, तुम पुनः बिरादरी में सम्मिलित हो सकते हो, केवल गंगा-जल पान करके....।"

आदेश्वर ने काका की सहानुभूति का आदर किया। बोला—"काका, आपको मेरी चिन्ता है यह मेरा सौभाग्य है। और किसी ने इस विषय में कभी मुझ से कुछ नहीं कहा; और इसका कारण यही है कि किसी की रुचि मुझमें नहीं है।"

"ऐसा क्यों कहते हो आदेश्वर?"

"काका, इस व्यवहार के लिए मैं दुखित नहीं हूँ। बेड़ियों से जकड़े प्राणी किसी को समझने तक के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। इस गाँव में जो स्वतन्त्र व्यक्ति था वही तो मेरा उपकार कर सका। जो समस्त गाँव भी मिलकर कदाचित् मुझे न दे सकता वह उस अकेले व्यक्ति ने दिया। मैं गाँव को उसी व्यक्ति के नाते जानता हूँ। उसका अपमान कर मैं गाँव का अपमान नहीं करूँगा। गाँव की सम्पूर्ण ममता मुझे उससे ही प्राप्त हुई है।"

रामावतार ने कहा—"पर आदेश्वर, जो कुल की रीति है, जो मर्यादा युगों से भगवान् राम के समय से चली आई है। उसे भंग करना क्या उचित है?"

"दादा, स्वतन्त्र मानव को संयत रखने के लिए किसी समय मानव-मानव के बीच इस दीवार की आवश्यकता रही होगी यह मैं मानने को तैयार हो सकता हूँ; पर आज वह दीवार हमारी बेड़ी बन गई है, जो न हमें चलने फिरने से, वरन् साँस लेने से रोक रही है। मैं मृत्यु के निकट हूँ, परमात्मा ने मेरे लिए उस दीवार को, उस बेड़ी को तोड़ दिया है, जिससे मैं निर्भीकता से, खुले हाथों अपने शत्रुओं का सामना कर सकूँ।

"जो बेड़ियाँ एक बार मैं गिरा चुका, उन्हें दुबारा क्यों पहिनूँ। आज मैं स्वतन्त्र होकर मान और प्रतिष्ठा की बात कर सकता हूँ, पर बेड़ी पहिन कर मैं केवल जेलखाने की व्यवस्था की बात ही कर सकूँगा।"

"भई, जो तुम कह रहे हो, वह मेरी समझ में नहीं आता। पता नहीं पढ़-लिखकर तुम लोगों के मस्तिष्क में विकार आ जाता है, अथवा हमीं लोग भटके हुए हैं।"

"काका, आज भले ही समझ में न आये, पर एक दिन तो समझ में आना ही होगा। बिना समझ में आये सरेगा नहीं। पर इसके लिए तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं; मैं भी चिन्ता नहीं करता। जिसका काम है वह सँभालेगा। इस समय प्रश्न है—रामसरन की रक्षा का।"

इतना कह आदेश्वर विचारमग्न हो गया। ललाट पर सलवटें पड़ गईं। उसने ऊपर पीपल के पत्तों में से झाँकते सूर्य को जैसे विचार-प्रवर्तन के लिए देखने की चेष्टा की, और फिर जैसे एकान्त में सोचने के लिए नयन मूँद लिये।

रूपमती सब सामान और पुस्तकें भीतर पहुँचाने के पश्चात् भोजन की प्रस्तावना में जुटी थी और रामावतार इस विचित्र मूर्ति और आत्मा की मुद्राएँ ध्यानपूर्वक देख रहे थे, एवं उनमें से साहस और धैर्य बटोरने का प्रयत्न कर रहे थे।

तभी एक ओर से पैरों की चाप सुन उन्होंने मार्ग की ओर देखा और दूसरे ही क्षण छदम्मी साहु और रामधन को अपने निकट खड़ा पाया।

वे कुण्ठित हो गये। उनका रूपमती के द्वार पर पाया जाना अनहोनी बात थी। पर आज वह सम्भव हो रही थी। उसके साक्षी भी थे तो गाँव के छदम्मी साहु और रामधन, जो अपने अपने क्षेत्रों में प्रमुखतम थे।

वे जड़वत् बैठे रहे, जैसे किसी ने समस्त प्राण उनमें से सूँत लिये हों।

"भई आदेश्वर, घूमने नहीं चलोगे?" आदेश्वर ने गम्भीर चिन्तन से नयन खोले। एक मुस्कान उसके मुख पर दौड़ गई। जैसे कि सेनापति को मोरचा जमाने योग्य स्थान मिल गया हो।

वह उछलकर खाट पर बैठ गया और बैसाखी कंधे के नीचे लगाता हुआ बोला—"क्यों नहीं!"

फिर रामावतार से कहा—"काका, तुम जाओ, मैं सोच विचार लूँ तो कल मिलेंगे। परमात्मा चाहेगा तो बात बन ही जायगी। मनुष्य का प्रयत्न और परमात्मा की दया दोनों ही चाहिए।"

"चलो साहु।" उसने बैसाखी टेक कुछ उछाल के साथ खड़े होते हुए कहा। "भई रामधन, उससे तनिक कह दो कि घूमने जा रहे हैं।"

और रामधन ने द्वार पर जाकर जोर से सुनाया:

"बाबू घूमने जा रहे हैं। तुमसे कहने को कहते हैं सो कह दिया।"

[८]

हरिनाथ को ज्वर चढ़ा, तो वह एक दिन में न उतरा। दो दिन में भी न उतरा, तब उसे अनुभव हुआ कि उसकी यह बीमारी लम्बी है। इसमें उसे कोई संशय न था कि इस बीमारी का सम्बन्ध रामविलास से है; इसलिए वह रामविलास पर क्रुद्ध हुआ, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

जब उसकी बीमारी की दशा में कारिन्दा सा'ब और पटवारी सा'ब उसे देखने के लिए पधारे तो उसने संकेत अवश्य कर दिया कि रामावतार के लड़कों का दिमाग आजकल सातवें आसमान पर है, किसी को कुछ समझते ही नहीं।

कारिन्दा सा'ब ने समझा कि वह रामसरन के विषय में कह रहा है। उन्होंने इस विषय में और भी जागरूकता से प्रयत्नशील होने की सोच ली और हरिनाथ द्वारा बारम्बार इसी अर्थ के वाक्यों के दुहराये जाने पर ध्यान न दिया। केवल यही कहा—"तुम जल्दी से ठीक हो जाओ। उसकी चिन्ता न करो। रामावतार और उसके लड़कों के लिए मैं अकेला ही बहुत हूँ।"

हरिनाथ स्वयं अपनी मार की बात न कहकर यह चाहता था कि वे लोग उसकी बीमारी का सम्बन्ध उस परिवार से जोड़ लें। पर इस विषय में उसे सफलता न मिली।

गाँव के वैद्य ने चोट के स्थान पर ज्वर की औषधि दी और उससे हरिनाथ को विशेष लाभ न हुआ।

दो दिन पश्चात् हरिनाथ को अपनी चिकित्सा की अशुद्धता ज्ञात हो गई। वैद्य जी की उस औषधि के साथ हल्दी-दूध का सेवन प्रारम्भ किया।

औषधि चल रही थी। चोट का प्रभाव जा रहा था। हरिनाथ का क्रोध रामविलास पर तो था ही, रामाधीन पर बुरी प्रकार उबल रहा था। इस बार अच्छा होकर वह रामाधीन को वह पाठ पढ़ायेगा कि वह जीवन भर याद रक्खेगा। उसने सोचा था कि रामविलास की उस दिन वहाँ उपस्थिति रामाधीन के षड्यन्त्र के कारण थी। उसने उसके लिए यह फन्दा तैयार किया था। वह उसे इसका प्रतिफल पूर्ण रूप से देगा।

सेवक भी इसमें सम्मिलित है। पर वह चमार है, छोटा है उसके मुँह लगना....। पर उसे चाहिए था कि वह उसकी रक्षा करता। क्या वह पटवारी का साला और कारिन्दे का बहनोई नहीं है। सेवक जानबूझ कर उस समय वहाँ से हट गया था। वह उसे ध्यान में रक्खेगा और देखेगा।

स्वयं रामविलास के प्रति उसका क्रोध तो बहुत था, पर विवशता भी उतनी ही थी; और इसी कारण क्रोध और भी अधिक हो गया था। पर वैयक्तिक रूप से उसे हानि पहुँचाने की बात उसके मस्तिष्क में न आसकी। वह उसके दुर्बल सम्बन्धी को हानि पहुँचाना निश्चित कर स्वस्थ होने के लिए उतावला हो गया। इस बार वह इस परिवार को छोड़ेगा नहीं। बिलकुल पीस देगा।

ऐसा कि भविष्य में किसी को हरिनाथ के सम्मुख खड़े होने का साहस न हो।

[९]

रामाधीन पृथक कर दिया गया तो प्रथम धक्का समाप्त हो जाने पर उसे अपना अकेलापन अनुभव हुआ। अपने शेष परिवार के प्रति एक द्वेष भावना उसमें जाग्रत हो गई। जब उसे अलग ही कर दिया गया है तो उसे पिता की लाज से क्या वास्ता? यदि उन्होंने उसकी नहीं रक्खी तो उसे कौन गरज पड़ी है।

अभी पृथक होने की सब बारीकियाँ पूरी नहीं हुई। भूमि का बँटवारा होना है। उस समय पटवारी की सहानुभूति बड़े काम की वस्तु हो सकती है। हरिनाथ का उसने उपकार किया। उसने एक भार गेहूँ उसे चाहे पिटकर ही दिया हो, पर दिया है। उसे उपकार ही उसने समझा! हरिनाथ से उसके परिवर्तन में कार्य लिया जा सकता है।

हरिनाथ पटवारी का साला है। यदि वह अपने बहनोई से रामाधीन के विषय में दो शब्द कह देगा तो पटवारी की सहानुभूति उसकी ओर हो सकती है। यह सहानुभूति पाने के लिए उसने हरिनाथ से और भी सम्बद्ध होना उचित समझा। जो कल तक उसका प्रबल वैरी था आज वह प्रबल हितकारी दिखाई पड़ने लगा।

हरिनाथ दूसरे दिन एक और बोझ लेने आया होगा, इस ओर उसका ध्यान गया ही नहीं। गया भी तो उसने दबा दिया। यदि वह इस विषय में किसीसे पूछताछ करता है तो उसके द्वारा दिये गये गेहूँ की बात खुल जायगी। और आजकल, वह समझता है कि, रामावतार उससे क्रुद्ध हैं; उसके भाग में से उतना गेहूँ काट सकते हैं।

वातावरण में उसने अनुभव किया कि कुछ रुपयों की उसके द्वारा लिये जाने की बात है। पर वास्तव में वह क्या है, यह न रामविलास ने उससे कहा है न रामावतार ने।

कुछ भी हो हरिनाथ की सहायता और सहानुभूति की उसे आवश्यकता है। इसलिए जब उसे हरिनाथ के बीमार होने का समाचार ज्ञात हुआ, तो

वह उसे देखने जाने को लालायित हो गया।

रामाधीन पर संसार का भार एकदम आ पड़ा था। वह सब कार्य चतुरता, सुचारुता के साथ कर सकता था। पर तभी जब कोई उन कार्यों का उत्तर-दायित्व लेनेवाला उसके सिर पर हो। चाहे वह मिट्टी का पुतला ही हो।

पर समस्त उत्तरदायित्व का भार अपने पर पा उसके पैर डगमगा उठे हैं। और वह तिनके का सहारा लेने को भी उद्यत है।

अपनी समस्त शक्ति भूल वह हरिनाथ की सहायता-याचना के लिए प्रस्तुत हो गया। वह सहायता सच्ची होगी या झूठी, इस ओर उसका ध्यान न गया। एक बात उसने देखी कि गाँव में मानपूर्वक जीवित रहने के लिए हरिनाथ की मैत्री उसे आवश्यक है।

वह कुर्ता पहिन अँगोछा सिर से लपेट उससे मिलने को निकल पड़ा।

रामाधीन हरिनाथ के यहाँ पहुँचा। हरिनाथ को स्वप्न में भी ध्यान न था कि रामाधीन उसे देखने आयेगा। वह मानव प्रकृति का अच्छा जाँचने वाला था। उसे यह समझते देर न लगी कि रामाधीन इतना दबाये और पीड़ित किये जाने पर भी यदि उसके निकट आया है तो अवश्य किसी काम से आया होगा।

'तो वास्तव में रामाधीन अलग हो गया है।' एक प्रसन्नता की तरंग उसमें दौड़ गई। अब वह इसी परिवार के व्यक्ति को उसके विनाश-कार्य में प्रयोग करेगा।

प्रथम दर्शन से उसका शरीर क्रोध से जल उठना चाहिए था पर उसने मुस्कराकर कहा—"आओ रामाधीन, बैठो।"

उसने देखा कि रामाधीन के मुँह पर चिन्ता है। वह किसी भार से दबा जा रहा है। स्वतन्त्र होने की प्रसन्नता उसे नहीं व्यापी।

"क्या हाल है ?" रामाधीन ने साधारण प्रश्न किया।

"आजकल मौसम खराब है। जुर है। दो-तीन दिन में ठीक हो जायगा।"

"हाँ, जल्दी ही ठीक हो जाना चाहिए। तुम जैसे आदमी का अधिक

समय रोगी रहना उचित नहीं।"

"कहो क्या अब अलग हो गये हो ?"

"हाँ, सोचा एक दिन तो होना ही है, अभी क्यों न हो जाऊँ !"

रामसरन के व्यय से भयभीत हो वह अलग हुआ है, अथवा और क्या कारण था, यह कहते उसे लज्जा आती थी। हरिनाथ सब समझता था। वास्तविक बात नहीं, पर मोटे तौर पर वह उन लोगों में से था जो धन-लिप्सा से परिचालित अर्थशास्त्र की कल्पित मानव-मशीन के निकटतम हैं ; धन जिनकी प्रायः सभी इच्छाओं और कार्यों को शासित करता है।

"अलग होकर तुमने ठीक ही किया। किसी की निभती नहीं। यदि तुम अभी अलग न होते तो घाटे में ही रहते।"

रामाधीन ने साश्चर्य उसकी ओर देखा।

"मैं ठीक ही कह रहा हूँ। तुमने चाहे यह सोचा न होगा। पर मैं तो देख रहा हूँ कि भाई तुमने बुद्धिमानी का कार्य किया है।"

उसने लम्बी साँस ली। पसली में जो चमक उठी, उसने उसे रामविलास के प्रहार का स्मरण करा दिया। रामाधीन पर उसके नयनों में रक्त दौड़ पड़ा; पर उसने ओठ काट अपने को संयत किया।

"क्या पसलियों में दर्द है ?" रामाधीन ने पूछा।

"हाँ, कभी-कभी चमक उठती है।"

"ऋतु तो गरम है। फिर भी शरीर का क्या ठिकाना ; रोग का घर है। ज्वर में हवा लग गई होगी। सेंकने से ठीक हो जायगा।"

रामाधीन बोलता रहा और हरिनाथ लेटा, नयन अर्द्ध-मीलित कर बड़े ध्यान से उसकी ओर देखता रहा।

उस दहलीज में धूप के कुछ धब्बे खपरैल से छन कर आ रहे थे। रामाधीन की दृष्टि उन पर गई। उसे लगा कि वह समस्त स्थान एक अलौकिक रहस्य से पुता हुआ है। उसके शरीर में सिहरन दौड़ गयी। उसे बलात् अनुभव हुआ कि वह गाँव के बड़े घर में बैठा है—ऐसे मनुष्य के पास जो उसे सहानुभूति और सहायता देगा, जो गाँव में उसका आश्रय बनेगा।

हरिनाथ का अन्तरंग होना ही गाँव में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ा देने के लिए काफी है।

"रामाधीन, तुमने इस समय अलग होकर बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया है। यदि अलग न होते तो एक मुसीबत में फँस जाते। राजा सा'ब से झगड़ा मोल लेने के पश्चात्, तुम जानते हो, वे चुप नहीं बैठेंगे। कारिन्दा सा'ब राजा के आदमी हैं। कारिन्दा साब पर यदि कोई भी हाथ उठा देगा, तो बताओ वे गाँव का प्रबन्ध कैसे करेंगे?"

रामाधीन ने स्वयं यही बातें सोची थीं। उसने आत्म-कल्याण की दृष्टि से ठीक किया था। पर हरिनाथ के मुख से ये बातें सुनकर उसे लगा कि वह प्रसन्नता के बहाने उसे उसकी कायरता दर्शा रहा है। कष्ट सहने के भय से वह अलग हो गया है।

रामाधीन की आत्मा संकुचित हो गई!

हरिनाथ ने कहा—"बुद्धिमान लोग जो करते हैं वही तुमने किया। रामावतार रामसरन के लिए लड़ेंगे। मैं कहे देता हूँ उसका कुछ फल नहीं निकलेगा। उनकी भूमि बिक जायगी। कर्जदार हो जायँगे, और भूखों मरेंगे। जीत राजा की होगी। राजा को वैरी बनाकर कौन उनकी गवाही देने जायगा?"

अपने परिवार की भावी हीनावस्था रामाधीन के सामने आ गई। वह अलग हो गया है; उसे सन्तोष हुआ। वह अलग हो गया है, चाहे किसी भी प्रकार से हुआ हो। वास्तव में उसका भाग्य अच्छा है, जिसने इच्छा न रहते हुए भी उसे अलग करा दिया।

विनाश से बचने का जहाँ उसे आनन्द हुआ वहाँ विनाश की कल्पना ने उसे भयभीत भी कर दिया। उसे जँच गया कि राजा के विरुद्ध खड़े होकर उसके भाई और पिता अपना सर्वनाश करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकेंगे।

हरिनाथ ने देखा, रामाधीन उसकी बातों से प्रभावित हुआ है। बोला—"अभी बँटवारा सब तो नहीं हुआ होगा। खेत बँटे नहीं होंगे। और जब तक

पटवारी सा'ब और कारिन्दा सा'ब उस बँटवारे को स्वीकार न करलें तब तक उसका कोई अर्थ नहीं।"

वह रुका। एक बार खाँसा, और फिर नेत्र मूँदकर विचारमग्न हो गया। नेत्र खोलने पर उसने देखा कि रामाधीन किसी विकट चिन्ता में ग्रस्त हो गया है। वह जैसी चाह रहा है, वैसी स्थिति रामाधीन में उत्पन्न हो रही है।

"जब तक बँटवारा पूरी तरह न हो जाय, भूमि तुम्हारे नाम न चढ़ जाय, तब तक उनके साथ तुम्हें भी पिसना होगा। इसलिए जितना शीघ्र तुम पटवारी साब से अपना कार्य करा लो उतना ही अच्छा।"

रामाधीन को लगा कि हरिनाथ बिलकुल उसके मन की बात कह रहा है।

"इसीलिए तो दादा मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम जैसे कहो, वैसे करूँ।"

हरिनाथ ने देखा कि रामाधीन अब पूर्णत: उसके हाथ में है और भय-भीत करने के लिए बोला—"पटवारी सा'ब तो कदाचित् तुम्हारा काम करने को प्रस्तुत हो जायँ, पर कारिन्दा सा'ब क्या उसे होने देंगे। वे तो सारे परिवार को अपना वैरी समझते हैं। आये थे कल; कह रहे थे, साँप को जब कुचलूँगा, तो क्या उसके बच्चों को आगे काटने के लिए छोड़ दूँगा?"

रामाधीन सचमुच काँप गया। यदि उसमें आत्म-विश्वास होता तो ऐसी बात न होती। उसने पूर्णतया हरिनाथ का आश्रय लेने का प्रयत्न किया था इसलिए बुरी प्रकार भयभीत हो गया। उसे लगा कि इस कष्ट से यदि कोई उबार सकता है तो वह हरिनाथ ही है। वह पटवारी का साला और कारिन्दे का बहनोई है। उसकी आत्मा गिड़गिड़ा उठी। दीनता मुख पर आ गई।

बोला—"जैसे भी हो, दादा, मेरा काम तो कराना ही होगा। मैं तम्हें छोड़कर किसके पास जाऊँ?"

हरिनाथ ने उसकी मुद्रा देखी। अनुभव किया कि अब समय है। बोला—"रामाधीन, यह संसार है। कोई किसी का काम ऐसे ही क्या कर देता है? एक खत लिखवाते हो, लिखनेवाला दो पैसे रखवा लेता है।"

"तो दादा जो सोरह-बत्तिस आना हो वह मैं देने को तैयार हूँ।"

हरिनाथ की विजय पूर्ण थी। बोला—"कारिन्दा सा'ब का सोरह बत्तिस आना से क्या होगा? मैं अपने लिए तो कुछ माँगता नहीं। मैं तो तुम्हें बिलकुल घर का आदमी समझता हूँ। जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता होगी और मैं माँगूगा तो मुझे विश्वास है, तुम नहीं न करोगे।"

रामाधीन को एक महत्व अनुभव हुआ। वह हरिनाथ का अपना आदमी है। बोला—"दादा, तुम्हें भला किसी वस्तु को कैसे मना किया जा सकता है। जो कुछ है, वह सब तुम्हारी दया से ही तो है।"

"हाँ, तो मुझे कुछ नहीं चाहिए। कारिन्दा सा'ब इतने से कैसे प्रसन्न होंगे। हाँ, पटवारी सा'ब को मैं इतने पर राज़ी कर सकता हूँ।"

रामाधीन का चेहरा उतर गया। उसे लगा कि उसका भाग भी शेष पारिवारिक भूमि के साथ बिकने जा रहा है। सन्तान और पत्नी के भूखों मरने का कल्पित दृश्य नयनों के सम्मुख आ गया।

"रामाधीन, निराश न हो।" हरिनाथ ने सान्त्वना दी। "निराश होने से कैसे काम चलेगा? साहस करो और देखो कि कारिन्दा तुम्हारे ख़ास आदमी हो जाते हैं; गाँव में सब से पहिले तुम्हारा ध्यान रखते हैं।"

कारिन्दा सा'ब की इतनी अनुकम्पा-प्राप्ति रामाधीन के लिए स्वर्ग-सुख की प्राप्ति थी। वह उसकी कल्पना में अपने आप को भूल गया। वह केवल यह जानना चाहता था कि उस स्वर्ग को हस्तगत करने के लिए उसे क्या करना पड़ेगा?

"कोई कठिन कार्य वह तुम से करने को न कहेंगे। यदि तुम इस मुकदमे में उनकी सहायता कर सको तो बस फिर तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता न रहेगी। वे सब कुछ तुम्हारे लिए कर देंगे।"

रामाधीन ने सोचा—मुकदमे में सहायता! यह तो वह सदा करने को तैयार है। इससे उसका क्या बिगड़ता है। वह शरीर का कठिन से कठिन काम कर सकता है, पर असमर्थ है तो वहाँ जहाँ पैसे की माँग है।

उसने आगे विचारना उचित न समझा। कैसी सहायता इसकी ओर

उसका ध्यान न गया। वह अब कारिन्दा का खास आदमी हो जायगा। औरों पर धौंस जमायेगा और अकड़ कर चलेगा।

उसे लगा कि यह सब जैसे हो गया। उसने भविष्य को भूत समझ लिया। हरिनाथ की ओर अब जिस दृष्टि से उसने देखा उसमें कृतज्ञता के साथ एक महत्व और आत्म-विश्वास मिला हुआ था।

हरिनाथ ने यह ताड़ लिया। इतनी प्रसन्नता वह रामाधीन को अपने पास से नहीं ले जाने देना चाहता। बोला—"रामाधीन, जो कुछ मैंने कहा है, वह मेरा विचार है। कारिन्दा सा'ब तुम्हारी सहायता स्वीकार करेंगे या नहीं मैं नहीं कह सकता। वे समर्थ हैं। उन्हें और आदमी भी मिल सकते हैं। और फिर तुम रामावतार के पुत्र और रामसरन के भाई हो।"

रामाधीन का चेहरा उतर गया।

"पर निराश नहीं हो। मैं तुम्हारे लिए पूर्ण यत्न करूँगा। जो भले और सीधे हैं हरिनाथ से अधिक उनका हितू और कोई नहीं है।"

उसने चारों ओर से हिला-डुलाकर रामाधीन को बिलकुल अपनी मुट्ठी में कर लिया। दुर्बल चरित्र रामाधीन इन आश्वासनों की आड़ में उनके पहिले व्यवहार को बिल्कुल भूल गया।

उसे पूर्णतया विश्वास हो गया कि उसके स्वर्णिम भविष्य की कुंजी हरि-नाथ के हाथ में है। हरिनाथ उसके साथ वह करेगा, जो पिता भी नहीं कर सकेंगे। वह हरिनाथ का, ऐसे हरिनाथ का कृतज्ञ था। उसके चरणों में वह अपना हृदय बिछा देने को प्रस्तुत था।

अपनी सफलता पर हरिनाथ को एक मुस्कान आई, पर पीड़ा की आह ने उसे छिपा लिया। वह कराहा। मुख फेर लिया। उसने जो किया है उससे दो काज साधे। रामाधीन की कृतज्ञता उसे प्राप्त हो गई, कारिन्दा सा'ब की भी प्राप्त होगी।

[१०]

रामाधीन के चले जाने पर सहदई ने घर सूना देखा और बँटवारे के अन्याय को लेकर देवरानियों पर बरस पड़ी। उसकी दृष्टि में सभी दोषी थे।

सभी ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। 'रामाधीन भोला है; कुछ समझता नहीं।'

वह चीखी—"इधर आरी ननको, जानती नहीं कि वह अब तेरा घर नहीं है। दाढ़ीजार ने अच्छा-अच्छा भाग अपने लाड़ली-लाड़लों को दिया है, और तुम्हें दिया है सड़ा भाग। तुम्हारे भाग ही ऐसे हैं। अन्धी! आँख से दिखाई नहीं पड़ता कि किसके कितना खर्च है, कितने खानेवाले हैं?"

किसोरी ने वैजंती की ओर देखा। दोनों की दृष्टि ने कहा—"लड़ने को फुंकार रही है। पर चुप रहना ही अच्छा है।"

सहदेई ने देखा कि ससुर के समर्थन में एक वाक्य भी बहुओं ने नहीं कहा। वह कुढ़ गई। कितनी घुन्नी हैं! नागिन हैं। इनके काटे का मंतर नहीं। अब उसने उनपर सीधा प्रहार किया।

"आजकल की बहुएँ कितना प्रपंच जानती हैं। ससुर को कैसा वश में कर लिया है? कैसा मीठा-मीठा बोलता है। तभी तो आँखों पर पर्दा पड़ गया। जिसके खर्च है उसे तिहाई के स्थान पर चौथाई दिया और अपने लाड़लों के लिए अधिक छोड़ जाने का बहाना निकाल लिया। राम रे राम, ज़रा-सी छोकरियाँ और इतनी चालबाज़!"

वैजंती और किसोरी के नेत्र मिले। मंत्रणा हुई और मौन बना रहा।

ननको ने माँ की आज्ञा का अक्षरशः पालन आँगन के दूसरे भाग से तुरन्त लौट आकर न किया। सहदई ने देवरानियों का क्रोध ननको पर उतारा। उसे पकड़ कर पीट दिया।

"कह दिया कमबख्त से कि उस ओर न जा। जिसने हाड़ तोड़कर, खून पसीना एक कर वर्षों से कमा-कमाकर खिलाया, उसे चार आना भर; और जो खेलते रहे, उसकी कमाई पर मौज मारते रहे, उन्हें बारह आने भर। परमात्मा सब देखता है। यहाँ चाहे कोई कैसा ही अन्याय कर ले, अन्त में उसे पछताना होगा। परमात्मा दण्ड दिये बिना छोड़ेगा नहीं।"

उसने ननको के और भी निर्दयता से थप्पड़ लगाये।

किसोरी और वैजंती के मनोभाव उसकी ओर विशेष अच्छे न थे। वे

साधारण युवतियाँ थीं जो नारियों में परिवर्तित हो रही थीं। सहदई यदि उनसे जलती है तो वे भी उसे जलायेंगी।

वे आपस में न लड़ती हों, यह बात नहीं है पर इस जेठानी के विरुद्ध दोनों एक हैं।

किसोरी से रहा न गया, धीरे से, जैसे कि केवल वैजंती को सुनाकर, कहा—"ऐसे पीटने से क्या होता है? जान से मार डाल।"

सहदई के कान इस ओर के प्रत्येक वाक्य को पकड़ लेने को तैयार थे। ये शब्द उससे बच न पाये। वे घी की भाँति आग पर पड़े।

इससे सहदई को एक सन्तोष हुआ। उसके वाक्य किसोरी को छू गये हैं। वह उसे बोलने को विवश कर सकी है।

उसके मन में ससुर और देवरों के विरुद्ध जो कुछ है वह इस वाग्युद्ध में उगलेगी। चीखी—"हाँ, मैं मार डालूँगी। मार डालूँ, यही तो रंडियाँ बैठी-बैठी मनाती हैं। जब जनेंगी तो देखूँगी कि कैसे मार डालती हैं। मार कर देखे तो सही, तो पता चले कि मार डालना क्या होता है।"

अब किसोरी से संयम भाग चला। बोली—"कौन तुमसे कुछ कह रहा है। तुम भी सदा लड़ने को तैयार बैठी रहती हो। कोई बात न चीत। आ बैल मुझे मार!"

"हाँ, अब मैं आदमी नहीं रही बैल हो गई हूँ। समय की गति है। समय था, मैं मालकिन थी; तब कोई मुझे बैल-भैंस बनाती तो मैं रंडी की जीभ खींच लेती। दूसरे की कमाई जो खा-खाकर फूली हैं सब भुला देती।"

"जेठानी चुप रहो। क्यों बात बढ़ा रही हो?" बैजंती ने कहा।

"हाँ, यह नागिन बोली—खसम भाग से जेल में चक्की पीस रहा है। वह चला गया, अच्छा हुआ; मनमाना करने की छुट्टी मिल गई। खूब सिखा ले ससुर को। सिर पर चढ़ाकर नचायेगा। दाढ़ीजार को बुढ़ापे में क्या सूझा है!"

वैजंती तिलमिलाकर रह गई। इच्छा हुई कि खूब तेज उत्तर दे। पर तभी किसोरी ने उसका हाथ दबा दिया।

पीछे फिर कर देखा; रामविलास ने चारा लाकर डाला था। उसने घूँघट खींच मुँह फेर लिया।

सहदई ने सुनाया—"मैं किसी से दबती नहीं हूँ।" रामविलास ने ध्यान न दिया।

बोला—"मैं जा रहा हूँ, चारा काट कर पशुओं की सानी कर देना।"

वैजंती ने गड़ासा उठा लिया। कलह होते होते रुक गया। ईर्ष्या और द्वेष की लपट पसीने में लिपट कर बैठ गई। वैजंती के हाथ का गँड़ासा चरी पर गिरने लगा। और उसकी खरखराहट से पशुशाला में बैलों के कान खड़े हो गये।

[११]

छदम्मी साहु हरिनाथ की संगति में भंग पर व्यय करते थे, और चाहते थे, कम से कम समझते थे, कि उनका उपकार माना जायगा। पर जब उस दिन उन्होंने अपने व्यय की खिल्ली उड़ाई जाती देखी तो वे स्वयं उदास, नहीं हरिनाथ से रुष्ट भी, हो गये।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि जहाँ तक होगा, हरिनाथ की संगति से परे रहेंगे। ऐसे नीच के ऊपर वे अपनी सम्पत्ति व्यय नहीं करेंगे।

इस घटना के पश्चात् ही हरिनाथ अस्वस्थ हो गया। छदम्मी साहु अकेले से पड़ गये। ठाकुर शिवनन्दन सिंह जो आते थे, वे हरिनाथ की चाटुकारी के लिए विशेष। जब हरिनाथ बीमार पड़ा तो वे उसके घर आने जाने लगे। और दूसरे दिन जब सन्ध्या समय रामधन साहु के यहाँ भंग घोटने पहुँचा तो केवल स्वयं को पाकर साहु को हरिनाथ और ठाकुर का अभाव अनुभव हुआ।

मन बहलाने के लिए दोनों जने साहु की 'बगीची को चले। भाग से बाहर चार सौ गज़ की दूरी पर एक बीघा के लगभग भूमि मिट्टी की ऊँची दीवार पर उगी सेहुँड़ पंक्ति से घिरी थी। उसमें आम, जामुन, महुवे और सहिजन के दो-दो तीन-तीन वृक्ष थे।

एक कोने में बैठक थी, और उसके सम्मुख ऊँचा चबूतरा। चबूतरे पर

ही कुवाँ था जिस पर बगीची सींचने के लिए पुर चलता था। और डोल खींचने के लिए गड़ारी घूमती थी।

अनार, अमरूद, शरीफे के भी कुछ वृक्ष, मौलश्री, हरसिंगार और राम बेल के फूलों के साथ थे। दस-पाँच पौधे गुलाब के भी थे, पर वे कहने के लिए ही। कभी फूलते नहीं देखे गये।

हतोत्साह हो दोनों जने वहीं छानने को जा रहे थे, कि मार्ग में रूपमती के द्वार पर उन्हें आदेश्वर खाट पर बैठा हुआ मिला। उसके आने का समाचार वे सुन चुके थे।

आदेश्वर साहु से पाँच-सात वर्ष छोटा था। इतने दिनों का व्यवधान होने पर भी दोनों एक दूसरे को पहिचान गये। साहु को लगा कि आदेश्वर के शरीर का तेज आकर उसके मुख पर एकत्र हो गया है।

पूछा—"क्यों भई आदेश्वर, घूम फिर सकते हो या नहीं?"

"खूब। घूमता-फिरता नहीं तो यहाँ तक कैसे आ जाता?"

"तो चलो बगीची तक हो आयें।"

निमंत्रण के शब्द पूर्ण होने से पहिले ही आदेश्वर उछल कर उनके साथ हो लिया।

साहु और आदेश्वर की मैत्री बढ़ती गयी। दोनों ने एक दूसरे को पसन्द किया। और उस दिन साहु के आते ही आदेश्वर रामावतार से विदा ले उनके साथ चल दिया।

साहु भंग-प्रेमी साथी चाहते थे और आदेश्वर आदर्श साथी जान पड़ा।

आदेश्वर अपाहिज है, ब्राह्मण है, उस पर व्यय करना पुण्य है।

उन्होंने ज्यों-ज्यों आदेश्वर से वार्तालाप किया त्यों-त्यों उसका प्रभाव उन पर बढ़ता गया। तीन ही चार दिनों में उन्होंने अपने को आदेश्वर का शिष्य स्वीकार कर लिया।

उसके प्रति श्रद्धा उनमें उमड़ आई। यह एक मनुष्य है जिसने वास्तव में संसार देखा है, समझा है; जिसने अच्छा से अच्छा और बुरे से बुरा सब सहा है। और सब से विशेष बात यह कि इतना जानने पर भी वह सहज

नम्र मानव है।

हरिनाथ और आदेश्वर की तुलना उसके मन में अपने आप ही हो गई। उन्होंने पाया, कि उनमें तुलना के योग्य कुछ है ही नहीं। कहाँ आदेश्वर, कहाँ हरिनाथ!

इन्हीं दो-चार दिनों में उनके और रामधन के लिए वह न जाने किस, पर अकाट्य, क्रिया से 'बाबू' हो गया।

क्रियापद आदरवाचक हो गये और उसके चारों ओर उन्हें एक सौम्य तेज की गरिमा अनुभव होने लगी। उन्हें पाकर अब साहु को किसी और को पाने की आवश्यकता ही न रही।

तीनों जने बगीची पहुँचे। रामधन ने दौड़ कर एक मूढ़ा आदेश्वर के लिए और खाट साहु के लिए रख दी। फिर स्वयं अपने वस्त्र उतार भंग तैयार करने में जुटा।

आदेश्वर जब मशीन की चपेट में आकर अस्पताल में पड़ा था तो उसने निश्चय किया था कि वह अब राजनीति में भाग नहीं लेगा। पर अस्पताल से निकल उसने जो जीवन का भाग नगर में बिताया, उसमें उसे अनुभव हो रहा था कि सब से अधिक भाग राजनैतिक कार्यों का था। वहाँ वह वर्ग-चेतना का दार्शनिक नेतृत्व करता रहा था। दिन की बातों में पंचानबे प्रति शत का सम्बन्ध इस से होता था।

गाँव की ओर चलते समय उसने निश्चय किया था कि वह अब अपने को राजनीति और वर्ग-संघर्ष से निकाल लेगा। वह गाँव में शान्ति से रहेगा। किसी झगड़े में न पड़ेगा।

पर रामसरन के मुकदमे के विषय में सुनते ही उसका पुरातन व्यसन जाग पड़ा। उसे लगा कि गाँव की राजनीति में भाग लेना उसके लिए अनिवार्य है। वह इस प्रकार का अन्याय नहीं देख सकता। उसने अपनी इस भूख को मन में ही सुरक्षित रक्खा।

आज जब रामावतार काका उससे इस विषय में सम्मति लेने आये हैं, तब उसे लग रहा है कि परमात्मा स्वयं उसे इस संघर्ष में खींच रहे हैं।

उनकी यदि यही इच्छा है तो वह मरते समय उनकी इच्छा का निरादर नहीं करेगा। परम आस्तिक की श्रद्धा से वह अपना बलिदान गाँव में इस संघर्ष के निमित्त देने को प्रस्तुत हो गया। वह अपनी पुरातन दीप्ति के साथ कार्य-क्षेत्र में आने की बात सोचने लगा।

रामसरन की रक्षा का प्रश्न अब उसका अपना प्रश्न बन गया। रामसरन का कुचला जाना, गाँव की जन-सत्ता का कुचला जाना है; वह जन-सत्ता, जो अभी पूर्णतया जगी भी नहीं है। वह यह दुःखद दृश्य देख नहीं सकेगा। नींद में कुलबुलाती इस जनसत्ता को किसी प्रकार घसीटकर विरोधी शक्ति के सम्मुख खड़ी करेगा। उनके संघर्ष में, दुर्बल शक्ति की पराजय में भाग लेगा।

वह देख रहा था कि यह पराजय आवश्यक है। यदि कंगाल जनशक्ति को सफल होना है, तो सफलता की, युद्ध की प्रणाली, शैली सीखने के लिए उसे पराजय की अवस्था में से जाना होगा। ऐसी पराजय उसे अपनी शक्ति और दुर्बलता का बोध करायेगी। आगामी सफलता की नींव डालेगी।

एकाकी आदेश्वर अपनी आत्मा के सम्मुख राजा और उसके सहायकों के विरुद्ध रामावतार के कंधे से कंधा मिला कर खड़ा हो गया। इस खड़े होने की क्रिया में उसका भाग विचारना मात्र था। और इस समय विचारना था कि आवश्यक धन कैसे प्राप्त हो।

चिन्तामय आदेश्वर ने मोढ़े के सहारे से अपनी बैसाखी चबूतरे पर गिराते हुए कहा—"साहु, इस रामसरन के मामले में तुम्हारी क्या राय है?"

साहु ने इस विषय में कभी विचारा नहीं था। वे चकित, भ्रमित से उसकी ओर देखते रह गये।

आदेश्वर ने कहा—"आप मेरा प्रश्न समझे नहीं?"

साहु पर गहरा प्रभाव पड़ा। कैसा मनुष्य है यह। मुख देखकर भाव पढ़ लेता है।

"हाँ बाबू। मैं समझ नहीं पाया।"

"यह कि न्याय किसके पक्ष में है?"

"यह तो बाबू कचहरी में मालूम हो जायगा।"

"साहु, अब तो आप मेरा प्रश्न समझ रहे हैं। कचहरी का न्याय नहीं; मैं पूछता हूं कि वास्तविक न्याय किस ओर है?"

साहु उत्तर देते हुए झिझके।

"कहना कठिन ही है।" उन्होंने बचते हुए कहा। "जिस बात का निर्णय करने के लिए हाकिम इतना समय लेते हैं, उसका निर्णय हम तुरन्त कैसे कर सकते हैं?"

"यदि आप को हाकिम बना दिया जाय तो आपको जो कुछ गाँव के विषय में, कारिन्दा के विषय में ज्ञात है, उससे आपका निर्णय क्या होगा?"

साहु ने चारों ओर देखा, और एक भय उनकी दृष्टि पर छा गया।

"हाँ, साहु?"

"यह तो सत्य ही है कि रामसरन ने कारिन्दा साब को मारा है और उसका दण्ड उसे मिलना ही चाहिए।"

"ठीक, पर क्यों मारा? कारिन्दा साब बच्चे नहीं थे, जो दवात गिराने अथवा कलम तोड़ने पर उन्हें मार दिया हो।"

साहु पा रहे थे कि बिल्ली का मुँह उन्हें पकड़ना ही पड़ेगा। यह नवीन दृष्टिकोण उनके सम्मुख था।

"हाँ, यह बात विचारणीय अवश्य है।"

"अवश्य! नहीं आवश्यक है, अनिवार्य है। कानून अपराध पर ही नहीं, अपराध के पीछे भावना पर भी ध्यान देता है। इसलिए यह प्रश्न और भी अधिक आवश्यक है।

"कारिन्दा साब को गाली देने की आदत है; पहले पुलिस में रहने के कारण उनका हाथ भी छोटे लोगों पर उठ जाता है।"

"तो उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि जिससे वे बात कर रहे हैं वह भी मनुष्य है, उसके भी हृदय है। गाली और धमकियों से जिस प्रकार का कष्ट उन्हें सम्भव है, वैसा कष्ट दूसरों को भी हो सकता है।"

"आप ठीक कहते हैं पर ऐसा तो न जाने कब से होता आता है। जो इनके पुरखा सहते आये हैं, वे आज ये लोग क्यों न सहें? सहना चाहिए।"

साहु ने आदेश्वर की ओर देखा। वे समझ नहीं पा रहे थे कि आदेश्वर क्या चाहते हैं; और आदेश्वर चाहते थे कि उनकी इच्छा साहु की इच्छा बन जाय। अभी वे संचालक हैं और साहु उनके अस्त्र हैं। वे साहु को संचालक और स्वयं को उनके हाथों में आयुध बनाना चाहते थे।

सरलता से बोले—"साहु, यह तो कोई तर्क नहीं है। जो होता आया है इस दलील में दम नहीं है। पहिले देश में मुसलमानों और हिन्दुओं का राज था; आज अंग्रेज़ों का राज है; पहिले लोग तीर्थ-यात्रा पैदल, टट्टुओं पर या बैलगाड़ियों में करते थे, आज रेल बन गई; पहिले वस्त्र के बदले में अन्न देते थे, आज रुपया देते हैं; पहिले कारखाने नहीं थे, आज कारखाने हैं; पहिले सती होना पुण्य कर्म था, आज वह अपराध है; पहिले कन्या-वध क्षम्य था, आज वह हत्या है; पहिले सिगरेट और दियासलाई कहाँ थी, आज वे दोनों हैं; इसलिए जो था वही रहना चाहिए यह कैसे माना जाय? जब अन्य क्षेत्रों में परिवर्त्तन हो रहा है तो यहाँ क्यों नहीं?"

साहु ने आदेश्वर के इस तर्क की शक्ति को अनुभव किया और प्रथम स्थिति से एक डग पीछे हटते हुए कहा—"वास्तव में कारिन्दा सा'ब की ज्यादती है। पुत्र के सम्मुख पिता को गाली देना ठीक नहीं था।"

"गाली देना ही ठीक नहीं था; मिलों में सहस्रों मजदूर काम करते हैं, हज़ारों रुपये वेतन के अफ़सर होते हैं, पर क्या मजाल कि छोटे से छोटे को भी गाली देकर बोलें। वहाँ मनुष्यता आ गई है। उसे गाँवों में भी आना होगा।"

"पर उसे लायेगा कौन?"

"वही जो युगों में परिवर्त्तन करते हैं: मेरे और आप जैसे साधारण मानव। ऐसी महान शक्तियों के सम्मुख पड़कर मानव में दानव की शक्ति आ जाती है। वह इस संघर्ष को आगे बढ़ाता है, जिसमें से धीरे-धीरे मानवता निकल कर विजित स्थान पर प्रस्फुटित होती जाती है।"

साहु आदेश्वर की ओर देखते रह गये। बाबू जो कुछ कह रहे थे वह उनके लिए नवीन था। क्या साहु इस गाँव में शुभ परिवर्त्तन लाने का श्रेय

ले सकते हैं। उन्हें विश्वास नहीं होता था कि इतनी क्षमता उनमें है। पर आदेश्वर बाबू कह रहे हैं कि वे इतने सक्षम हैं।

वे कुछ निश्चय न कर पाये। एक संशय हुआ, बोले—"एक कारिन्दा के हट जाने से क्या होगा, दूसरा आयेगा वह भी ऐसा ही करेगा।"

"हमें किसी कारिन्दे या राजा से व्यक्तिगत कोई द्वेष नहीं है। हमारा विरोध तो इस पुरातन योजना और प्रणाली से है, और चूँकि सभी योजनाएँ और प्रणालियाँ व्यक्तियों पर आश्रित हैं, इसलिए व्यक्तियों के विरुद्ध प्रहार होता ही है; जैसे कि मलेरिया के कीटाणुओं को न पकड़ कर हम उनके निवासस्थान मच्छरों को नष्ट कर डालते हैं। उद्देश्य है मच्छर नष्ट करने का नहीं, मलेरिया के कीटाणु नष्ट करने का।"

और कुछ वह कहने जा रहा था कि बात बीच में रोक देनी पड़ी। देखा हरिनाथ और रामाधीन चले आ रहे हैं।

हरिनाथ अभी बीमारी से उठा था, और साहु से मिलने को लालायित था। साहु उसकी आवश्यकता-पूर्ति के एक साधन मात्र अवश्य थे, पर फिर भी हरिनाथ के हृदय-क्षेत्र में कुछ भाग उन्होंने घेर ही रक्खा था।

साहु बीमारी में उसे केवल एक बार ही देखने गये थे। यह बात उसे खटक रही थी। उसे भय था कि कहीं उन्हें मन बहलाने, समय काटने को कोई और संगी तो नहीं मिल गया। आदेश्वर की ओर साहु का झुकाव है, यह उससे छिपा न रह सका था।

आदेश्वर को उसने उड़ती दृष्टि से देखा भर है। गाँव की योजना में विशेष महत्व उसे नहीं दिया। अब उसे लग रहा है कि वह व्यक्ति प्रमुख हुआ जा रहा है। सोचा कि उसके पहुँचने भर की देरी है, साहु को उसकी ओर झुकना ही पड़ेगा। उसके बिना उनका निर्वाह कैसे होगा। जैसा वह है वैसा गाँव में क्या कोई और है ?

आगन्तुक बेरोक चबूतरे पर चढ़ गये। हरिनाथ आदेश्वर की ओर बिना देखे छदम्मी साहु से ऊपर और रामाधीन नीचे खाट पर बैठ गये।

साहु ने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया था। कौन कहाँ बैठता है यह

जैसे कोई बात ही न थी। पर आज हरिनाथ उनसे ऊपर इस प्रकार बैठ गया है जैसे उसकी बपौती हो। यह उन्हें अच्छा नहीं लगा।

हरिनाथ बीमारी से उठा था गौरववान होकर; उसने इसी बीच में रामाधीन पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। उस नवप्राप्त गौरव ने उसकी वाणी, उसके रंग-ढंग पर प्रभाव डाला था।

"साहु तुम एक ही बार मुझे देखने आये?" उसने हल्की शिकायत की।

साहु को जो हरिनाथ की प्रथम बात बुरी लगी तो फिर सभी बुरी लगती चली गई। मन में उठा—क्या वे उसके बाप के नौकर हैं, जो उसे देखने जाते। वे चुप रहे।

साहु बोल नहीं रहे हैं, यह बात हरिनाथ को कुछ लगी। क्या कारण हो सकता है?

उसकी दृष्टि मोढ़े पर बैठे लँगड़े-लूले आदेश्वर की ओर गई। आदेश्वर के गाँव से जाने से पहिले वह कुछ बार उसके साथ खेला है। पर यह समय गौरव दिखाने के उपयुक्त था, और उसका लोभ वह संवरण नहीं कर सका।

बोला—"यह लूला मनुष्य कौन है?"

साहु को लगा कि आदेश्वर ठीक कहते हैं, इस जाति की बोल-चाल में सुधार होना चाहिए। हरिनाथ की अशिष्टता उनपर स्पष्ट होती आ रही थी।

साहु बोले—"यह आदेश्वर बाबू हैं!"

"बाबू!" और हरिनाथ खिलखिला कर हँस पड़ा। "वही आदेश्वर न, जो उन दिनों यहाँ गाय-भैंस चराया करता था, अब बाबू बन गया। वाह, साहु वाह, तुम मजाक करते हो खूब।"

आदेश्वर के मुख पर एक गम्भीरता आई और चली गई।

"क्यों रामधन, कितनी देर है?" हरिनाथ ने अधिकार से पूछा।

"घोंट रहा हूँ दादा! अभी आये हो; बैठो।" रामधन हरिनाथ को जीवन भर क्षमा न कर सकेगा। उसका व्यवहार काँटे की भाँति खटकता रहेगा। पर उसे गाँव में रहना है तो हरिनाथ से दब कर ही रहना होगा।

ऐसी दशाओं में मानव-यंत्र में कुछ नवीन प्रकार की संरक्षक दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, और मानव उन व्यवहारों को साधारण समझ उनके प्रति उतना भावुक नहीं रहता। वह अपनी दृष्टि अपने मार्ग पर ही सीमित रखता है, विशेष इधर उधर नहीं देखता।

हरिनाथ ने आदेश्वर की ओर अब ध्यान से देखा। एक मुस्कान उसके मुख पर दौड़ गई।

"क्या हाल है आदेश्वर ?"

"तुम मृत्यु-मुख से निकल आये हो और मैं उसमें जाने की तैयारी कर रहा हूँ।"

साधारण प्रश्न का असाधारण उत्तर था। हरिनाथ ने साहु की ओर देखा। यह आदेश्वर तो विकट है। हरिनाथ को मृत्यु-मुख में भेज रहा है। वह एक क्षण चुप हो गया। फिर विषय बदलता हुआ बोला—"कौन-कौन देस देख आये भई ?"

"विदेश तो केवल ब्रह्मा ही गया था।"

"हुँ।"

"पर सब को विदेस फलता नहीं। वर्ष भर में लौट आया। कलकत्ते में दो वर्ष रहा। बीमार रहने लगा तो कानपुर पहुंचा। वहाँ जीवन ही बीत आया। जब उसने मुझे कुछ देना प्रारम्भ किया, तभी मेरा सब कुछ ले लिया, और अब मैं अपाहिज हूँ।"

"क्या मिलता था कानपुर में ?"

हरिनाथ की इच्छा थी कि उसकी आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर तदनुसार अपनी भाषा और अपना व्यवहार उसके प्रति निर्धारित करे।

"अकेला प्राणी था। निर्वाह भर को मिल जाता था।"

"फिर भी ?" हरिनाथ ने प्रश्न दुहराया।

"विशेष नहीं, सवा सौ, डेढ़ सौ पड़ जाता था।" आदेश्वर हरिनाथ के चेहरे के उतरते-चढ़ते रंग को देख रहा था।

हरिनाथ पर इस वेतन का प्रभाव पड़ा। उसके साले कारिन्दा को भी

इस जीवन में इतना मिलने की सम्भावना नहीं है। हरिनाथ ने अब आदेश्वर की ओर दूसरी दृष्टि से देखा। उसके हाथ-पैर टूट गये हैं, इस पर उसे सन्तोष हुआ।

मिलते होंगे सवा सौ, डेढ़ सौ, जब मिलते होंगे। पर आजकल तो अपाहिज है। समय आयेगा जब उसे हरिनाथ से अधिक दरिद्र होना पड़ेगा और तब उसे पता चलेगा कि उससे अधिक वेतन लेने का क्या परिणाम होता है।

पर अभी उसके पास जमा-पूँजी होगी; बैठ कर मजे से खायेगा। हरिनाथ देखता आया है कि इस गाँव में बड़े-बड़े जमा-पूँजीवाले आये पर किसी की पूँजी तीन-चार वर्षों से अधिक नहीं चली।

"तुम्हारा अब क्या हाल है? आजकल ज्वर जब उठाकर पटकता है तो बुरी प्रकार मारता है।"

हरिनाथ काँप गया। क्या आदेश्वर को उससे सम्बन्धित घटना ज्ञात हो गई है। उसने चुप रहना ही श्रेष्ठ समझा।

साहु से बोला—"रामाधीन अपने बाप से अलग हो गया है। गृहस्थी जमाने के लिए तुम्हारी सहायता चाहेगा तो पूरी देना।"

"यह मेरा व्यापार है, उसकी बात दुकान पर बैठ कर करता हूँ। व्यापार व्यापार है।" रामाधीन से पूछा—"क्यों, अलग हो गये? बँटवारा हो गया?"

"अभी तो नहीं पर शीघ्र हो जायगा।" रामाधीन ने हरिनाथ की निकटता से बल प्राप्त करके कहा।

साहु के मन में खटका उठा कि हरिनाथ ने रामाधीन को किसी प्रकार फाँस लिया है। पर कैसे?

बोले—"रामाधीन, जब तुम्हारी इच्छा हो आ जाना। दुकान तुम्हारी ही है। तभी बातें कर लेंगे।"

"मैंने कारिन्दा साब से इसकी सिफारिश करदी है, जिससे उन्होंने इसे छोड़ दिया है। पर रामावतार को इस बार वे भलीभाँति रगड़ देंगे। बहुत

सिर पर चढ़ रहा था। तुमसे भी तो एक बार झगड़ बैठा था साहु ?"

साहु उस समय हरिनाथ के विरोधी हो रहे थे। कुछ बोले नहीं। रामाधीन को यदि उधार चाहिए तो वह स्वयं उनके पास आये। हरिनाथ को बीच में पड़ने का अधिकार वे नहीं दे सकते।

रामाधीन को पिता की बुराई साधारण समय में बुरी लगती। पर इस समय इसका उसपर विशेष प्रभाव न पड़ा। उसे लगा कि हरिनाथ सब प्रकार उसकी भलाई कर देने पर उतर आया है। हरिनाथ की इस भलाई का अन्य लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इस ओर उसका ध्यान नहीं गया।

रामधन ने सूचना दी—"साहु भंग तैयार है।"

साहु ने आदेश्वर की ओर देखा—"पिओगे अभी बाबू ?"

"हाँ।" आदेश्वर ने स्वीकृति दी।

हरिनाथ इस विशेषण एवं सर्वनाम पर चकित हो गया। लँगड़ा-लूला आदेश्वर आज साहु के लिए बाबू है। साहु का इतना पतन हो सकता है ? इस पर उसे विश्वास न हुआ।

उसे लगा कि वह अब इस साहु के यहाँ भंग नहीं पी सकता। यह आदेश्वर और बाबू ! सचमुच अब साहु के यहाँ उसके लिए भंग पीना सम्भव नहीं है। सवा सौ डेढ़ सौ रुपये। नहीं, नहीं, एक दम नहीं। साहु सवा सौ डेढ़ सौ रुपये वाले लँगड़े लूले को बाबू कहें ! वह नहीं पियेगा। ऐसे साहु के यहाँ भंग नहीं पियेगा।

रामधन ने कहा, "हरिनाथ दादा, लो न !"

हरिनाथ ने तेज़ी से कहा—"नहीं।"

पहिले उससे नहीं पूछा गया। प्रथम स्थान आदेश्वर को दिया गया। वह वैसे चाहे पी लेता। पर उसका इतना अपमान ! वह अब वास्तव में नहीं पियेगा।

पर रामधन की मुद्रा से उसे अनुभव हुआ कि "नहीं" कुछ अधिक तेज़ी से निकल गया है। रामधन ने उस पर मुख बिचका दिया है। बिगड़ी बात सँवारने को बोला—"रामधन, जानते हो कि मैं अभी बीमारी से उठा हूँ।"

"हाँ दादा, समझ गया। तुम लोगे रामाधीन ?"

रामाधीन समझ रहा था कि हरिनाथ ने नहीं पी ; इसलिए नहीं कि भंग उसे भाती नहीं अथवा वह बीमारी से उठा है; वरन् इसलिए कि उसने पीना किसी कारण से उचित नहीं समझा। आजकल वह प्रत्येक पद पर हरिनाथ का अनुगामी था। और उसने भी कहा—"नहीं।"

रामधन ने दुबारा उससे नहीं पूछा।

तीनों ने पी। रामधन और हरिनाथ खाट पर बैठे रहे, जैसे बिरादरी से बाहर हों—कुण्ठित, मन-मारे।

हरिनाथ ने देखा कि भंग साधारण नहीं विशेष है। क्यों ? इसी 'बाबू' के कारण ? अब उसके मन में संघर्ष मच गया।

भंग पक्ष ने कहा कि उसे भंग पीनी चाहिए। हृदय ने समर्थन किया कि ऐसी अच्छी भंग तो पीनी ही चाहिए ! जिह्वा ने स्वाद के लिए प्रस्तुत हो इसका अनुमोदन किया।

एक बार वह नहीं कर चुका है। माँगे कैसे ? रामधन और साहु अब उससे पूछते दिखाई नहीं देते। फिर भी कदाचित्...।

वह बैठा रहा। मन में त्याग और तृष्णा में द्वन्द्व चलता रहा। धीरे-धीरे इस द्वन्द्व की तीव्रता बढ़ती गई। वह ऊपर उसकी अशान्ति के रूप में प्रकट होने लगी, और जैसे असह्य हो चली। भंग पक्ष ने कहा—"तूने मना क्यों किया ? अब ऐसी अच्छी भंग कहाँ मिलेगी ?"

हरिनाथ ने कहा—नहीं है तो नहीं है। अब क्या वह रामधन से माँगे।

अधिक बैठना असम्भव था। वह उठ खड़ा हुआ और साथ में रामाधीन।

"क्यों, चल दिये हरिनाथ ? बैठो, बाबू विदेस की बातें सुनायेंगे।"

"नहीं साहु, चलूँ। काम है। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। रामाधीन के लिए भी कुछ लोगों से सिफारिश करनी है। जानते हो कि इस समय अफसर लोग किसी का काम नहीं करते। मैं उनका रिश्तेदार हूँ इसी से कभी-कभी बात सुन लेते हैं।"

उसने आदेश्वर को गाँव की राजनीति में अपने प्रमुख स्थान की सूचना दी। आदेश्वर ने उसे ग्रहण किया।

साहु को लगा कि आज हरिनाथ केवल उनका अपमान करने के लिए आया था। वैसे भंग के नाम से पिसी बबूल की पत्ती पी जायेगा। पर आज वह बीमार है। वे उसे नीचा दिखाने के लिए जल उठे।

वे विचारमग्न हो गये।

आदेश्वर ने पूछा—"चिन्तित क्यों हो साहु ?"

"मैं सोच रहा हूँ कि गाँव में जिस परिवर्त्तन की बात आप कर रहे हैं उसे लाने में मैं क्या कर सकता हूँ। हम लोगों को अधिक शिष्टता सीखनी होगी।"

साहु जो वैसे नहीं करते, वह हरिनाथ के विरुद्ध द्वेष जगने से करने को प्रस्तुत हो गये। आदेश्वर को प्रसन्नता हुई। उसका समझाना इतने शीघ्र साहु को प्रभावित कर जायगा, इसकी उसे आशा न थी।

बोला—"गाँव में शिष्टता लाने की आवश्यकता आप को भी अनुभव होती है न ?"

"हाँ, यह अब अत्यन्त आवश्यक है।"

"इसके लिए ग्रामीणों की भावनाओं और विचारों में काफ़ी परिवर्त्तन करना होगा। जो लोग प्राचीनता के नाम पर अशिष्टता और पीड़न को बनाये रखना चाहते हैं उनकी शक्ति क्षीण कर देनी होगी।"

"हाँ तो बताइए न ? मैं कुछ करना चाहता हूँ।"

"यह ठीक अवसर है। हमें रामसरन के मामले में रुचि लेनी चाहिए। यदि रामसरन के विरोधी उसे लम्बी सज़ा दिलाने में सफल हो जाते हैं, तो उनकी शक्ति बढ़ जायगी और शिष्टता को पनपने के लिए स्थान नहीं मिलेगा। वे पुनः मनमानी करने लगेंगे। इस समय तो मुख्य कार्य रामसरन को उनके चंगुल से बचा लाना है।"

साहु ने देखा और एक क्षेत्र उनके सम्मुख खुल गया। यदि रामसरन का पक्ष, जो वे खुलकर नहीं ले सकते, विजयी हो जाता है, तो कारिन्दा की

हेठी होगी और उससे हरिनाथ की प्रतिष्ठा को महान धक्का पहुँचेगा। जिनके बल पर हरिनाथ कूदता है, उनका मान-मर्दन करना हरिनाथ को तोड़ना है।

"बाबू मैं, जो आप कहें करने को तैयार हूँ, पर आप जानते ही हैं कि प्रत्यक्ष रूप से....।"

"इसकी आवश्यकता भी नहीं है। हम चाहते हैं कि बहुत अच्छा वकील रामसरन के लिए किया जाय जिससे झूठा अभियोग उस पर प्रमाणित न हो पाये। इससे गाँव का शासन नंगे रूप में सब के सम्मुख आ जायगा। हमारी इस सफलता से गाँव का साहस बढ़ेगा।"

"जो आप उचित समझें। पर मैं ...। हाँ रुपया....।"

"यही ठीक है। मैं रुपये के लिए तुम्हें रसीद दूँगा। आवश्यकता पड़ने पर तुम उसे दिखा सकते हो। उस दशा में रामसरन की सहायता करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मेरा होगा।"

साहु ने देखा कि आदेश्वर लँगड़ा-लूला है तो क्या, उसका हृदय सिंह का है। उसे किसी का भय नहीं है। वह मनुष्यता के सन्देश के लिए मार्ग बनाने वाला है। उनके हृदय में उसके प्रति श्रद्धा बढ़ गई।

उन्होंने कल्पना में देखा कि उनके रुपये से रामसरन के लिए माथुर वकील किया गया है। गाँव के सब लोग रामावतार की सफलता पर आश्चर्य कर रहे हैं कि बिना भूमि गिरवी रक्खे उसके पास इतना रुपया कहाँ से आया।

हरिनाथ और उसके दल का मुख उतर गया है। कोई रामसरन के भी पीछे है यह जान कर गाँव का सत्पक्ष कुलबुलाने लगा है। जागरण के चिह्न उसमें प्रकट होने लगे हैं। रामसरन प्रशंसा का पात्र बनने लगा है।

उन्हें लगा कि रामसरन वास्तव में प्रशंसा का पात्र है, उसके लिए जो धन वे व्यय करेंगे, वह सत्कार्य में व्यय होगा।

"बाबू, रुपया कब चाहिए ?"

वे विपत्ती पर प्रहार कर देने को उतावले हो रहे थे।

"आज रात में।"

"ठीक।"

तीसरा अध्याय

[१]

रामाधीन की स्थिति विचित्र थी। स्वतन्त्र किसान होने के लिए उसे पटवारी और कारिन्दे की सहानुभूति न सही तटस्थता अवश्य चाहिए थी। पर ऐसे समय में तटस्थता का भी मूल्य होता है। समय होता है जब किसी को चुप रहने के लिए वेतन दिया जाता है। ऐसे अवसर अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।

रामाधीन अपनी समस्या ले पटवारी और कारिन्दा से मिला।

पिता चाहते थे कि वह अपनी गृहस्थी का प्रबन्ध पृथक करे। खेती-बारी सम्मिलित हो, जो उपजे उसे बाँटकर अलग-अलग सब उपभोग करें।

पर रामाधीन ने यहाँ विद्रोह कर दिया। उसने सोचा कि यदि रामावतार को उसकी प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं है तो उसे क्यों होना चाहिए? यदि पिता पिता की भाँति नहीं रहता तो पुत्र को ही क्यों पुत्रत्व निभाने का भार दिया जाय? उसने हठ किया कि वह अलग होगा, पूरी तरह अलग होगा। खेत, बगिया, पेड़ सब बाँटेगा।

रामावतार ने कहा—"अभी ठहर जाओ, मुकदमे से पीछा छूटे तो बाँट लेंगे।"

रामाधीन ने कहा—"मैं अभी बाँटूँगा। यहीं खड़े खड़े बाँटूँगा।"

जो रामाधीन पिता के सम्मुख नेत्र उठाने में सकुचाता था, सिंह के समान दहाड़ा। पड़ोसियों ने कहा—"आज रामावतार का पुत्र बालिग़ हो गया है।"

रामाधीन के पीछे गाँव के शासन का हाथ था। कारिन्दा सा'ब ने इच्छा प्रकट की थी कि उसे अभी अलग हो जाना चाहिए। गाँव के बेताज के बादशाह की इच्छा क्यों न पूर्ण हो।

रामाधीन ने हठ किया कि उसका भाग उसे अभी मिलना चाहिए। रामावतार के भीतर उठा कि वे रो दें। पर ऊपर से क्रोधित हो गये। बोले—"बाँटेगा, कैसे बाँटेगा ? मैं नहीं बाँटने दूँगा !"

रामाधीन सशक्त था। बोला—"दादा, तुम बाँटने दोगे या नहीं, इसका निर्णय तो जज कर देगा।"

रामावतार के कान खड़े हो गये। 'इसका निर्णय जज कर देगा !' रामाधीन कचहरी की शब्दावली में बातें करने लगा है। अभी कलतक जिसके पास भोजन का अभाव था वह आज जज और वकील तक पहुँचता है। इतना पैसा अचानक उसके पास कहाँ से आ गया है ?

गाँव का वातावरण उनके विरुद्ध जा रहा है। रामाधीन हरिनाथ की संगति में है। इस संगति से उन्हें हल्की सी एक सान्त्वना प्राप्त हुई थी। इस प्रकार रामाधीन ग्राम्य-शासन के कल-पुर्जों की यदि परिचय-सहानुभूति प्राप्त कर सका तो वह उसे जीवन में लाभकारी होगा।

पर इस सम्पर्क में अब शंका उत्पन्न करने की क्षमता जाग आई।

वह हरिनाथ के साथ रहता है। और पिता के विरुद्ध कचहरी जाने की बात कहता है। अवश्य लोगों ने उसे भड़काया है। नहीं तो उनका इतना सीधा रामाधीन ऐसी बात कैसे करता। रुपया भी किसी ने जुटा देने का प्रलो-भन अवश्य दिया होगा। उनका क्रोध रामाधीन से हट उसके साथियों पर चला गया।

बोले—"बच्चों की सी बातें न करो रामाधीन। कचहरी जाने की आव-श्यकता नहीं है।"

"हुँ।"

"यह मुकदमा समाप्त हो जाय तो उसके पश्चात्..."

"नहीं दादा, इस मुकदमे के समाप्त होने तक जब कुछ बचेगा ही नहीं तो तुम क्या बाँट दोगे ?"

रामाधीन ने जो कहने से अपने को बहुत दिनों रोक रक्खा था, वह कह दिया।

एक भीषण सम्भावना रामावतार के सम्मुख आ गई। मुकदमे के पश्चात् उनके पास कुछ नहीं बचेगा। इस दुःखद विषय पर विचार से भागने का एक ही मार्ग था, और वह उन्होंने ग्रहण किया।

पूछा—"क्यों ?"

"क्यों क्या ? राजा से बैर बाँधकर मुकदमा लड़ोगे, उसमें कितना खर्च होगा, कुछ पता है ? रत्ती रत्ती सब बिक जायगा। मुझे मालूम है, अभी से गाहक मुंह बाये हैं।"

रामावतार को प्रथम भाग ठीक सा जँचा। पर दूसरा भाग सर्प की भाँति उनके हृदय को छू गया। उनका हृदय विद्रोह में खड़ा हो गया। उसने निश्चय कर डाला कि जो लोग उनकी भूमि खरीदने के इच्छुक हैं वे निराश होंगे, घोर निराश होंगे।

रामसरन को होगा, जेल हो जायगी; वे रत्ती भर भूमि न बेचेंगे, न गिरवी रक्खेंगे। कौन ठीक है कि अच्छे से अच्छा वकील उसे बचा ही पाये। ऐसी दशा में वे क्यों रुपया व्यय करें ?

पर अपनी यह दुर्बलता वे रामधीन के सम्मुख खोलने में असमर्थ हो गये। रामाधीन-द्वारा उनकी कठिनाई की सूचना निश्चय ही दूसरे पक्ष में पहुँचे बिना न रहेगी। वे उन लोगों की प्रसन्नता द्विगुणित करने का कारण नहीं बनना चाहते।

बोले—"घबराओ नहीं; मैं एक तिल भूमि न बेचूँगा।"

"नहीं दादा, मैं नहीं मानूँगा। मुझे तो तुम्हें मेरा हिस्सा अभी दे देना होगा।"

"रामाधीन !"

रामावतार विवश होते थे। झुँझलाते थे। पछताते थे और फिर दृढ़ता दिखाने का प्रयत्न करते थे।

"अच्छा रामाधीन, मुझे कुछ दिन सोच लेने दो।"

"दादा, मैंने पटवारी से कह दिया है। कल के लिए वे तैयार हैं। यदि कल नहीं बाँटते तो मैं…।"

"अच्छा।" रामावतार ने रोकर, सिर पटक कर कहा।

रामाधीन चला गया। और रामावतार भी चल पड़े। एक के मुख पर विजय की आभा थी और दूसरे के मुख पर पराजय, रक्तहीनता तथा नयनों में आँसू।

मनुष्य के सामाजिक जीवन में यह एक स्थान है जहाँ पीड़ा का निवास है। प्रजनन से लेकर मृत्यु-पर्यन्त विस्तार और विकास की जितनी क्रियाएँ हैं सभी में वेदना का निवास है।

इसी के आधार पर कष्ट-द्वारा आत्म-विस्तार की शैली को साधकों और विचारकों ने स्वीकारा है।

दूसरे दिन बाँटने का प्रबन्ध किया गया। जब बँटवारा प्रारम्भ हुआ तो रामावतार ने चौथाई भाग रामाधीन को देना चाहा।

रामाधीन ने उसे अस्वीकार करते हुए हरिनाथ की ओर देखा। हरिनाथ ने मित्र की सहायता की—"पण्डित, जब बाँट ही रहे हो तो उसे एक तिहाई क्यों नहीं देते।"

"नहीं, यह मेरा काम है। तुम बीच में क्यों बोलते हो!" रामावतार ने कुछ तेज़ी दिखा कर कहा।

"हम गाँव के आदमी हैं। झगड़ा होगा तो हमीं बुलाये जायँगे, रामाधीन ठीक कहता है वह एक चौथाई स्वीकार न करेगा। तुम्हारे तीन लड़के हैं, एक तिहाई उसका है।"

"मैं एक चौथाई अपने लिए रख रहा हूँ। मेरे मरने पर तीनों आपस में बाँट लेंगे।"

हरिनाथ ने रामाधीन की ओर बोलती दृष्टि से देखा और कहा—"रामाधीन यदि लेना तो एक तिहाई; इससे कम पर राज़ी न होना। जो तुम्हें अभी मिल गया, वही मिलेगा। पीछे की बात पीछे की ही है।"

और रामाधीन ने पिता से कहा—"मैं एक तिहाई से कम न लूँगा।"

गाँव के अन्य लोग चुप थे। वे देख रहे थे कि रामाधीन की आड़ में गाँव के शासक रामावतार को शक्तिहीन बनाने में प्रयत्नशील हैं। पर इसमें

उन्हें प्रसन्नता ही थी।

परोन्नति से जिन्हें सुख होता है, ऐसे लोग संसार में हैं, यह कहना सत्य को परम चुनौती देना है। पर-पतन से जिन्हें थोड़ा-बहुत सन्तोष न होता हो ऐसे व्यक्ति भी उसी परिमाण में हैं।

मानव ऊपर से चाहे कुछ भी कहे, पर पारस्परिक ऊँच-नीच और प्रतियोगिता की भावना उसके एक दूसरे के प्रति सहृदय होने के प्रयत्न में बाधक है। मुँह से चाहे हम कुछ ही कहें, कार्य में चाहे कुछ ही दर्शायें पर मूलतः हृदय में पीड़ा की उलटन-पुलटन होती रहती है। इन भावनाओं का दमन ही मानव संस्कृति का मापदण्ड बन सकता है।

गाँव के लोग वृद्ध और अधेड़, पंच और सरपंच सब अपने में सन्तुष्ट, ऊपर से विवश दर्शक मात्र रहे आये।

हरिनाथ ने शत प्रति शत मित्र भाव दिखाते हुए कहा—"रामाधीन, एक तिहाई से कम न लेना।"

रामावतार को अनुभव हो गया कि वह प्रत्यक्ष ही पुत्र को उनके विरुद्ध भड़का रहा है।

और रामाधीन ने कहा, ग्रामोफोन की भाँति—"दादा, एक तिहाई से कम नहीं।"

रामविलास रामाधीन और हरिनाथ की ओर सिंह की भाँति देख रहा था। यदि मानव समाज के स्थान पर जंगल का शासन होता तो अब तक वह दोनों की गर्दनें तोड़ चुका होता।

उसने हरिनाथ की ओर आग्नेय नेत्रों से देखा। हरिनाथ ने नयन झँपाये नहीं। उसे लज्जा अनुभव नहीं हुई। उसके नयनों में सियार की चतुरता झलक आई। उसमें भावना थी, घबरा नहीं, अब प्रहार प्रारम्भ हुआ है। शीघ्र ही तेरी बारी भी आयेगी।

रामविलास के हाथ इस दृष्टि से और भी चंचल हो उठे। पर टोकरी के नीचे बन्द क्रुद्ध सर्प की भाँति वह अपनी सीमा पर ही अपना क्रोध प्रकट कर सका।

इस विवाद में पर्याप्त समय निकल गया। पटवारी का सन्तोष सीमा लाँघने लगा। वह बोला—"क्या बात है रामाधीन? मैं जाऊँ क्या?"

रामाधीन ने कहा—"दादा।"

रामावतार ने कहा—"एक तिहाई मैं इस समय न दूँगा। तुम तीनों को सब बाँट दूँगा तो मैं वृद्धावस्था में क्या करूँगा?"

अब पटवारी प्रत्यक्ष रामावतार के विपक्ष में आगये। बोले—"रामावतार तुम समझते हो, मैं तुम्हारा नौकर हूँ। चौथाई अब लिखूँगा, तिहाई फिर लिखूँगा। यदि बाँटना नहीं था तो मुझे क्यों तंग किया? रामाधीन, एक तिहाई बँटवा ले।"

"रामाधीन!" रामावतार ने विनती की।

"रामाधीन," हरिनाथ ने कहा—"चलो, पण्डित एक चौथाई से अधिक बिना कचहरी चढ़े न देंगे।"

और रामावतार को धमकाया—"पण्डित, कल रामाधीन तुम पर नालिश करेगा।"

रामावतार ने रामाधीन की ओर देखा। उसने कहा—"दादा, यदि तुम नहीं मानते तो अन्त में यही करना होगा।"

रामविलास बैठा था, उछलकर खड़ा हो गया। लोगों में एक सनसनी दौड़ गई। रामावतार के मन में उठा; दावा करेगा, बड़ी प्रसन्नता से करे। वह समस्त भूमि बेचकर मुकदमे के पेट में भर देगा, तब वह क्या ले लेगा?

पर विचारों की वह दिशा कुछ ही क्षण ठहरी। कल्पना में उसने देखा कि भूमि उसने क्रोध-वश सब बेंच दी है। उसके कारण उसके बेटे और उसके पोते दाने-दाने को भिखारी हो गये हैं। उनके पसली दीखते, क्षुधा-पीड़ित शरीर उनके सम्मुख आ गये। यह सब होगा, उनके इस समय के हठ के कारण।

उन्होंने रामविलास की ओर देखा। रामसरन की सुधि की। रामाधीन के साथ इन दोनों को दण्ड क्यों दिया जाय?

पुत्रों को लेकर दो प्रकार की भावनाओं में वे पिस गये। इनमें से एक को अलग करके दण्ड देना सम्भव नहीं है।

इतने लोगों के सम्मुख वे अब नीचे गिरेंगे। उनके वचन का भी कुछ मूल्य है! उनके अहंकार की भी कुछ सत्ता है। और एकाएक वह अहंकार जादू के वृक्ष की भाँति सब समस्याओं और जटिलताओं को धराशायी करता सबसे ऊँचा उठकर खड़ा हो गया।

रामावतार के मुख से निकलने ही वाला था: 'जाओ रामाधीन; यदि तुम्हारी इच्छा कचहरी जाने की है तो जा देखो। उसके पश्चात् तुम्हें क्या मिलता है। तुम जैसे कुपूत के लिए मैं एक अंगुल भूमि नहीं छोड़ जाऊँगा।'

तभी पटवारी ने कहा—"चलो रामाधीन, पण्डित बिना कचहरी में दावा-धक्का के न मानेंगे।"

रामविलास को एक नवीन अनुभव हुआ। जहाँ रामाधीन है वहाँ वह भी हो सकता है। पिता के प्रति उसकी भावुकता में कमी आ गई। पटवारी के इस वाक्य ने उसमें क्रोध-सञ्चार न किया। वह दर्शक मात्र रह गया।

हरिनाथ ने रामाधीन का हाथ पकड़ा और उसे लिवा ले चला। अन्य लोगों ने भी जाने की इच्छा दिखाई। एकाध की इच्छा रामावतार को सम्मति देने की थी, पर उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा। कुछ थे, जो रामाधीन को संयत करना चाहते थे,पर उनके पास मौन रहने का बहुत बड़ा कारण था।

जब रामाधीन दो डग चला ही गया तो रामावतार निर्णय कर पाये। उनकी दुर्बलता ने उनके नेत्र मूँद दिये। एक बाढ़ सी आ गई। वह वृद्ध रो दिया।

बोला—"रामाधीन आओ, बाँट लो, एक तिहाई ही ले लो।"

हरिनाथ और पटवारी प्रसन्नता से खिल गये। रामाधीन ने दादा का अश्रुमण्डित मुख देखा। जी में आया, कह दे: नहीं दादा, मैं नहीं बाँटूँगा।

पर इससे पहले ही हरिनाथ ने कहा—"हाँ पण्डित, यह बुद्धिमानी का काम है। इन लोगों का भाग इन्हें दे दो, और तुम वृद्धावस्था में गृहस्थी की झंझट छोड़ माला फेरो।"

"रामसरन का भाग तुम्हारे लिए काफी है।" किसी ने कहा।

पर रामावतार ने वह जैसे सुना ही नहीं। इसके पश्चात् कानून और समाज की रीति नीति के अनुसार रामावतार की सम्पत्ति बाँट दी गई। एक घर के तीन घर हो गये।

रामविलास और रामाधीन स्वतन्त्र परिवारों के स्वामी हो गये। व्यवस्थानुसार रामावतार केवल रामसरन के भाग के संरक्षक रह गये।

रामविलास ने अभी और कुछ दिन पिता के साथ रहने की इच्छा दिखाई। इस प्रकार ऊपर के कार्यों के लिए केवल रामाधीन ही परिवार से टूट कर स्वतन्त्र हुआ।

[२]

रुपये का प्रबन्ध कर चुकने के पश्चात् आदेश्वर ने अपना कार्यक्रम बनाया। उसने रामसरन के अभियोग में वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट करने की सम्भावना देखी और इसे पूर्णतया कार्य में लाने की उसकी उत्कट इच्छा हो गई। मरने से पहले यदि वह इस प्रकार के बीज गाँव में—अपने गाँव में, डाल जायगा तो, वहाँ की मिट्टी का ऋण कुछ न कुछ अवश्य चुक जायगा।

उसने इस कार्य में अपनी सीमाएँ देख लीं। शारीरिक असमर्थता ही उसके लिए सबसे बड़ी बाधा थी। इस कार्य में उसे एक निस्पृह सहायक की आवश्यकता थी। ऐसा सहायक जिस पर वह निर्भर कर सके।

उसके चारों ओर जो व्यक्ति थे उन पर दृष्टि दौड़ाई। सभी को अनुपयुक्त पाया। पर पात्र के अभाव में यह काम रुकना नहीं है। पात्र यदि नहीं है तो उसे बनाना होगा।

गाँव का वातावरण जबतक परिवर्तित नहीं किया जाता, तबतक रामसरन को विशेष सफलता की आशा नहीं है। यदि उसके विपक्षी गवाहों को सत्य कहने के लिए बाध्य किया जा सके, उसके पक्ष में गवाह उत्पन्न किये जा सकें, तो सच्ची बात सामने लाने में चतुर वकील को विशेष कठिनाई न होगी, और उसके बाद यह व्यक्तिगत फौजदारी का मुकदमा रह जायगा।

पर यह सब करने का साधन? आतंक सबल का है। साधारण किसान

शान्तिप्रिय है और शासन-यन्त्र के विरुद्ध जाने का साहस नहीं कर सकता।

उसने जहाँ अब तक नहीं देखा था, वहाँ, अपने अत्यन्त निकट देखा, तो रूपमती पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह क्या कर सकती है? रूपमती की सामर्थ्य अभी चाहे कुछ न हो, पर जगाई जाने पर वह विशाल हो सकती है। उसने विचारा कि रूपमती को यदि वह रामसरन के पक्ष में प्रभावित कर सकता है तो उसे एक सक्षम अस्त्र प्राप्त हो जाने की सम्भावना है।

उसी समय उसने रूपमती से रामसरन के अभियोग के विषय में वार्तालाप किया। उसने देखा कि रूपमती अर्थशास्त्र और राजनीति की बोझिल शब्दावली से अपरिचित भले ही हो, पर मानव मान्यताओं के प्रति वह सजग है। रामसरन के प्रति उसकी सहानुभूति आदेश्वर से कम नहीं है।

रूपमती के शब्दों में रामसरन वास्तविक पुरुष है; उसने पुरुष का सा व्यवहार किया है।

आदेश्वर ने नारी प्रकृति की फिसलनमय भूमि पर धीरे-धीरे बढ़ते हुए, पूछा—"क्या तुम उसकी सहायता के लिए कुछ करना चाहोगी?"

उसने देखा कि रूपमती के नेत्रों में एक ज्योति आ गई है—रामसरन की सहायता!

उसे कुछ भूत काल की घटनाएँ स्मरण हो आईं। समय था जब रामसरन का शारीरिक बल उसका सहायक हुआ था। उसे पता था कि आज जो उसके विरुद्ध हैं, उनमें से कुछ के हृदय में वह स्वयं कारण हो सकती है। वह रामसरन की सहायता करेगी। उसे लगा कि उसका भाग्य उदय की ओर जा रहा है। आदेश्वर की सेवा! रामसरन की सहायता! उस विश्वासी नारी को लगा कि कलिकाल में देवताओं की आत्माएँ भूमि पर उतर उसे सेवा का अवसर दे रही हैं।

वह कितने दिनों से अपनी मृत्यु माँग रही है। आत्म-हत्या वह नहीं कर सकी, क्योंकि वह कर नहीं सकी। पर यदि मृत्यु स्वयं उसके निकट आयेगी तो वह उससे विमुख न होगी। नारी ने निश्चय कर लिया कि रामसरन की सहायता के लिए यदि मरना भी पड़ेगा तो वह प्रस्तुत होगी।

उत्सुकता से उसने पूछा—"क्या करना होगा मुझे ?"

आदेश्वर ने मुस्कान से उसके उत्साह का स्वागत किया। और फिर उसे अपने संघर्ष के सिद्धान्त समझाने प्रारम्भ किये। वह प्रसन्नता की झोंक में एक लम्बा भाषण दे गया। चकित, मुग्ध रूपमती उसके मुख की ओर देखती रही। आदेश्वर विद्वान है, कारीगर है, चतुर है; यह वह जानती और मानती थी। पर आदेश्वर इस प्रकार बोल सकता है, यह उसने कल्पना भी न की थी।

भाषण के पश्चात् उसने सरल टिप्पणी की। "बोलते समय तुम्हारा मुँह बड़ा अच्छा लगता है। तुम तो लकचर देते हो।"

आदेश्वर झुँझला उठा। क्या इसी टिप्पणी के लिए इतना परिश्रम उसने किया ?

"तुम यह बताओ कि समझी क्या ? क्या मैं वैसे ही बकता रहा ?"

"समझी क्यों नहीं ! यही न ? रामसरन की सहायता खूब करनी चाहिए। पर इतनी बात तो मैं पहिले ही समझ गई थी।"

आदेश्वर ने ऊपर नहीं मन में दोनों हाथों अपना सिर पीट लिया। उसकी समझ में न आया कि वर्ग-संघर्ष का पूर्ण तर्क समझे बिना वह रामसरन की सहायता में पूर्ण हृदय कैसे डाल सकेगी। वह हृदय चलाना चाहता था—बुद्धि और वाणी के सहारे। बिना वाणी के सशब्द और बुद्धि के चेतन हुए भी उसकी इच्छानुसार कार्य हो सकता है, यह समझने में उसे कुछ कठिनाई थी।

"तो तुम रामसरन की सहायतार्थ कार्य करने को प्रस्तुत हो ?"

"क्या करना होगा ?"

आदेश्वर ने अविश्वास की दृष्टि से रूपमती की ओर देखा। "काम कठिन है। विरोध हो सकता है। तुम पर शासन की ओर से कुछ विपत्ति भी आ सकती है।"

रूपमती केवल मुस्करा दी।

"कार्य में परिश्रम की नहीं, साहस की आवश्यकता है।"

"पर है क्या वह काम ?"

"बात करना है, खूब बोलना है।"

रूपमती खिलखिला उठी। नारी के लिए इसी को आदेश्वर कठिन कार्य कह रहा था!

"जल्दी बता डालो न, क्या बात करनी है ?"

आदेश्वर का हृदय संदिग्ध रहा। उसे विश्वास न था कि रूपमती इस कार्य को उचित प्रकार से कर सकेगी।

"काम बतायेंगे नहीं। नहीं बताना था, तो कहा क्यों था ?"

आदेश्वर के लिए कोई मार्ग न रह गया।

बोला—"काम यह है : तुम्हें गाँव के घर-घर में रामसरन की प्रशंसा करनी पड़ेगी। उसने पिता की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए धर्म का काम किया है। जो उसके विरुद्ध झूठी गवाही देंगे वे अधर्म करेंगे। वे कायर और डर-पोक होंगे।"

रूपमती ने सुना और फिर इस प्रचार के फल की सम्भावना उसकी समझ में आगई। धर्म के नाम ने उसकी कल्पना जगा दी।

वह झूठी गवाही देने वालों को नरक का, परिवार-विनाश का वह चित्र खींच दिखायेगी कि वे काँप उठेंगे।

पर क्या इससे रामसरन बच जायगा ? अब जब बचने की सम्भावना उसके सम्मुख आ गई तो उसका लोभ बढ़ गया। उसे लगा कि बच ही जाना चाहिए; अभी बच जाना चाहिए।

[३]

रूपमती ने यह कार्य अपने सिर ले तो लिया पर इसमें सफलता का मार्ग खोजना उसका काम था।

रूपमती किसी समय गाँव में साधारण नारी थी। पर जब उसे साधारण बनाये रखने वाला न रहा, तब वह पतिता हो गई और उसके साथ ही भयानक भी। लोग उसके सामने बातें करते भयभीत होने लगे। क्योंकि उससे कहने का अर्थ पुलिस अथवा राजा के सिपाही से कहना था।

इस अवस्था तक पहुँचने के पश्चात् पुनः उठकर, नमकर साधारण हो जाना, अत्यन्त कठिन समस्या थी। पर उसे करना ही होगा और उसने कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया। कैसे और क्या सोचा, यह कहना कठिन है। पर जिस प्रकार उसने कार्य प्रारम्भ किया वह कार्य की भाँति ही विचित्र था।

उसने अपने सबसे सुन्दर वस्त्र धारण किये और पानी भरने पनघट गई। बड़ा सा कुवाँ, उसके ऊपर गडारी; दो ओर बबूल के टेढ़े-मेढ़े मोटे लक्कड़ पड़े थे। जिन्हें गड़ारियों पर आने का अवसर न मिल पाता था वे लकड़ों के सहारे भरती थीं। रस्सी की रगड़ से उन दीर्घप्राण लकड़ों पर गहरे चिह्न बन गये थे।

कुवें पर चारों ओर गगरों और घड़ों की अशान्त भीड़ थी, और उसमे अशान्त भीड़ थी उन लाल नीली कशियों की, जो समृद्ध, असमृद्ध, टूटी-फूटी लाजों को बचाये हुए थीं। जिनके नीचे रुदन-कलपन में से भी हँसी के क्षण निकाल लेने वाले हृदय छिपे थे। वे नारियाँ, परिश्रम, साधना की रसमय मूर्ति-सी अपने चरणों से जैसे कुवें को पवित्रता प्रदान कर रही थीं।

तभी सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित, अत्यन्त स्वच्छ चमकते दो गगरे सिर पर रक्खे, रस्सी कंधे से लटकाये, रूपमती ने कुवें के निकट ठिठक कर चारों ओर देखा। उसका आगमन एक योजनानुसार था।

कुवें पर चढ़ी। नारियों ने उसकी ओर देखा, पर उससे बोलने की किसी ने चिन्ता न की।

एक वृद्धा ने अपनी पतोहू को दिखाया—"बुरे कामों का यह परिणाम होता है।"

पर बेचारी बहू की समझ में न आया। यदि अच्छे वस्त्र और अच्छे बर्तन बुरे कामों के परिणाम हैं तो....।

पर वृद्धा का वास्तविक मन्तव्य पूरा हो गया। उसने बता दिया कि वह कुलटा है, उससे बचना चाहिए।

रूपमती ने लक्कड़ों पर होकर पानी भरा और फिर रस्सी समेट अपने

गगरे पर रख दी। कुछ क्षण इधर-उधर देखा। अपनी दृष्टि एक आनेवाली रमणी पर जमा दी। ज्यों ही उस नारी ने अपने गगरे जगत पर रख कुंवें पर पैर रक्खा, त्यों ही रूपमती उसके पैरों पर गिर पड़ी, और रोने लगी।

जितनी कुंवें पर थीं, सब रूपमती को वैजन्ती के पैरों पर रोते देख भौंचक्की रह गईं। रूपमती ने वैजन्ती के पैरों की धूलि अपने माथे लगाई।

सब दृष्टियों ने उससे एक ही प्रश्न किया।

उसने बड़े आत्म-गौरव के साथ पानी में बैठ घोषणा की, "ऐसे धर्मात्मा की पत्नी की धूलि कब कब प्राप्त होती है? कोई गाँव में है, जिसने अपने पिता के लिए इतना त्याग किया है? क्या किसी ने कभी इस प्रकार अत्या-चार के सम्मुख खड़े होने का साहस किया है? ऐसे पति की नारी होने का सौभाग्य क्या सब को प्राप्त होता है?"

उसने फिर वैजन्ती के चरण-स्पर्श किये। और बिना किसी की ओर देखे, ऊँची गर्दन किये, गगरे सिर पर रख घर को चल दी।

[४]

रूपमती का व्यवहार ताल में पत्थर फेंकने के समान था। जिस प्रकार पत्थर के आघात से तरंगें उत्पन्न होकर चारों ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार इस घटना ने गाँव में रामसरन काण्ड को सजग और सचेत कर दिया।

पड़ोसी रघुराज की बुढ़िया दादी ने आधा घण्टे पश्चात् जाकर सहदेई को सूचना दी कि तुम्हारे घर में देवी बहू है।

"क्या हुआ?" सहदेई ने प्रश्न किया। यदि वह कहती कि तुम्हारे घर में चुड़ैल बहुएँ हैं, तो इस प्रश्न की कदाचित् इतनी आवश्यकता न अनुभव होती। कारण; वह जानती है कि उसकी दोनों देवरानियाँ कहने को देवरानियाँ होने पर भी चुड़ैलों से कम नहीं हैं। ऐसी दशा में देवी की उपाधि के प्रति सन्देह स्वाभाविक था।

और उत्तर में रघुराज की दादी ने समस्त घटना जैसी उन्होंने कुंवें पर देखी थी कह सुनाई। सहदेई ने सुना और ध्यानावस्था में जाने के लिए नयन

मूँद लिये। तुरन्त ही जैसे उसने सब भेद जान लिया। बोली—"दादी, तिरिया-चरित्तर के अतिरिक्त और यह कुछ नहीं है। वह जैसी देवी है मैं जानती हूँ। जब से आई है परिवार पर विपत्ति ढाती आई है। पति को जेल तक भिजवा दिया। पता नहीं कितने वर्ष में छूटेगा।"

रामविलास की एक विधवा बुवा थीं—पार्वती। वे अपनी ससुराल में असुविधा से बच अब भ्रातृगृह की असुविधा मिटाने आ गई थीं। रामविलास, रामसरन और रामावतार की गृहस्थी का समस्त उत्तरदायित्व उन्होंने धीरे-धीरे अपने ऊपर ले लिया था। वे बहुओं की बुवा-सास केवल थीं ही नहीं, बन चली थीं।

अवस्था में भाई से तीन वर्ष अधिक होने के कारण उनके अधिकार के विषय में सन्देह-शंका को अवकाश न था।

उनके कान में कुछ भनक पड़ गई। बोलीं—"क्या बात है काकी?"

सहदेई ने मुख फेर लिया। उसे पार्वती का इस घर में आना न रुचा था। वह अलग थी, फिर भी जहाँ सास-बहुओं की बात थी, वहाँ वह बहू ही थी।

काकी ने समस्त घटना को तनिक और बलपूर्वक वर्णन किया। बुवा सुनकर चिन्ताग्रस्त हो गईं। वह वैजंती के पैर पकड़ कर रोई। तलवे की धूलि सिर पर लगाई और इसलिए कि रामसरन ने पिता को गाली देना सहन नहीं किया? समस्त घटना पागलपन से अधिक न जँची। उन्हें विश्वास न हुआ कि रूपमती स्वस्थ नारी है। पूछा—"वह पागल तो नहीं है?"

काकी ने बुवा की ओर देखा और कहा—"नहीं।"

बुवा की समझ में विशेष कुछ नहीं आया।

सहदेई ने बुवा की सहायता की—"मैंने तो कहा कि यह तिरिया-चरित्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

और अब बुवा को जैसे जटिलता का ठीक सुलझाव मिल गया। निस्सन्देह यह तिरिया-चरित्तर है। उन्होंने निश्चय किया कि रामसरन की बहू को ताड़ना देनी होगी। जबतक वे इस घर में हैं, घर की लाज-मान का उत्तर-दायित्व उन पर है।

रामविलास घर है, रामाधीन घर है। इसलिए उनकी नारियाँ बुवा के शासन से स्वतन्त्र है। पर रामसरन घर नहीं हैं, इसलिए वैजंती पर उनका शासन अनिवार्य है, नहीं तो इस कलिकाल में तिरिया-चरित्तर क्या कम है।

उन्होंने वैजंती के चौक में जाकर उसे खोजा। वह घास की गठरी खोल मिट्टी झाड़ रही थी।

पार्वती खड़ी उसे काम करते देखती रही। उन्हें लगा कि वह जान-बूझ कर उनकी ओर नहीं देख रही है। उनका निरादर कर रही है। उन्हें बहुत बुरा लगा। एक तो घर से बाहर अपराध करके आवे और घर में यह गर्व! यदि इस गर्व को चूर्ण न किया तो पार्वती नहीं। अपने भाई की गृहस्थी को वे अपने जीते जी दाग़ न लगने देंगी।

पर प्रथम विचार-धारा ने वैजंती को पहिले ही उनका व्यक्तिगत शत्रु बना दिया था। अब चाहे उसने अपराध किया हो चाहे न किया हो, दण्ड उसे अवश्य मिलना चाहिए।

और तब उसने कठोर स्वर से पुकारा—"बहू।"

वैजंती ने घूमकर देखा कि बुवा खड़ी हैं। वह कार्य-व्यस्त थी इसलिए बुवा के कण्ठस्वर पर ध्यान नहीं दे पाई। साधारण रीति से उसने पूछा—"क्यों क्या काम है?"

बुवा ने आशा की थी कि वह अपराधिनी उनका स्वर सुनते ही गिड़गिड़ा उठेगी। उन्हें वैजंती के व्यवहार से निराशा हुई। फलस्वरूप वे और भी असन्तुष्ट और क्रोधित हो गईं।

बोलीं—"सुनती है कि नहीं?"

"क्या है? काम कर रही हूँ। घास आज देर से आई है, काट कर डाल दूँ; पशु भूके होंगे।"

बुवा को लगा कि वह कुछ नहीं और पशु सब कुछ। वह यों ही भूँक रही हैं। वे ज़ोर से चिल्ला उठीं कि वे अब इस घर में न रहेंगी। किसी को उनकी चिन्ता नहीं है। पशु उससे अच्छे समझे जाते हैं। बहू उन्हें कुछ समझती नहीं।

वैजंती हक्का-बक्का हो गई। वह घास छोड़ समस्त परिस्थिति समझने की चेष्टा करने लगी।

बुवा ने फिर उच्च स्वर से पुकारा—"मैं अब भैया से कह दूँगी कि मुझे मेरे घर भेज दो। दुःख-सुख में कुछ भी हो वह अपना ही घर है। किसी की मजाल नहीं कि मेरी ओर आँख निकाल कर देखे; यहाँ जिसे देखो वही सिर चढ़ा रहता है।"

बुवा का कण्ठस्वर सुनकर रघुराज की दादी से अवकाश पा सहदेई भी वहाँ आ उपस्थित हुई। पूछा—"क्या हुआ बुवा जी ?"

"हुआ क्या बहू! कितनी देर से खड़ी पुकार रही हूँ। छोटी बहू, ओ छोटी बहू। पर छोटी बहू अपने में मस्त है। वह किसी की सुनती ही नहीं।"

सहदेई ने अभियोग सुन कर मुँह बनाया। वैजंती की ओर दृष्टि डाली, बुवा जी की ओर देखा। बोली—"बुवाजी, वह तुम्हारी बात क्यों सुनेगी! उसे तो अब उस बेसवा ने देवी बना दिया है। देवी क्या साधारण नारी की बात सुनती है ?"

किसोरी घर में थी नहीं।

"हाँ, ठीक कहती हो बड़ी बहू। जब नई-नई धोतियाँ पहिन कर औरतें चरणों में लोटती हैं तो वह अब मेरी बात क्यों सुनेगी ?"

उसने अनियंत्रित वैजंती की हिलती उँगलियों की ओर देखा। वह ऊपर से शान्त पर भीतर से क्षुब्ध खड़ी थी। यह शान्ति ही बुआ और जेठानी दोनों को बुरी लगी।

"ऐसी खड़ी है, जैसे कि तुम इसकी बाँदी हो।" सहदेई ने कहा।

अपमान असह्य तो वैसे ही था, पर अब परम असह्य हो गया। पार्वती भाई के घर में बाँदी बनकर रहने नहीं आई है। उसे यदि बाँदी बनकर रहना है तो अपनी ससुराल में रहेगी। चाहे वहाँ रहना सम्भव हो चाहे असम्भव। इस प्रकार यदि रहेगी तो वहीं रहेगी। इस घर में ? नहीं, कदापि नहीं।

"हाँ, बाँदी तो हूँ ही! तभी तो अपना घर छोड़ कर दौड़ी

आई हूँ। ऐसी देवी थी तो खसम को जेल क्यों जाने दिया। आते ही सास को खा गई। खसम को हवालात भेज दिया, सारे परिवार को तीन तेरह कर दिया। पता नहीं रामसरन के भाग में ऐसी कहाँ से लिखी थी।"

उन्होंने साँस लिया।

"आज रामावतार को आ जाने दे तो मैं सब फैसला कर लूँगी। मेरे रहते इस प्रकार की बातें घर में नहीं होंगी।"

वैजंती के भीतर जैसे अब तक एक तनाव बढ़ रहा था। एक शक्ति जमी हुई थी। एक सहनीयता शेष थी। पर अब जैसे बाँध टूट गया। उसकी शक्ति समाप्त हो गई। उसे लगा कि उसके पैर उसके शरीर को सँभाल नहीं सकेंगे। यदि वह वहाँ और कुछ क्षण खड़ी रही तो भूमि पर गिर पड़ेगी।

इन लोगों के सम्मुख गिर पड़ने की हीनता वह स्वीकार नहीं करेगी। उसमें कुछ महानता है तभी तो रूपमती उसके पैरों पड़ी थी। और वह महानता उसकी नहीं, रामसरन की है। वह उसे कितना प्यार करता था।

रामसरन की अनुपस्थिति उसने सही है। रातें रो रो कर उसने बितायी हैं। अब भी बिताती है; और ये बुवा हैं कि समस्त संसार के अभाग का उत्तरदायित्व उस पर डाल रही हैं।

उसने ऐसा स्पष्ट नहीं सोचा पर इन विचारों से जो भावना प्राणी में उत्पन्न होती है वह उसमें उत्पन्न हो गई।

उसके मन ने कहा—"ऐसा! यदि मैं ही बुरी हूँ तो अच्छा मैं जाती हूँ। करो अपना सानी पानी।"

वह तेज़ी से वहाँ से चली गई। अपनी कोठरी में घुस ज़ोर से सशब्द किवाड़ बन्द कर लिये; खाटपर गिर पड़ी। जो आँसुओं का कोष अब तक नयनों में उमड़ उमड़ कर उससे टकराता रहा था, अब खुल पड़ा और वह रामसरन की, अपने पीहर की सुधि कर फफक-फफक कर रो पड़ी।

"देखा? कितना तेहा है।" बुवा ने कहा।

"घुन्नी नागिन है बुवा जी।" सहदेई ने समर्थन किया।

इसके पश्चात् वे दोनों अर्द्ध-सन्तुष्ट हो वहाँ से चली गईं।

सहदेई ने बच्चों को कई दिन से सँभाल कर रक्खी लाई और गट्टे दिये और बुवा जी ने कथा को विस्तार देने के लिए बाहर पदार्पण किया।

कोठरी में बन्द वैजंती कुछ क्षण रोती रही। पर रोने का कार्य ऐसा नहीं कि निरन्तर चलता रहे। आँसू मोतियों की भाँति हैं। जिनका मूल्य उनकी अल्प संख्या में है। कदाचित् इसी मूल्य को बनाये रखने के लिए ही जो सुख-दुःख आँसुओं को उत्पन्न करते हैं, वही उन्हें सुखा भी देते हैं।

थोड़ी देर में वैजंती जैसे जागी। एक नशा-सा उस पर से उतर गया। उसने पाया कि वह खाट पर चित्त अकेली पड़ी है, और उस अँधेरे में सब वस्तुएँ उसके सम्मुख मूर्तिमयी हो गई हैं।

उसी समय एक गम्भीर भारी स्वर उसके कानों में पहुँचा।

वह जैसे विद्युत शक्ति से तत्क्षण उठकर बैठ गई।

वह यदि पड़ी रही तो पशु भूखे रहेंगे। अपने बैल का करुण स्वर उसे कोठरी से बाहर खींच लाया। इधर उधर दृष्टि दौड़ाई; हल्की मुस्कान उसके मुख पर आ गई, और वह कुट्टी काटने के स्थल की ओर चली।

चारे पर गँड़ासे के गिरने का शब्द सुन पशु रँभा उठे। वैजंती को लगा कि आज उन्हें भोजन देने में विलम्ब हो गया है। उसने काटने में शीघ्रता की। थोड़ी सी काटी और उठाकर उनके सामने डाल आई। फिर आराम से धीरे-धीरे काटने लगी। इस घर में आत्मीयता के आधार वे पशु ही थे। उनके साथ उसके सम्पर्क में न कोई सामाजिक बाधा थी न पारिवारिक।

किसोरी थोड़ी देर में हरिसुन्दर को लिये लौटी। वैजंती को कुट्टी काटते देखा और भीतर चली गई। हरिसुन्दर वहीं चरी के गोल गोल टुकड़े एकत्र करने लगा। सहदेई के भी दो बालक आ गये। अच्छा खासा खेल चल निकला।

बुवा जी जब छोटी बहू की धृष्टता और अपने शीघ्र प्रस्थान का विज्ञापन करके लौटीं, तो उन्होंने यह दृश्य देखा। जलकर खाक हो गईं।

उन्हें लगा कि इतना कहने सुनने का वैजंती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वह उस समय वहाँ से इसलिए हट गई थी कि बुवा का मुख न दिखाई पड़े।

पर बुवा भी इसे देख लेंगी। वैजंती ने बुवा की पीठ देखी और ज़ोर से गँड़ासा चारे पर मारा।

बच्चों से कहा - "जाओ रे, बुवा जी आई हैं, लाई गट्टा लाई हैं।"

और वे बालक खेल छोड़ बुवा जी से लाई-गट्टा माँगने उठ दौड़े।

हरिसुन्दर ने कहा—"लाई!"

ननको बोली—"गट्टा।"

इन लोगों को अपने चारों ओर पाकर बुवाजी तंग आ गईं। वह वैजंती की छद्म पराजय का ज्ञान पाते ही अपनी प्रसन्नता का कोष गवाँ बैठी थीं। उनकी विजय इतनी अल्पजीवी होगी, इसका उन्हें ध्यान न था।

पूछा "किसने कहा कि मैं लाई गट्टा लाई हूँ।"

और बालकों ने एक स्वर से उत्तर दिया—"काकी ने।"

बुवा जी का मुख मारे क्रोध के विकृत हो गया। इस छोकरी का इतना साहस कि बालकों को उनके पीछे लगाये।

वे तेज़ी से वैजंती के पास पहुँचीं।

"क्योंरी, तैंने मुझे लाई गट्टा ले जाते देखा है?"

वैजन्ती ने सुना नहीं। वह कुट्टी काटती रही।

"सुनेगी नहीं क्या? बता न तैंने मुझे लाई गट्टा लाते देखा है?"

बालक भी आकर वहाँ एकत्र हो गये।

वैजंती ने हाथ का पूला समाप्त कर पूछा—"क्या बात है बुवा जी?"

बुवाजी ने प्रश्न और तेज़ी से दुहराया।

"नहीं, मैंने तो नहीं देखा।"

"फिर इनसे क्यों कहा?"

"सामने बैठे थे; टाले नहीं टलते थे। उन्हें उठाने को कह दिया। यही गुल्ले छिटक कर किसी के लग जाते तो....।"

बुवा जी की समझ में बात नहीं आई। बोली—"तू बहुत सिर चढ़ रही है।"

वैजंती ने दूसरा पूला उठाया और गँड़ासे का प्रथम प्रहार किया।

"रामसरन की बहू।" बुवा जी ने तीव्र स्वर से पुकारा।

अब जैसे वैजंती ने चुनौती स्वीकार कर ली।

उसने गँड़ासा एक ओर रख दिया, और अपने दोनों नेत्र बुवा जी के नेत्रों से मिला दिये। बोली—"बुवा जी आज तुम्हें क्या हो गया है? मुझे चारा काट लेने दो। पीछे जो कुछ कहना हो कह लेना। पशु भूखे खड़े हैं।"

वैजंती कभी बुवा के सम्मुख बोलती न थी। पर माँ जिस प्रकार सन्तान की रक्षा में सिंहनी बन जाती है, इसी प्रकार उसके पशुओं ने इस संघर्ष में उसे शक्ति प्रदान की।

बुवा आश्चर्य से सन्न रह गईं। आज रामसरन की बहू की इतनी लम्बी ज़बान कैसे हो गई? पर बहू से यदि दब रहेंगी तो शासन क्या करेंगी। फिर पशुओं से उनकी समानता? पशुओं का काम पहिले और उनका काम पीछे! वे वास्तव में चिढ़ गईं।

"हाँ, बैल तो तुझे बड़े प्यारे हैं; आदमी कुछ नहीं।"

वैजंती के मन में उठा कि बैल यदि न होंगे तो हल में क्या आदमी जाकर जुतेंगे। पर वह चुप रही।

बुवाजी का क्रुद्ध स्वर सुनकर किसोरी आ गई।

"क्या हुआ बुवा जी?"

वह भी उड़ती-उड़ती देवर की प्रशंसा सुन आई थी, और उससे उसे आनन्द ही हुआ था। उसका सिर दूसरों के बीच में ऊँचा हो गया।

पर जब प्रशंसित व्यक्ति से अधिक सम्बद्ध वैजंती की ओर उसने देखा तो एक प्रकार की ईर्ष्या उसमें उमड़ आई।

मन की गहराई में उठा कि हवालात में जाने वाला व्यक्ति रामसरन न होकर रामविलास क्यों न हुआ? अथवा वह रामविलास की पत्नी न होकर रामसरन की पत्नी क्यों न हुई।

वैजंती है, इसलिए उस कल्पित स्थान से उसमें प्रतियोगितात्मक सपत्नी-भाव जाग्रत हो गया। पर यह भावना हृदय में गहरे तल में थी। ऊपर इस

भावना को यदि वह स्पष्ट देख पाती तो उसे कुचलने में प्रयत्नवती न होती। पर वह भीतर थी, उससे अदृश्य।

बुवाजी ने कहा—"रामसरन की बहू ऐसी बातें बोलती है कि...।"

वैजंती को, जब कि उसके पशु बाहर भूखे खड़े थे, यह असह्य हो गया। बोली—"कह रही हूँ कि कुट्टी काट लेने दो, उसके पीछे जो कुछ तुम्हें कहना हो कह लेना। मैं सब बैठकर सुन लूँगी; पर ये सिर हुई जा रही हैं।"

तुरन्त ही उसे अनुभव हुआ कि अन्तिम वाक्य नहीं कहा जाना चाहिए था। पर तभी दूसरे पक्ष ने कहा क्यों नहीं कहना चाहिए था। वह जो उनके मन में आये कहनी अनकहनी कहें और मैं तनिक सी बात भी न कहूँ।"

पर जिससे वह डरती थी वही हुआ। बुवा जी ने वाक्य पकड़ लिया और उसे तेज़ी से दुहरा दिया।

"हाँ, मैं तो इसके सिर हुई जा रही हूँ। कैसी कैंची सी ज़बान चलाती है, बड़ा छोटा कुछ नहीं देखा जाता।"

वैजंती गँडासा छोड़कर उठ खड़ी हुई। किसोरी से बोली—"जेठानी, मेरे बस का इस प्रकार कुट्टी काटना नहीं है। तुम जेठ जी से कह देना, वे ससुर जी से कह देंगे। ये यहाँ सिर पर खड़ी चिल्लाती रहेंगी। यदि गँड़ासा मेरे हाथ में लग गया तो कौन इलाज करा देगा।"

यह नवीन दिशा पार्वती की कल्पना से परे थी। जहाँ तक पशुओं का सम्बन्ध है, वहाँ किसोरी वैजंती के साथ होगी। क्योंकि यदि वैजंती कुट्टी नहीं काटेगी तो किसोरी के अतिरिक्त और कौन काटेगा। पुरुषों को बाहर के काम से ही अवकाश नहीं मिलता।

और किसोरी बुवा जी का हाथ पकड़ उन्हें वहाँ से हटा ले गई। उन्होंने विरोध नहीं किया। पर उन्हें अनुभव हो गया कि दोनों बहुएँ उनके विरुद्ध एक हो गई हैं। अपनी इस विवशता पर उस वृद्धा के नयनों में आँसू आ गये।

[५]

कुछ विषय हैं जो मानव-जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पर जबतक

छिपे हैं तबतक कोई उनकी ओर कोई दृष्टिपात नहीं करता। वे जैसे होते ही नहीं। पर यदि एक बार वे सम्मुख आ जाते हैं तो उनकी रोचकता और उपादेयता उन्हें प्रस्फुटित करती जाती है।

ऐसे विषयों को जाग्रत रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनमें दो पक्ष सम्भव हों। पक्ष और विपक्ष की उत्पत्ति के पश्चात् वह विषय उस विरोध में से जीवन-रस ग्रहण करता रहता है और पनपता रहता है।

रामसरन के विषय में भी यही बात हुई। उसे अभी तक गाँव वाले जैसे भूले हुए थे। पर पुलिस को उसका अपराध प्रमाणित करने का जो अवसर मिला था वह ज्यों-ज्यों समाप्ति के निकट आता जाता था त्यों-त्यों गाँव में विचित्र रीति से इस काण्ड की चर्चा बढ़ती जा रही थी, आन्तरिक सहानुभूति नवयुवकों और वृद्धों की रामसरन की ओर थी।

एक दल में उत्साह था और घर की प्रतिष्ठा के विषय में भावुकता थी और दूसरा दल था जो अपनी बची-खुची मान-मर्यादा को चिता तक अक्षुण्ण पहुँचा देने में प्रयत्नशील था।

इनके अतिरिक्त व्यक्ति थे जिन्हें अपना क्षुद्र जीवन छोटे तौर पर बनाना था और इस क्रिया में, किसी भी प्रकार हो, शासन-यंत्र की सहानुभूति पाने के इच्छुक थे। ये वे लोग थे जो किसी न किसी प्रकार यंत्र के अनियमित रूप से आभारी थे। अथवा यंत्र ने भविष्य में उनका उपकार करने का वचन दिया था।

जब एकाएक बहुत से लोग एक प्रकार से सोचने लगते हैं तो वही आन्दोलन कहा जाता है।

गाँव के शासन को अनुभव हुआ कि रामसरन के पक्ष में गाँव में आन्दोलन है। यह शंका और भी बलवती हो गई जब हरिनाथ ने कारिन्दा सा'ब को सूचना दी कि गाँव के कुछ लोग रामसरन के विरुद्ध गवाही देने वालों को मारने पीटने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

इन विषयों में कारिन्दा सा'ब समय रहते ही कार्य करने वाले थे और उन्होंने यह सूचना तत्काल थानेदार सा'ब को भिजवा दी।

थानेदार सा'ब ने इस तनिक सी बात के लिए स्वयं कष्ट करना उचित न समझ कर दो सिपाहियों-द्वारा आन्दोलन के नेताओं को बुला भेजा। नेता कौन है यह निर्णय करने का अधिकार हरिनाथ ने अपने ऊपर लिया। करिन्दा सा'ब ने हरिनाथ को सौंप दिया।

हरिनाथ की निर्णायक शक्ति सतर्क थी। तर्क था कि रामसरन के पक्ष में सब से अधिक कौन बोल सकता है। उत्तर स्पष्ट था कि रामसरन का भाई। और आन्दोलन के नेता होने का सौभाग्य रामविलास को प्राप्त हुआ।

घर पर वह था नहीं; खेतों में उसे खोजना पड़ा। वहाँ भी वह नहीं मिला।

सिपाहियों ने पूछा उसके अतिरिक्त और भी तो कोई होगा ?

हरिनाथ अब झमेले में पड़ गया। किसका नाम ले पर नाम तो लेना ही होगा। और उसने आदेश्वर का नाम ले दिया।

सिपाही हरिनाथ सहित उसके द्वार पर पहुँचे। रामावतार के घर कह गये कि रामविलास आते ही थाने में भेज दिया जाय।

आदेश्वर और रूपमती टोप बुन रहे थे। सिपाहियों ने जाकर सन्देशा कहा। आदेश्वर ने कार्य बन्द कर दिया। ध्यान से उन तीनों मूर्तियों की ओर देखा और फिर रूपमती की ओर। हल्की मुस्कान उसके ओठों पर दौड़ गई। इसका अर्थ था कि उसके मुख से दो-चार शब्द निकल गये हैं उनका प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है।

आदेश्वर ने पूछा कि उसका नाम उन्हें किसने बताया है।

"हरिनाथ ने।"

"ये गाँव के कौन हैं।"

सिपाही इस प्रश्न पर चकित हो गये। वे यही जानते थे कि जिसके द्वार पर जाकर खड़े हुए वही थर्रा उठा। जिससे कहा वही उनके साथ हो लिया। आदेश्वर के यहाँ आते समय एक शंका मन में उठी थी वह पूर्ण हो गई।

उसने कह दिया कि वह न चल सकता है और न जायगा। दो मील पैदल चलने की सामर्थ्य उसको नहीं है। यदि थानेदार उसे बुलाना ही चाहते

हों, तो कृपया इस बार ताँगा लेकर आवें।

सा'ब लोगों के लिए जो हैट बनाता है उसके मुख से ऐसी बातें उन्हें ठीक ही लगीं।

तभी रूपमती के हृदय में एक विचार उठा। उसने उठ कर एक सिपाही को अपने निकट बुलाया। सिपाही ने इसे अपना परमादर समझा।

रूपमती ने पूछा—"किस किस के नाम हरिनाथ बाबू ने बताये हैं?"

उसे ज्ञात हुआ कि केवल रामविलास और आदेश्वर के।

उसने बड़े धीरे से सिपाही के कन्धे पर प्रीति से हाथ रखकर कहा—"गुरुसेवक, क्या तुम समझ नहीं पाये कि हरिनाथ अपने वैरियों को फँसाने के लिए यह गव कर रहा है। कारिन्दा सा'ब से पूछोगे तो पता चलेगा इस आन्दोलन का समाचार भी उन्हें हरिनाथ ने ही दिया है।"

रूपमती-द्वारा इस प्रकार कही गई बात गुरुसेवक को सच्ची न लगती तो यह आश्चर्य की घटना होती।

उसने रहीमबख्श को बुलाकर रूपमती की बात सुनाई, और कहा कि उचित है वह जाकर कारिन्दा सा'ब से पूछ आयें कि यह सूचना उन्हें किसने दी है।

रहीमबख्श को बात जँच गई। पुलिस में वह दस वर्ष से था, पर उसने दूसरों की आज्ञा का पालन ही किया था। अपनी बुद्धि और योग्यता के प्रयोग का अवसर उसे बारम्बार मिल कर छिन छिन गया था। इस स्वतन्त्र अनुसन्धान के अवसर को वह जाने न देना चाहता था। उसने कारिन्दा सा'ब के पास जाना स्वीकार कर लिया।

रहीमबख्श को जाते देख हरिनाथ को बुरा लगा। वह कदाचित् समझ रहा था कि उसे इन सिपाहियों का अफसर बनाकर भेजा गया है।

उसने कुछ तेजी से पूछा—"कहाँ चले रहीम?"

रहीमबख्श को कान्स्टेबिल के नाम का साधारण व्यक्ति द्वारा इस प्रकार प्रयोग बुरा लगा।

उसने तेज़ी से उत्तर दिया—"तुम वहीं बैठो। यह पुलिस का काम है।

बीच में बोलने का हक किसी को नहीं।"

हरिनाथ को यह फटकार बुरी लगी। पर जो रहीम ने कहा उसका अधिकार था। हरिनाथ चुपचाप वहीं बैठा रहा। रहीम को लौटने में पर्याप्त समय हो गया। हरिनाथ बैठा रहा। वैसे उसकी अपमान सहने की शक्ति असाधारण थी, पर अन्य लोगों के सम्मुख अब जैसे उसमें कमी आ गई।

जब रहीम को लौटने में समय अधिक हो चला तो उसे लगा कि वह खाट जैसे उसके नीचे जलने लगी है। वह खड़ा हुआ और जाने लगा।

गुरुसेवक की दृष्टि हरिनाथ पर लग गई। जब वह चार डग चला गया तो उसने पुकारा—"हरिनाथ, कहाँ चले? बैठो; तुम्हें हमारे साथ थाने तक चलना पड़ेगा।"

हरिनाथ को यह बहुत बुरा लगा पर लौटना अनिवार्य था।

पूछा—"क्यों गुरुसेवक?"

"पता नहीं भैया; थानेदार सा'ब की आज्ञा ही ऐसी है।"

मन मार गुरुसेवक की आज्ञा का पालन उसे करना पड़ा। अपनी जिस लँगड़ी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए इतना जोखिम लिया था वही खण्डित हो सब के सम्मुख भूमि पर गिर पड़ी। हरिनाथ ने खाट पर बैठ इच्छा न होते हुए भी सिर नीचा कर लिया।

रूपमती ने पूछा—"मुंशी जी, पानी-वानी लाऊँ?"

और माँगने पर गुरुसेवक को पानी लाकर उसने पिलाया। हरिनाथ से पूछा तो प्यास होने पर भी उसने मना कर दिया।

रहीम लौट आया। गुरुसेवक से उसने एकान्त में वार्तालाप किया। हरिनाथ ने ध्यान से उनकी मुद्रा देखी और फिर दृष्टि नीची कर ली।

रहीम ने पूरी खोज-बीन की थी। सब ओर से उसे यही ज्ञान हुआ था कि कथा का उद्गम स्थान हरिनाथ ही है।

कारिन्दा के सिपाहियों में ऐसे थे जो अन्य स्थानों से भी इस समाचार की सत्यता पा चुके थे। पर हरिनाथ को तनिक छेड़ने का अवसर हाथ आने पर उन्होंने भी समस्त उत्तरदायित्व उस पर डाल दिया। यह घटना हरि-

नाथ के स्वभाव की प्रतिक्रिया-स्वरूप थी।

सब समाचार एकत्र कर सिपाहियों ने फल निकाला कि वास्तव में गाँव में कुछ नहीं है। वे दोनों केवल हरिनाथ की उड़ाई अफ़वाह-द्वारा ही व्यर्थ तंग किये गये हैं। पर जब यहाँ तक आये हैं तो उन्हें कुछ करके ही जाना चाहिए।

क्या करना चाहिए, इसी चिन्ता में थे कि रूपमती ने उनकी सहायता की। बोली—"मुंशी जी, आप हरिनाथ बाबू को लेकर चलिए; मैं भी आती हूँ। थानेदार सा'ब को सब बातें समझा दूँगी। राजन की माँ आजकल यहीं हैं न ?"

राजन थानेदार सा'ब के लड़के का नाम था।

"हाँ आजकल यहीं हैं। बड़ी माँ जी भी यहीं हैं। परसों ही तुम्हें पूछ रही थीं; सब बातें सुनाईं तो बड़ी प्रसन्न हुईं।"

"हाँ, तो मैं आऊँगी। उनके भी पैर पड़ना है।"

इस प्रकार अपना कार्य बँटता पाकर सिपाहियों को आश्वासन हुआ पर रामविलास के वहाँ आने की अब आवश्यकता नहीं है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वे लोग वहीं से थाने को चल दिये।

हरिनाथ के लिए यह दण्ड शारीरिक से अधिक मानसिक था। दो मील चल कर मित्र समझे जाने वाले थानेदार के सम्मुख उपस्थित होना मार्मिक कष्टदायक था। चलते-चलते उसने परिणाम निकाला कि पुलिसवाले चाहे कितने ही मित्र क्यों न हों, उन पर कभी विश्वास न करना चाहिए।

उसे ध्यान न रहा कि उन्हें जो वेतन मिलता है वह मित्रता निभाने के लिए नहीं, वरन् लचक-विहीन लोहे की भाँति निर्ममता से अपना कर्त्तव्य-पालन करने के लिए।

थाने पर पहुँच कर रहीम और गुरुसेवक ने अपनी समस्त कार्रवाई थानेदार सा'ब को सुनाई। पुलिस के सिपाही, शासन-यंत्र के इस महत्वपूर्ण पुर्ज़े, को व्यर्थ तंग किया जाय, यह उन्हें भाया नहीं। और जब उन्हें बताया गया कि हरिनाथ उनके साथ-साथ उनसे मिलने के लिए आया है, तो उन्होंने

हुक्के का लम्बा कश लेते हुए उसे बाहर बैठाने की आज्ञा दे दी।

स्वयं अपने बच्चे को गेंद फेंकना सिखाने लगे। गुरुसेवक ने रूपमती के आगमन की इच्छा की सूचना भी दी और कह दिया कि उसकी सहायता से ही सब भेद खुला है।

थानेदार सा'ब गम्भीर हो गये। बोले—"अच्छा, हरिनाथ को पानी-वानी का कष्ट न हो।"

गुरुसेवक समझ गया कि हरिनाथ को कई घण्टे बैठाये रखना है।

थानेदार ने सोचा कि रूपमती से सब हाल सुनने के पश्चात् वे हरिनाथ से भेंट करेंगे। यदि वास्तव में उसने पुलिस को व्यर्थ तंग किया होगा तो उसे अच्छा पाठ पढ़ायेंगे।

आध घण्टे बाद भीतर से समाचार आया कि रूपमती आ गई है।

आदेश्वर के आने से पहले रूपमती थानेदार सा'ब के यहाँ आती थी, पशुओं की गोबर-लीद साफ़ करने और बर्तन माँजने। पर आदेश्वर के आगमन के कुछ समय पहले उसने वह काम छोड़ दिया था। अब वह क्या करती है, यह जब थानेदार सा'ब की वृद्धा माता ने सुना तो उदारमना वे प्रसन्न हुईं। उन्होंने पितृ-विहीन अपने एकलौते पुत्र को वैधव्य की ज्वाला में जल कर बड़े कष्टों से पढ़ाया था। वे जानती थी कि यह कष्ट क्या होता है। और तनिक से आश्रय का क्या अर्थ होता है।

आदेश्वर क्या है, कैसा है, क्या करता है, यह सुनकर उनकी प्रसन्नता और उनका सन्तोष और भी बढ़ गया। कहा कि वे किसी दिन उसके आदेश्वर को अवश्य देखेंगी।

इस विषय पर बात हो रही थी कि थानेदार सा'ब ने प्रवेश किया। रूपमती ने प्रणाम किया। थानेदार ने उसके वस्त्रों तथा मुख की ओर देख-कर कहा—"अरे तू तो अब पहचानी भी नहीं जाती।"

माँ ने बेटे से पूछा—"क्या तूने इसके आदेश्वर को देखा है? कैसा है वह?"

"देखा तो नहीं, पर सुना है कि विद्वान है।"

"हाँ अंग्रेज़ी की मोटी-मोटी दो ट्रंक भर किताबें लाये हैं। जब टोप बनाने से थक जाते हैं तो वही पढ़ा करते हैं।"

थानेदार की आदेश्वर में रुचि बढ़ी। बोले—"क्या बिल्कुल चला फिरा नहीं जाता ?"

"बस सौ दो सौ गज़ बैसाखी के सहारे उछल कर चल लेते हैं।"

"मैं उनसे मिलना चाहूँगा।" थानेदार सा'ब का विद्यार्थी जीवन का पुस्तक-प्रेम हरा हो आया। पर शीघ्र ही उन्हें ध्यान हुआ कि वे थानेदार हैं। और सँभल गये। बोले—"कभी कारिन्दा सा'ब के यहाँ आयेंगे, तो बुलायेंगे। वहाँ तक तो वे आ सकेंगे न ?"

"हाँ, प्रयत्न करने पर। दुर्बल बहुत हैं। प्रत्येक समय कहते रहते हैं कि बस मरने के लिए ही तो अपनी जन्मभूमि में आया हूँ।"

"ऐसे होनहार को परमात्मा ने क्या किया ?" द्रवित होते हुए माँ ने पूछा—"उसकी माँ तो नहीं है ?"

"नहीं।"

"हाँ, यह अच्छा है, बहुत अच्छा है।" और उन्होंने आदेश्वर की माँ को उठालेने के लिए परमात्मा को धन्यवाद दिया।

"तुझे मालूम है कि यह गाँव में कैसा आन्दोलन चल रहा है ?"

रूपमती मुस्काई; बोली—"गाँव में जो पहले होता था, वह भी मुझे ज्ञात होता था और आज भी जो हो रहा है वह भी थोड़ा-बहुत मुझे ज्ञात है।"

थानेदार ने थानेदार बनकर कहा—"तो फिर सच-सच बता कि बात क्या है ? इस अन्दोलन का नेता कौन है ?"

रूपमती गम्भीर हो गई। बोली—"बाबू जी, पहले भी कभी झूठ नहीं बोला और आज भी नहीं बोलूँगी।"

थानेदार ने आशामय नेत्रों से उसकी ओर देखा।

रूपमती ने कहा—"बाबू जी, जो सच है, वह सच ही है। आपने सब कुछ किया है। रामसरन ने अपने पिता का अपमान करनेवाले को दण्ड दिया।

और समय होता तो वह पूजा जाता, आज समय है कि उसपर हत्या का अभियोग आप जैसे बाल-बच्चेवाले, सच्चे और धर्मात्मा मनुष्य-द्वारा लगाया गया है।"

वह रुकी और थानेदार के चेहरे पर दृष्टि डाली। उनकी माँ उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रही थीं। उनकी दृष्टि प्रश्न कर रही थी : बेटा ऐसा तूने क्यों किया ? थानेदार विचार-मग्न रहे।

रूपमती ने कहा—'बाबूजी, उसके युवती पत्नी है। कष्ट क्या होता है, मैं जानती हूँ। यदि हत्या का अभियोग प्रमाणित हो गया तो क्या होगा, यह भी मुझे ज्ञात है। रामसरन के प्रति अन्याय को इस प्रकार पनपते देख मुझसे नहीं रहा गया।

"मैंने लोगों से कहा—रामसरन ने वीरता का कार्य किया है। गाँव की, बहुओं की प्रतिष्ठा की रक्षा की है। जो उसके विरुद्ध झूठी गवाही देगा वह कायर है, कपूत है। जो मैंने दूसरों से कहा है वह आपसे भी कह रही हूँ। न एक शब्द कम, न एक शब्द अधिक।

'अगर इस आन्दोलन की नेता, यदि कोई है तो मैं हूँ। मैंने व्याख्यान नहीं दिया है। जो मुझसे मिलता है, उससे यह बात कह देती हूँ।"

रूपमती चुप हो गई। थानेदार और भी गम्भीर—विचारमग्न। उनकी माँ और पत्नी भय से काँप उठीं।

थानेदार ने रूपमती के तेजस्वी मुख की ओर देखा। ऐसा मुख उसका उन्होंने कभी नहीं देखा था। सत्य और प्रतिष्ठा के लिए लड़ती वीराङ्गना का वह मुख था। उनके नेत्र झपक गये।

रूपमती ने कहा—"बाबूजी, मैं आपके घर की टहलनी हूँ। यदि इस विषय में दण्डनीय हूँ तो मैं हूँ। अथवा वे लोग जो इस बहाने बेकसूरों को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

माँ ने कहा—"चित्तरंजन !"

थानेदार साहब ने दृष्टि उठाकर माँ की ओर देखा। माता पुत्र के नयन मिले। माता के नेत्रों ने विनती की: 'बेटा, इसमें से निकल आ। ऐसा काम

तूने क्यों किया ?'

उस करुण विनती का सामना वे न कर सके। उठ कर वहाँ से चले गये। सोचते-सोचते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह भाव रूपमती को आदेश्वर से प्राप्त हुए हैं। और इस आन्दोलन का नेता वास्तव में आदेश्वर है। पर वह अपाहिज, मरणासन्न है।

यदि यह सब बातें उनकी माँ और पत्नी से सम्मुख न हुई होतीं तो इनका विशेष प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। पर माँ की वह दृष्टि। और वे हिल गये। एक अमंगल भावना उन पर छा गई। अकेले रहना उन्हें कष्ट-प्रद हो गया। वे बाहर निकलकर थाने में पहुँचे। देखा, एक चारपाई पर हरिनाथ बैठा है।

"अरे हरिनाथ है क्या ?"

हरिनाथ उठ कर खड़ा हो गया। मन में कहा—यह पुलिस के मनुष्य मित्र हैं! क्या तनिक देर पहले निकलकर नहीं आ सकते थे ? व्यर्थ मुझे दो घण्टे बैठाये रक्खा। इस व्यवहार के वास्तविक अर्थ से वह अनभिज्ञ न था।

उसने उन्हें प्रणाम किया।

"बैठो, कहो कारिन्दा सा'ब प्रसन्न तो हैं न ?"

"आपकी दया है।"

"कैसे कष्ट किया ?"

हरिनाथ के ऊपर यह नवीन भार आ पड़ा। वह चकित हो गया। उससे कहा गया था कि थानेदार सा'ब ने उसे बुलाया है। वह जानता था कि वे उसे कष्ट न देंगे। पर सिपाहियों के कहने पर उसे आना पड़ा। उसे लगा कि इस समय उन लोगों के विरुद्ध दो शब्द कहने का अवसर है।

बोला—"आपके सिपाहियों ने ही कहा कि आपने बुलाया है। मैं...।"

वह आगे कहने जा ही रहा था कि थानेदार सा'ब बोल उठे—"हाँ, ठीक है। कहिये आपके गाँव का क्या-हाल चाल है, कारिन्दा सा'ब ने कहलाया था कि गाँव में कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा है !"

हरिनाथ को बिना-माँगे अवसर मिल गया। बोला—"हाँ षड्यंत्र साधारण नहीं भीषण जान पड़ता है।"

"ऐसा ?"

"हाँ, गाँव के कुछ लोग···।"

"क्या ?"

"पुलिस के गवाहों को धमकाकर फोड़ लेने की तैयारी कर रहे हैं।"

"इन लोगों के नाम बता सकते हो ?"

"क्यों नहीं ? पहले तो रामसरन का भाई रामविलास, फिर वह लँगड़ा आदेश्वर···।"

"हुँ।"

"तुम लोगों के वहाँ रहते, ऐसा हो यह तो ठीक नहीं है।"

"हम लोग····।"

हरिनाथ वाक्य प्रारम्भ ही कर पाया था कि भीतर से चित्तरंजन बाबू के पुत्र ने बाबूजी का माँ-द्वारा बुलाये जाने का सन्देश दिया।

और वे बिना हरिनाथ से एक शब्द कहे भीतर चले गये। हरिनाथ ने समझा कि अब वह और दो घण्टे के लिए बँध गया। इतनी देर में रात हो जायगी। जिसका प्रायः प्रत्येक व्यक्ति वैरी है, उसके लिए अँधेरे में एक कोस बहुत लम्बा मार्ग है। इस कल्पना से वह भयभीत हो गया।

थानेदार ने देखा कि रूपमती वैसी ही बैठी है। पूछा—"और क्या बात है ?"

रूपमती ने पूछा—"बाबूजी, मुझे हवालात में रक्खेंगे कि मैं जाऊँ, फिर अँधेरा हो जायगा ?"

माँ ने पुत्र की ओर देखा।

पुत्र ने कहा—"खवासिन, तुम्हें हवालात में रखने से यह आन्दोलन रुकेगा नहीं, नहीं तो मैं वह भी करता। तुम जा सकती हो। पर ध्यान रखना कि सरकारी कामों में बाधा डालना ठीक नहीं होता।"

"बाबूजी, यह बाधा डालना नहीं है, उन्हें सच्चा और दृढ़ बनाना है।"

चित्तरंजन समझ गये कि यह उसके मुख से आदेश्वर बोल रहा है। मन में कहा कि खूब पढ़ाया है। बोले—"तुम जा सकती हो पर अपने आदेश्वर बाबू से कहना कि जो कुछ वे कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है, वे विपत्ति में पड़ सकते हैं।"

"जो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, उसके लिए और कौन-सी विपत्ति होगी, बाबूजी ?"

"जान पड़ता है तू अब बातें करने में बहुत चतुर हो गई है। अच्छा इतना कह देना कि एक दिन मेरी उनकी भेंट होगी। तू अब जा सकती है।"

रूपमती थानेदार-माता और थानेदार-पत्नी के चरण छू, आशीष लेकर चल पड़ी। और चित्तरंजन हरिनाथ की ओर चले। पर बीच में ही उनके मुंशी ने कुछ आवश्यक काग़ज़ों पर ध्यान देने के लिए उन्हें बुला लिया और हरिनाथ को लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी।

इसी बीच रामविलास ने थाने में प्रवेश किया। 'दिवान जी' रहीम-बख्श सामने ही भूमि पर बैठे हुक्का पी रहे थे। हरिनाथ की चालबाज़ी और उसके प्रति थानेदार सा'ब का व्यवहार देख वह हवा का रुख समझ गये थे। उन्होंने उठ कर दूर ही उसे रोक लिया।

बोले —"थानेदार सा'ब के पास जाने की जरूरत नहीं है। उन्हें हमने समझा दिया है। हाँ, थोड़ा भूसा उनके लिए भिजवा देना और देखना हमें भूल न जाना।"

रामविलास ने दृष्टि और मुख-मुद्रा से उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। थाने आकर इतना सस्ता छूट जाना उसके लिए बहुत था। पुलिस से उसका यह पहला सम्पर्क था। शरीर बलशाली होने पर भी उसका हृदय काँप रहा था।

इतनी शीघ्र छुट्टी पाकर वह शीघ्रता से लौट चला; तभी थानेदार सा'ब की दृष्टि उस पर पड़ गई। उसके गठे शरीर की प्रशंसा उनके मन में आई। विचार उठा कि यह जवान तो पुलिस के योग्य है।

"कौन है वह ?"

तभी एक सिपाही बुलाने रामविलास के पीछे दौड़ा।

"चलो तुम्हें थानेदार सा'ब बुलाते हैं।"

रामविलास को लगा कि गई विपत्ति लौट आई। पर यहाँ जो कुछ पड़ेगा, उसका सामना तो उसी को करना होगा। मौत और पुलिस के सम्मुख कोई दूसरा सहायक नहीं हो सकता। न मौत बाँटी जा सकती है, न अपराध।

सिर से पैर तक थानेदार ने रामविलास को देखा।

"क्या नाम है तेरा?"

"रामविलास।"

"रामसरन का भाई है?"

"जी।"

"बड़ा?"

"जी।"

हरिनाथ को दिखाकर पूछा—"उन्हें पहिचानते हो?"

"हाँ, गाँव के हरिनाथ दादा को कौन नहीं पहिचानेगा?"

"ये तुम्हारी बड़ी शिकायत करते हैं।"

"बाबू, ये बड़े आदमी हैं, जिसे जो चाहें कह सकते हैं, जो चाहें कर सकते हैं।"

थानेदार ने पुनः रामविलास को देखा। रामसरन बलिष्ठ हो सकता है पर सुन्दर नहीं। इसका गठा शरीर।

"गाँव जा रहा है?"

"जी"

"कैसे आया था?"

"बुलाया था।"

"अच्छा जा, हाँ, इन अपने दादा को भी लेते जाओ। रात हो जायगी तो इन्हें डर लगेगा।"

उन्होंने हरिनाथ के निकट आकर कहा—"इस जवान के साथ चले

जाइए। रात हो जायगी तो डरियेगा न ?"

हरिनाथ तत्क्षण उठकर खड़ा हो गया। छुट्टी मिली यह सौभाग्य था।

"मैं आपसे और बातें करना चाहता था।"

हरिनाथ का हृदय बैठ गया।

"फिर किसी दिन सही।"

तब हरिनाथ और रामविलास गाँव को लौटे। साथी विचित्र थे। हरिनाथ रामविलास के साथ की अपेक्षा अकेला आना स्वीकार करता। पर थानेदार सा'ब ने जब कह दिया है तो...।

उसने सोचा कि चाहे कुछ भी हो, मार्ग में वह उसका खून नहीं कर सकता। क्योंकि इतने व्यक्तियों ने दोनों को साथ देखा है। ऐसा करने पर वह तुरन्त पकड़ा जायगा।

मार्ग में हरिनाथ ने साहस कर पूछा—"क्यों रामविलास, कैसे आये थे ?"

"थानेदार सा'ब को कुछ भूसा चाहिए था, उसी के लिए बुलाया था।"

हरिनाथ को इस वाक्य से महान कष्ट हुआ। उसके समस्त परिश्रम का फल यही निकला ! वह पुलिस से, थानेदार से असन्तुष्ट हो गया। जो लोग उसका तनिक सा काम नहीं कर सकते, वे क्या खाक शासन करेंगे। उसने परिणाम निकाला कि निकट भविष्य में पुलिस की शक्ति क्षीण हो जायगी। ऐसे निकम्मे विभाग की शक्ति जितनी क्षीण हो जाय, उतनी ही अच्छी। कोई शरीफ़ज़ादा अब उस पर विश्वास न करेगा।

संगीद्वय में विशेष वार्तालाप की सुविधा न थी। हरिनाथ सम्भाव्य आशंका से काँपते और रामविलास अपने सौभाग्य से उल्लसित गाँव को लौट चले।

[६]

रामसरन के महत्व की चर्चा एक रोचक विषय बन गई। नर नारियों में वैजंती के प्रति पर्याप्त रुचि उत्पन्न हो गई। इस घटना को जिस नवीन दृष्टिकोण से देखा जा रहा था वह दृष्टिकोण ग्राम-निवासी बहुत दिनों से भूल

चुके थे। वे केवल रहते जाते थे, सहते जाते थे।

वकील उनके सहायक थे; पर इस सहायता का मूल्य उनकी पहुँच के बाहर था और यह सहायता भी सदा ईमानदार की सहायता न थी।

समाज-व्यवस्था के आधार सत्य मानों पर स्थित थे, पर जीवन के बहिरंग को उनके साथ मिलाने का प्रयत्न न था। गलती से यह मान लिया गया था कि न्यायालय न्याय के नहीं झूठ के स्थान हैं। जो कभी झूठ न बोला हो उसे भी न्यायालय न्यायाधीश के सम्मुख झूठ बोलने में संकुचित न होना चाहिए। यहाँ झूठ बोलना पाप नहीं है।

न्याय-नीति और भारतीय समाज के आदर्शों में सहयोग न होने के कारण यह अवस्था आ गई है। पर स्वस्थ समाज इस पर खड़ा नहीं हो सकता। न्याय-नीति को समाज-आदर्श की नीति पर कसना होगा; और जो समाज के आदर्श के लिए शुभ है, वह अन्याययुक्त नहीं होना चाहिए।

रामशरन के मुकदमे के विषय में जो धारणा और जो भावना गाँव में फैल रही थी, वह अस्पष्ट रूप से ऐसी ही थी। इस भावना के स्थूल केन्द्र प्रत्यक्ष ही वैजंती और रामावतार बन गये। पुरुषों की सहानुभूति रामावतार की ओर नारियों की वैजंती की ओर झुक गई। वैजंती को महत्त्व प्राप्त हो गया। अब विचित्र बहाने लेकर पास-पड़ोस की नारियाँ उसे देखने आने लगीं।

ऐसे रामशरन की बहू कैसी है। यह एक पड़ोसिन की दृष्टि दूसरी से कहती, और फिर दोनों जनी गगरे उठा उस ओर के कुँवें पर जल भरने चल पड़तीं। मार्ग में वैजंती का घर पड़ता था वहाँ झाँकती चलतीं और बुढ़िया बुवा अथवा सहदेई से बोलने के बहाने भीतर आ जातीं।

देखतीं कि वैजंती साधारण नारी की भाँति बैलों के लिए कुट्टी काट रही है। धूलि से भरे मुख पर पसीना बहने से धारियाँ पड़ गई हैं। वह कार्यरत गँड़ासा चलाये जा रही है। अथवा वे देखतीं कि वह अनाज फटक रही है और धूलि उसके ऊपर उड़-उड़कर पड़ रही है। अथवा वह पीसती होती। पसीने से उसका शरीर सराबोर होता। एक बालक उसकी जाँघ पर शीश रखकर सोता होता, जैसे कि उसी का हो। इस प्रकार का व्यसन रामाधीन के

छोटे लड़के को था।

जो आती वह उसे परिश्रम में जुटी पाती। जैसे अपने महत्व का भार सँभालने के लिए उसने परिश्रम को सहयोगी बना लिया हो। वे पार्वती बुवा से बात करतीं और वैजंती की ओर देखती रहतीं। सहदेई के साथ अमुक की पतोहू और सास के झगड़े की आलोचना होती और बीच में दृष्टि वैजंती पर जा लगती। सहदेई कहती, छोटा बच्चा इससे इतना हिल गया है कि पीछा ही नहीं छोड़ता।

इन नारियों की दृष्टि में वैजंती का महत्व और भी बढ़ जाता। उन्हें लगता कि वैजंती बलिदान है। पति हवालात में चक्की पीसता होगा, और वह यहाँ पीसती है।

वैजंती को घर में व्यर्थ, बेकार बैठे जैसे किसी ने पाया ही नहीं और यह समाचार शीघ्र ही गाँव के नारी समाज में प्रचारित हो गया। जहाँ दशमुख हों, विषय एक हो, वहाँ विषय की कुशल नहीं और वही यहां भी हुआ।

सन्ध्या समय खेतों की ओर जाते समय एक ने कहा—"देखा नहीं, वैजंती से जेठानियाँ कितना काम कराती हैं।"

"यह बुढ़िया बुवा कौन सी कम है। उसे तो कुछ सोचना चाहिए।"

"मैंने उसे जब देखा पसीने से तर।"

"बहिन सच तो यह है कि अपने आदमी के समान आदर और देखरेख और कोई नहीं कर सकता। और बहुएँ चारा छूतीं नहीं; कुट्टी काटना तो दूर।"

"रामसरन नहीं है इसीसे सब उसे करना पड़ता है।"

"बहू है सीधी। हँसती-हँसती सब कर लेती है।"

"बिलकुल देवी है। रूपमती ने ठीक ही कहा था उस दिन—ऐसी बहू बड़े भाग से मिलती है।"

"मैं कहती हूँ, रामू की माँ," एक युवती बोली—"रामसरन को कुछ नहीं होगा। ऐसी सीधी बहू के भाग से वह छूट आयेगा।"

"परमात्मा करें ऐसा ही हो।" वृद्धा ने कहा। उसे भाग्य की अनिष्ट करने की शक्ति पर, लाभ पहुँचाने की शक्ति से, अधिक विश्वास था।

इस सब का यह फल हुआ कि सहदेई, पार्वती और कुछ अंशों में किसोरी की अपकीर्ति गाँव में फैल चली। ये वैजंती को कष्ट देती हैं; उसे घर की टहलनी बना रक्खा है; समानता का भाई है, उसका तनिक भी ध्यान नहीं।

जो बात वायु में गई, वह हाथ से गई। किन हाथों किन कानों वह पड़ेगी, कौन कह सकता है।

पार्वती बुवा से यह आलोचना छिपी न रही। सुनते ही वे आग हो गईं। भाई की गृहस्थी को इस प्रकार की आलोचनाओं से ऊपर रखने के लिए ही वे अपना अस्तित्व समझती थीं। बड़ी बूढ़ी के अभाव में भ्रातृ-परिवार की नाक बनी रहे इसीलिए उनका आगमन था। अब जो अवाञ्छनीय था वह उनके नयनों के सम्मुख हो रहा है। यह वे कैसे सहन करतीं।

उन्होंने तर्क किया कि यह सब सूचना इन बाहरी व्यक्तियों को कैसे मिल गई? वैजंती से इतना काम लिया जाता है! उनके मस्तिष्क में अब तक काम लिये जाने की सम्भावना नहीं आई थी। वे सन्तुष्ट थीं कि वैजंती काम करती है। पर अब सुनकर पता लगा कि उससे काम लिया जाता है।

वैजंती से काम लिये जाने की शब्द-योजना में जो वैजंती के प्रति एक निम्न भावना थी, उसमें उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ। और उन्होंने सोचा—वैजंती से इतना काम क्यों लिया जाता है, पड़ोसियों को इसका सपना थोड़े ही आया होगा। वैजंती ने कहा होगा तभी तो ज्ञात हुआ और वे वैजंती पर क्रुद्ध हो गईं।

घर की बात कैसी भी हो उसे बाहरवालों से कहने की आवश्यकता? पता नहीं बड़े-बूढ़े किस प्रकार अपनी लाज ढाँपे समय-यापन कर रहे हैं। इस मूर्खा ने इतने प्रतिष्ठित परिवार की मर्जाद धूलि में मिला दी। उसे यदि काम अधिक लगा तो घर में क्यों नहीं कहा? बाहर कहने की क्या आवश्यकता थी।

वे धधकती-फुफकारती घर में प्रविष्ट हुईं। देखा तो नयनों के सम्मुख

ही बैठी है। हरिसुन्दर को कंधे पर लादे, तीन और बच्चों को इधर-उधर लुढ़काये हँस रही है। खेल रही है।

यही तो इससे अधिक काम लिया जाता है। मस्त बैठी खेल रही है और गाँव भर में कहती फिरती है कि मैं काम करती मरी जा रही हूँ।

उन्होंने लाल नेत्रों से उसकी ओर देखा। उनकी प्रतिष्ठा के साथ खिल-वाड़ साधारण बात न थी।

"रामसरन की बहू!" उन्होंने तेज़ स्वर से पुकारा।

वैजंती ने अपने वस्त्र ठीक करके, हरिसुन्दर को कंधे पर से उतारते हुए कहा—"क्या बुवा जी?"

बुवाजी क्रोध में भरी रहीं। मुख से शब्द न निकले। क्या कहें ऐसी निर्लज्जा से, जो अपनी लज्जा अलज्जा में भेद नहीं समझती। अपनी सास-जेठानियों को गाँव में बदनाम करती है, और फिर इस प्रकार सीधी बन कर बैठती है कि जैसे कुछ जानती ही न हो।

बुवाजी की मुद्रा देख कर वह सहम गई। बच्चों को अपने ऊपर से हटा दिया, उठकर खड़ी हो गई।

"हम लोग तुझे कौन दुःख दिये डालते हैं?"

वैजंती इस प्रश्न का अर्थ नहीं समझी।

बोली—"कुछ तो नहीं बुवाजी।"

"फिर तू गाँव में झूठा तूमार क्यों बाँधती फिरती है?"

"मैं?" वैजंती ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ! यदि तू नहीं तो कौन?"

वैजंती चुप रही। उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

"अब बोलेगी नहीं!"

"क्या बोलूँ?"

"यही कि गाँव भर में जो हमारी बदनामी हो रही है, वह……।"

वैजंती के लिए पहेली अनबूझ थी।

"जिसे देखो वही कहता है कि बुवा और जेठानियाँ रामसरन की बहू

को क्षण भर भी विश्राम नहीं लेने देतीं।"

"मैंने किसी से नहीं कहा। मैं काम करती हूँ तो किसी के कहने से नहीं करती। मेरा काम है, करती हूँ। किसी को उससे मतलब ?"

बुवाजी को लगा कि यह काम करती है, किसी के कहने से नहीं, अपने मन से। यह उनके शासनाधिकार के विरुद्ध विद्रोह नहीं तो क्या है ? जो इस प्रकार बोल सकती है, वह गाँव भर में उनकी बदनामी भी उड़ा सकती है।

उन्होंने निश्चय किया कि अब तक तू ने अपने मन से किया है पर अब तुझे दूसरों का कहा करना होगा।

इसी के साथ उनके मन में एक भावना उठी, जिसे व्यक्त करते वे परम लज्जित होतीं। उन्होंने इच्छा की कि रामसरन को यदि लम्बी सज़ा हो जाय तो कितना अच्छा हो। उस समय वे इस बहू की सब ऐंठ और इसका स्वामिनीत्व झाड़कर ठीक कर देंगी।

बोलीं—"तुझे बातें बनाना बहुत आता है। यदि मेरी बहू होती तो मैं ऐसी जबान पर अंगार रख देती।"

बात आगे बढ़ गई। वैजंती को लगा कि बुवा जी सीमा से बढ़ रही हैं। कुछ भी हो वह अपने पति के पृथक भाग की स्वामिनी है। ससुर के साथ सम्मिलित है यह उसकी इच्छा है। गृहस्वामिनी को इस प्रकार के कुवाक्य बोलने वाली यह कौन होती है ? पर उसने मौन रक्खा। जी में उठा—ऐसी मन में थी तभी तो तुम्हारे बहू नहीं हुई।

उसने दृष्टि नीची कर ली। बालक दोनों की ओर अबूझ दृष्टि से देखते रहे।

"खड़ी खड़ी मेरी ओर क्या देख रही है। खायेगी क्या मुझे ? जा अदहन चढ़ा दे। जब देखो, दिन भर खेल ही खेल।"

वे क्षण चुप रहीं—"और तेरे इन लच्छनों की बात तो मैं आज रामावतार से कहूँगी। ऐसी बहू के घर में रहते क्या नाक बचानी सम्भव है।"

वैजंती तिलमिला गई। इसके कहने से क्या मैं अदहन चढ़ाऊँगी।

किसोरी को पुकार कर बोली—"जेठानी बुवाजी अभी से अदहन चढ़ाने को कह रही हैं। मैं बैलों को देखलूँ, तुम चढ़ा दो।"

किसोरी ने सूर्य की ओर देखा। अभी से अदहन! उसने सुन लिया पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

बुवाजी को अपनी आज्ञा का निरादर अनुभव हुआ। वे बोलीं—"नहीं बड़ी बहू, यही अदहन चढ़ायेगी।" फिर बोलीं—"रानी बनी फिरती है। स्वयं दूसरों पर हुकुम चलाती है, और गाँव भर कहता है कि रामावतार की बहिन और बहुएं रामसरन की बहू को काम करा-कराकर मारे डाल रही हैं। नहीं बहू, यही चढ़ायेगी अदहन, तू नहीं।"

बैजंती के जी में आया कि रोऊँ; आँसू आने को हुए। फिर विचारा कि इस रोने से लाभ क्या होगा? अपने को कष्ट देना है। वह सचमुच काम करती है, यदि कोई कहता है तो झूठ क्या कहता है?

अब तक अपने कुट्टी काटने पर उसका ध्यान नहीं गया था। कुट्टी काटना उसे अच्छा लगता था, इसलिए काटती थी। पर अब उसे लगा कि घर में वही नारी है जो कुट्टी काटती है। क्या उसी के ज़िम्मे यह काम लिखा है। जेठानी है उसके भी तो बैल हैं। वह क्यों नहीं काटती। और फिर भावना दृढ़ हो गई; कोई कहता है तो क्या झूठ कहता है।

वह रसोई की ओर न जाकर पशुओं की ओर गई। बुवा के जी में आया कि वह उसे घसीट कर रसोई में ले जायें और बलात् अदहन चढ़वायें, पर बुद्धिमानी की जो ऐसा करना उन्होंने अनुचित समझा। पर बहू के इस व्यवहार की बात वे रामावतार से कहेंगी अवश्य। उनका इतना बड़ा अपमान!

बैजंती पशुशाला का एक चक्कर लगाकर दाल बिनने को ले बैठी। बुवा जी अपने लाल, विवशता के अश्रु भरे नेत्रों से उसकी ओर देखती रहीं और अपने में कीलित सर्पिणी की भाँति धधकती रहीं।

किसोरी बुवा जी की यह दशा देख रही थी और देवरानी-बुवा-कलह में आनन्द ले रही थी। बालक अपने दूसरे खेल में लग गये और शीघ्र ही

आपस में मार-पीट कर बैठे।

एक रोया और बुवा जी ने चिल्लाकर तीनों-चारों को पीट दिया।

[७]

उपर्युक्त काण्ड को हुए घण्टा भर भी न हुआ होगा कि बाहर से किसी ने पुकारा—"रामविलास।"

बुवा जी ने बाहर निकलते हुए पूछा—"कौन है, रामविलास नहीं है।"

पर जब वह बाहर निकल आईं और पुकारने वालों की सूरतें देखीं तो सन्न रह गईं। देखे—पुलिस के दो सिपाही और हरिनाथ। उनका हृदय काँप उठा।

एक सिपाही ने पूछा—"रामविलास है?"

"नहीं भैया, वह तो खेत पर गया है।"

तीनों जने वहाँ से चले गये। बुवा काँपती भीतर गईं। उनका उतरा मुख किशोरी ने देखा; बैजंती ने भी।

"कौन था बुवा जी?" किसोरी ने पूछा।

"मैं तो पहले ही समझती थी कि आज का दिन कुशल से निकल जाय तो बहुत जानो, पर निकलता मालूम नहीं होता। छोटी बहू ने जो कलह बोया है वह न जाने क्या क्या करेगा। हे भगवान्।"

वे बेहद घबरा गईं।

"क्या हुआ बुआ जी? कौन था?"

"क्या बताऊँ बहू?"

"क्यों?"

"पुलिस थी। रामविलास की खोज में है। यहाँ नहीं मिला तो अब उसके पीछे खेत पर गई है। साथ हरिनाथ था।"

पूरी बात सुनने की सामर्थ्य किसोरी में न थी। पति के लिए पुलिस के आगमन का समाचार सुनते ही वह अधमरी हो गई। बेहाल होकर भूमि पर लेट गई।

"घर में कोई कोई कुलच्छनी ऐसी होती है जो अपनों को खाती है और

दूसरों को भी। रामसरन की बहू ने जो विष-बेलि बोई है, उसका फल परिवार चख रहा है। जान पड़ता है अभी बहुत चखना है। जाने कैसा भाग्य लेकर इस घर आई है।"

पहला धक्का समाप्त होने पर किसोरी ने सोचा :—हरिनाथ उसके साथ था। उसने अवश्य ही उस रात की मार का बदला लेने के लिए यह षड्यंत्र रचा है। पता नहीं उन्होंने मारा क्यों ? दस पाँच सेर गेहूँ ले जाना चाहता था, ले जाने क्यों न दिया ? जेठ जी ने भी ले जाने दिया। उनका हितू बना रहता है। आड़े समय काम आता है। एक तिहाई दिलवा ही दिया।

उसे लगा कि रामविलास में व्यावहारिक बुद्धि नहीं है। इसी बुद्धि से क्या वह संसार चलायेंगे। उनका क्या, ये तो जेल छोटे भाई की भाँति जा बैठेंगे। यहाँ जलूँगी तो मैं।

रामविलास का अपराध क्या ? अभी पिछले क्षण तक वह रामविलास के इस कार्य को प्रशंसा की दृष्टि से देख रही थी। पर ज्योंही इस कार्य को वह एक बुरे फल से जोड़ पाई, त्यों ही वह बुरा हो गया। पर रामबिलास उसकी दृष्टि में अधिक समय तक अपराधी न रह सका। बुवा का वाक्य उसके सम्मुख मूर्तिमान हो गया।

घर में ऐसा कोई होता है, जिसके भाग्य से सब को कष्ट भोगना होता है। किसोरी को दृढ़ विश्वास हो गया कि उस घर में ऐसा व्यक्ति उपस्थित है। जो कष्ट में है, वही संसार के लिए सब से बड़ा अभागा है, और इस घर में वैजंती सबसे अधिक कष्ट में थी।

उसने अपने अभाग्य के कारण पति को हवालात में बन्द करवा दिया है। अब उसके साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहती है ?

उसे विश्वास हो गया कि उसने जानबूझ कर अपने पति को हवालात भेज दिया है। तभी तो दिन भर हँसती रहती है। उसका सुख जब नहीं देखा गया तो उसने रामविलास को भी उसी स्थान पर भेजने की व्यवस्था की है।

इस विचार-धारा के फल-स्वरूप वह वैजंती के प्रति अत्यन्त असहिष्णु

हो गई। यदि वह सब कुछ करने के लिए स्वतन्त्र और समर्थ होती तो इस समय बिना हिचके वैजंती की हत्या कर देती।

उसने वैजंती की ओर आग्नेय नेत्रों से देखा।

"इसी कलमुँही के भाग से यह सब हो रहा है।" बुवा जी ने उसे सुनाकर कहा।

थाली की दाल वैजंती की आँखों से अदृश्य हो गई। जेठ कितने अच्छे लगते हैं। उनके विषय में कभी कोई अकल्याण का भाव मन में आया हो तो वह अपराधिनी है। पर निर्दोषता यह अपराध उस पर मढ़ा जा रहा है।

पर वास्तविक निर्दोषता निर्दोष होने में नहीं है। निर्दोष होने पर भी व्यक्ति दोषी होता है, दण्ड भोगता है। अपराध जटिल विषय है। उसकी जटिलता अभी मनुष्य की समझ में पूर्णतया नहीं आई है। पर एक दिन अन्य समस्याओं की भाँति यह भी सरल हो जायगा और तब किसोरी वैजंती को दोषी दीखने पर भी निर्दोष मान सकेगी। पर इस समय तो डाइन है जो अपने पति को गृहनिर्वासन का दण्ड दे उसके पति को भी उसी स्थिति में लाना चाहती है।

जब क्रोध है तो उफान होगा ही और जिह्वा है तो शब्द होंगे ही।

किसोरी के मुख से निकला—"जिस कलमुँही ने मेरा बुरा चेता हो, उसे कीड़े पड़ें, वह राँड़ हो जाय!"

वैजंती यह मानते हुए भी कि यह सब उसके लिए है चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही। थाली निश्चल सामने पड़ी रही।'

"घबरा नहीं बहू," मैं आज भैया से कहकर इसका निर्णय करा लूँगी। ऐसी डायन को यदि ठीक दण्ड नहीं दिया तो पता नहीं कि वह आगे क्या क्या करेगी? अपना घर बालबच्चों का घर है।"

बुवाजी ने जो संकेत किया उससे वैजंती काँप उठी। किसोरी भी काँप उठी। यदि वास्तव में वैजंती डायन है, तो क्या पता कब वह उसके हरिसुंदर का कलेजा निकाल कर खा जाय। उसने निश्चय किया कि भविष्य में वह हरिसुन्दर को उसके निकट न जाने देगी। पर वह रहती तो इस डायन के

साथ एक ही घर में है। उसके कुकृत्यों से वह कैसे त्राण पा सकती है ?

अब तक का जितना पारस्परिक सद्भाव और सहयोग देवरानी-जेठानी में था वह सब भुला दिया गया। पुत्र और पति की ममता की ऐंठन ने सरला वैजंती को डायन के रूप में परिवर्तित कर दिया।

बाहर वालों के लिए जो देवी हो रही थी, वह घर वालों के लिए डायन बन गई।

हरिसुन्दर वैजंती के निकट नहीं पर पास ही खेलता रहा। किसोरी ने कहा—"बुवा जी हरिसुन्दर को वहाँ से उठा लो न।"

बुवा जी ने लपक कर इस प्रकार बालक को वहाँ से उठाया जैसे सिंह के मुख में से बचाया हो। किसोरी ने समझा यह तो खैर हो गई, नहीं तो डायन खा ही जाती।

वैजंती के हृदय में इस व्यवहार से कटन प्रारम्भ हो गई। वह इतनी घृणित हो गई है इस घर में! बुवा जी ने और भी हद कर दी जब कि उन्होंने उसके हाथों से दाल की थाली छीन ली, और स्वयं बड़ी तत्परता से बिनने बैठ गई।

उसे विशेष दिखाई न पड़ता था; फिर भी उत्साहपूर्वक बिने चली जाती थी। और इस उत्साह में कंकड़-मिट्टी के स्थान पर छोटी छोटी दाल उठाकर थाली से बाहर फेंके जाती थी।

वैजंती अब वहाँ न बैठ सकी। जहाँ उसका इतना अपमान है वहाँ वह क्यों रहेगी। वह भिखारिणी है! किसी की दया पर वह नहीं रहेगी।

किसोरी कुछ समय तक बुवा जी का यह बिनना देखती रही। पहली दाल जब थाली से बाहर फेंकी गई तो उसे लगा कि भूल हो गई होगी। दूसरी फेंकी गई तो उसने ध्यान से बुवा जी के मुख की ओर देखा। तीसरी फेंकी गई तो उसके मुखपर एक हल्की मुस्कान आ गई, जिसे बुवा के मुख की सलवटों ने और भी बढ़ा दिया। पर इसके पश्चात् जब पाँचवी, छठी और सातवीं दाल बाहर फेंकी गई तो किसोरी के कान खड़े हुए।

इस प्रकार यदि बुवाजी घंटे भर बिनती रहीं तो सारी थाली खाली हो

जायगी। उसमें कदाचित् कंकड़ और मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा। हँसी रोककर बोली—"लाओ बुवा जी, मैं बिन लेती हूँ।"

बुवा ने सान्त्वना और संरक्षण के स्वर में कहा—"नहीं बहू, मैं अभी बिने देती हूँ। मुझे कुछ दीखता कम है, इसीसे देर हो रही है। फिर भी मैं छोटी बहू से जल्दी बिन रही हूँ। काम के साथ खेलना मुझे नहीं आता।"

इस बीच में तीन चार दालें उन्होंने उठाकर और फेंक दीं। अब किसोरी वास्तव में शंकित हो गई। बोली—'लाओ बुवा जी, तुम तब तक देख आओ, बैलों की सांँद सूख तो नहीं गई।'

पर बुवा जी थीं कि दाल बिन कर ही उठना चाहती थीं। वे दिखाना चाहती थीं कि वे भी काम कर सकती हैं।

किसोरी ने उठकर उनके हाथ से थाली ले ली।

थाली बेसन से देती हुई बुवा जी बोलीं—"एक समय था बहू, जब मैं इतनी दाल तो चुटकी बजाते बजाते बिन देती थी।"

"पुराने पानी में बड़ा दम था बुवा जी। अब वह पानी ही नहीं रहा। हम लोगों का क्या अपराध?"

और उसके मन में हलका-सा उठा : वैजंती का क्या अपराध?

बुवा बाहर गईं और किसोरी दाल बिनने बैठ गई।

दाल बिनने का काम सरल होने पर भी ऐसा नहीं कि एक आँख वहाँ रहे और एक आँख चारों ओर घूमती रहे। दाल बिनना दाल दाल से आँख लड़ाना है। किसोरी उसमें दत्तचित्त हो गई। हरिसुन्दर स्वतन्त्र हो गया।

उसने देखा काकी वहाँ नहीं है। उसे काकी बिना चैन कहाँ? अम्मा उससे खेलती हैं, पर जब उनके जी में होती है तब। यह तो काकी ही हैं कि जो उसकी इच्छा को अपनी इच्छा बना लेती हैं। जब चाहो खेल में सम्मिलित हो जाती हैं।

उसे खोजता वह काकी की कोठरी के निकट जा पहुँचा। चुपके से भीतर झाँका। उसकी टेढ़ी गर्दन, उत्सुक, हँसोड़ नयन देखकर वैजंती मुस्करा दी। फिर क्या था वह काकी की गोद में टूट पड़ा। और चिल्ला उठा।

"माँ, काकी यह रही।"

किसोरी उठी नहीं, दाल पर दृष्टि जमाये-जमाये चिल्लाई—"यहाँ आ। आया कि नहीं?"

वैजंती ने कहा—"जा रे हरिसुन्दर, मेरे पास मत आ।"

माँ-काकी के वाक्यों के फल स्वरूप वह काकी से और भी चिपक गया।

"आऊँगा, आऊँगा, तुम्हारे पास आऊँगा।"

"अम्मा मारेंगी।"

"मैं अम्मा के पास नहीं जाऊँगा।"

"तो सोयेगा कहाँ?"

"तुम्हारे पास।"

और वैजंती सब कहना-सुनना भूल उसे हृदय से लगा कर हिलाने लगी।

किसोरी ने बातें सुनीं; उसे अच्छा-सा लगा। वैजंती, नहीं! वह डायन नहीं हो सकती। पता नहीं बुवाजी कैसी बातें करती हैं।

पर तभी बुवाजी लौट आईं।

"वे रामविलास को छोड़ेंगे नहीं; ले ही जायँगे।" उन्होंने सुनाया। "फिर आये हैं, कह दिया है कि आने पर भेज दूँगी।"

"क्या हुआ बुवाजी?" किसोरी ने पूछा।

"पुलिस फिर आई थी। रामविलास मिला नहीं। थाने पर बुलाया है जाना होगा।"

किसोरी के हृदय में जो एक भावना वैजंती के प्रति सहानुभूति की उठ रही थी वह जैसे दब गई। रामविलास और पुलिस का विषय सामने से हट जाने पर वैजंती से भी जैसे इस विषय का सम्बन्ध टूट गया था। अब फिर पुलिस आई है। उसे थाने में बुलाया है।

वह रामसरन का भाई क्यों हुआ? उसे लगा कि यह वैजंती का अभाग ही है जो बार बार पुलिस को इस घर खींच लाता है, और हरिसुन्दर की रक्षा की भावना उसके हृदय में जाग पड़ी। उठी; जाकर हरिसुन्दर को वैजंती से छीन लिया। हरिसुन्दर रो उठा। वैजंती हक्की-बक्की हो गई। तनिक देर

में किसोरी में यह भाँति-भाँति के परिवर्तन कैसे हो रहे हैं ? बुवाजी उसे बकती झकती रहीं। वह अपनी कोठरी में बैठी सब शान्त सुनती रही।

लगभग आध घण्टे के बाद रामविलास कुछ चारा लेकर आया। उसे देखते ही बुवाजी उच्च स्वर से रोने लगीं।

उनका रोना सुन वह चकित रह गया। घर में वह सभी को अच्छा-बिच्छा छोड़ कर गया था, अभी तनिक देर में क्या हो गया ?

"क्या हुआ बुवा ?"

बुवा अब उससे चिपट गईं और रोना जारी रक्खा। उत्तर उन्होंने कुछ नहीं दिया। रामविलास ने पूछा—"क्या बात है ?"

बुवा और भी जोर से रोने लगीं।

"कुछ बताओ भी, किसे क्या हो गया ?" रामविलास ने वृद्धा बुवा के हाथों से अपने शरीर को छुड़ाते हुए कहा।

उसने किसोरी की ओर देखा, पाया कि उसके नेत्र भी गीले हैं। उसकी शंका बढ़ गई। इतनी देर ! इतनी महत्त्वपूर्ण बात और उससे नहीं कही जा रही है। वह क्रुद्ध हो उठा।

ज़ोर से बोला—"बात है ? कुछ मुँह से भी बोलोगी या यों ही रोती जाओगी।"

"क्या कहूँ मेरे लाल !" वृद्ध बुवाजी ने आँसू पोंछते हुए कहा—"यह अभागी हमारे घर में ऐसी आ गई है कि सारे घर को थाने में भेजकर चैन लेगी।"

"फिर वही ! बात क्या है ?"

"पहले खसम को वहाँ भेज दिया। अब जेठ को। भगवान् ऐसी का तो मुँह भी न दिखावे।"

"बुवाजी !" रामविलास ने डाँटा।

"बेटा, सिरई में लगती है तो कहती हूँ। रामावतार का बुढ़ापा इस दाढ़ी-जार की बेटी ने बिगाड़ने की सोच ली है। भगवान् ऐसी चुड़ैलों को मौत भी नहीं दे देता।"

"क्या बात है ?" उसने किसोरी से पूछा।

पुलिस का नाम सुन कर उसके हृदय में एक कम्प हो उठा था। और उत्सुकता तीव्र हो उठी थी।

"तुम्हें बुलाने सिपाही आये थे।"

"कारिन्दा के ?"

"नहीं, पुलिस के। साथ वही हरिनाथ था।" बुवाजी ने प्रेमार्द्र दृष्टि से रामविलास की ओर देखा।

रामविलास प्रथम यह समाचार सुन घबरा सा गया। उसके नयनों के सम्मुख अँधेरा छा गया। अकेले में होता तो कदाचित वह अपना सिर पकड़ कुछ समय के लिए बैठ जाता। पर यहाँ नारियों में और विशेषतया अपनी पत्नी, बुवा और रामसरन की बहू के सामने उसे दुर्बलता दर्शाना शोभा नहीं देता। वह पुरुष है; पुरुषत्व की लाज रखनी ही होगी।

विचार-धारा ने तत्क्षण, हरिनाथ, रात की मार-पीट और पुलिस को एक सूत्र में जोड़ दिया। हरिनाथ ने कदाचित् उसदिन का बदला निकालने के लिए, कोई षड्यंत्र खड़ा किया है।

एक मुस्कान और फिर सतर्कता उसके चेहरे पर दौड़ गई। पुलिस के साथ जब सम्पर्क हुआ है तो उसमें भय की बात तो होगी ही। पर यदि स्वयं बोकर वह नहीं काटेगा तो कौन काटने आयेगा। उसने चारों ओर दृष्टि डाली।

"रामसरन की बहू कहाँ है ?"

"आज वह विश्राम कर रही है।" बुवा जी ने ताने के साथ सूचना दी।

रामविलास ने उनके स्वर पर ध्यान नहीं दिया। वह घबरा गया। वह जानता था कि पशुओं की देख-रेख उस पर और वैजंती पर है। यदि वह पुलिस में गया और वैजंती बीमार पड़ गई, तो कौन उनकी ओर देखेगा। उसकी किसोरी है; उसे गँडासा देखते ही भय लगता है।

उसने चिन्तातुर हो पूछा—"क्यों क्या हुआ, ज्वर तो नहीं है ?"

बुवाजी ने मन में कहा—"भला उसे ज्वर चढ़ेगा ? यमराज तो जैसे उसे भूल गये हैं।"

रामविलास की सहानुभूति उस ओर जाने का उन्हें दुःख हुआ। उन्होंने उसकी शिकायत क्यों की? यदि न करती तो यह सहानुभूति उसे न प्राप्त होती।

अपने विषय में जेठ की वाणी सुन बैजंती कोठरी से बाहर निकल आई। रामविलास के मुख पर प्रसन्नता दौड़ गई। किसोरी ने देखा; उसका हृदय ईर्ष्या से जल उठा। उसने मुख फेर लिया।

"बहू, मैं जरा थाने तक जा रहा हूँ, पशुओं की देख-भाल लेना।"

बैजंती ने सिर झुका मौन आज्ञा ग्रहण की।

रामविलास पशुओं की ओर से निश्चिन्त हो, अपनी भविष्य-चिन्ता लिये थाने की ओर चला। किसोरी मुख में धोती भर रो उठी।

हरिसुन्दर चकित उसकी ओर देखने लगा।

सुघटनाएँ-दुर्घटनाएँ होती रहती हैं और संसार का काम चलता रहता है। वह न किसी की ओर देखने के लिए रुकता है और न किसी के कारण रुकता है। किसोरी का हृदय भर-भर आया; कटने का हो हो गया; वह रोती रही; पर घर का सब काम-काज किया हो गया। आग भी जलाई, अदहन भी दिया, दाल भी डाली।

उधर बैजंती पसीने की धारा और पशुओं के दुलार में सब कुछ भूली रही।

बुआजी कितना ही कहें पर जेठ उस पर कितना विश्वास रखते हैं, कितना उसे मानते हैं। पशु उन्हें घर में सब से प्यारे हैं। वे हरिसुन्दर के लिए भी उतना कष्ट नहीं उठाते जितना पशुओं के लिए। उन पशुओं को वे उसके अतिरिक्त और किसी के भरोसे नहीं छोड़ते। अपने स्थान और कार्यशक्ति के प्रति एक गर्व-भावना उसमें भर आई।

सन्ध्या झुके जब रामावतार बाहर से आये तो उन्हें पुलिस द्वारा रामविलास के बुलाये जाने का समाचार ज्ञात था। वे इस नवीन विपत्ति से घबरा उठे थे। यदि पुलिस रामविलास को। फँसाना चाहे तो कौन उसे रोक सकता है। उसके अभाव में वे घर पशुओं की देख-रेख के लिए दौड़े आये।

भाई को आया देख बुवा उनके निकट वैजंती की शिकायत लेकर पहुँची। बोलीं—"भैया गाँव भर में ...।"

और भैया ने ध्यान नहीं दिया कि बहिन क्या कह रही है। बिना सुने ही उत्तर दिया—"मैं सब सुन आया हूँ।"

उन्होंने जाकर पशुओं की नाँदें देखीं। उनके मुख देखे और बहू को कुट्टी ले जाकर नाँदों में डालते देखा तो उनके नयनों में आँसू आ गये।

बहिन से बोले—"रामसरन की बहू हमारी बहू नहीं बेटा है।"

बुवाजी को सुनना पड़ा। भाग्य ऐसा ही बलवान है कि जो न चाहो सुनना पड़ता है, जो न चाहो करना पड़ता है।

इस सम्बन्ध से सन्तुष्ट हो, वे लाठी ले रामविलास की खोज-खबर लेने थाने की ओर चल दिये।

उनके बुढ़ापे पर यह दूसरा प्रहार है, वे सहेंगे। जब रामसरन के पक्ष में गाँव की भावना कुछ स्पष्ट होने लगी है तब से रामावतार रामसरन में गर्व अनुभव करने लगे हैं। उसका हवालात में रहना सह्य हो आया है। पर इसी समय रामविलास का अकारण पुलिस-द्वारा बुलाया जाना वास्तव में उन पर भाग्य का प्रहार ही है।

वह वृद्ध-धूल और कंकड़-भरे कर्त्तव्य-पथ पर खेतों और घिरते अन्धकार के बीच चल दिया।

प्रियजनों के विषय में मन सर्वदा शंकाशील रहता है, उनके विषय में अमंगल-कल्पना शीघ्र ही मन में आ जाती है।

रामावतार ने रामविलास को हवालात में बन्द पाने की कल्पना की। उन्होंने यह भी कल्पना कर ली कि वे रोये हैं, कलपे हैं, पर रामविलास छूटा नहीं है, और वे अकेले घर लौट रहे हैं।

अन्धकार में कल्पनाएँ विशेष बलशाली हो जाती हैं। अपनी कल्पित असफलता पर अश्रु बहाते वे थाने की दिशा में चले जा रहे थे।

अचानक वे खड़े हो गये। कोई परिचित स्वर उनके कान में पड़ा। उन्होंने पुकारा—"हरिनाथ!"

"दादा !" रामविलास के कण्ठ ने उत्तर दिया।

रामावतार को लगा कि जाकर पुत्र को छाती से लगा लें और आँसुओं की धारा बहा दें। पर हरिनाथ की उपस्थिति ने यह भावुक प्रदर्शन रोक दिया। उन्होंने हृदय से भगवान् को धन्यवाद दिया और फिर तीनों जने साथ-साथ गाँव को वापिस आये।

हरिनाथ पराजित होकर भी, इतना कष्ट स्वयं उठाकर भी, सन्तोष अनुभव कर रहा था। उसने पिता पुत्र दोनों को कितना तंग किया है! हरिनाथ, चाहे कुछ भी हो, हरिनाथ है। साधारण में असाधारण है।

हरिनाथ के पृथक मार्ग से चले जाने के बाद रामविलास ने पूछा—"पशुओं को चारा आदि ....?"

"मैं सब देख आया हूँ। ठीक है। रामसरन की बहू ने सब कर लिया है।"

इसके बाद दोनों जने बैजंती की प्रशंसा करते घर आये। जब भोजन करने बैठे तो प्रसन्नता के उफान में रामावतार ने सब को सुनाया कि यह उनकी बहू नहीं, बेटा बैजनाथ है।

पति के सकुशल लौट आने की प्रसन्नता के कारण किसोरी को ससुर के इस वाक्य से विशेष कष्ट नहीं हुआ। बैजंती हुलस उठी, इस समय यदि रामसरन होते तो....!

बुआजी को लगा कि इस घर में उनकी ओर बोलने वाला कोई नहीं है। अब भाई की गृहस्थी को भाग्य के आसरे छोड़ अपनी ससुराल जाना ही उनके लिए श्रेयस्कर है। ऐसा इस बहू में क्या सोना जड़ा है जो बाप बेटे दोनों लट्टू हुए जा रहे हैं।

चौथा अध्याय

[१]

चित्तरंजन भगवान के चित चढ़े थे, इसलिए बी० ए० करने के बाद थानेदार हो गये। उनके पिता डिप्टी साहब के यहाँ मुहर्रिर थे, और उसी वातावरण में उनके जीवन का आधा भाग बीता था।

पर पिता की मृत्यु के बाद वे जब कॉलेज के होस्टल में चार वर्ष रहे, तो कुछ अंशों में पुरातन दफ्तरी और शासकत्वमय वातावरण से उनका सम्पर्क छूट गया। उन्हें तब ज्ञात हुआ कि डिप्टी साहब के अतिरिक्त संसार में महान और भी कुछ है।

उनके जीवन में एक समय था, जब वे डिप्टी साहब, सिकंदर और नैपोलियन की तुलना करते समय डिप्टी साहब को सर्वोच्च पद पूरी ईमानदारी के साथ दे देते थे। कारण था : डिप्टी साहब का महत्व उनके निकट प्रत्यक्ष था। जो कोई उनका परिचय देता उसे उन्हें 'डिप्टी साहब के मुहर्रिर का लड़का' कहना अनिवार्य हो जाता।

ससार में मनुष्य काम अपने लाभार्थ करता है पर काम का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि लाभ के साथ अलाभ भी उपस्थित रहता है। अंग्रेज़ों ने कॉलेजों की सृष्टि की थी भलाई के लिए, पर अन्त में यही उनके लिए समस्या बन गये। जिन्हें कल्पना में उन्होंने परम प्रशंसक चित्रित किया था वे ही उनके कटु आलोचक बनकर सामने आये।

चित्तरंजन पर इस नवीन वातावरण का प्रभाव पड़ा। पहिले उन्होंने जो कुछ सुना या पढ़ा उसपर विश्वास न किया, पर जब इन वर्णनों और कथनों के नीचे उन्होंने अंग्रेज़ों के हस्ताक्षर देखे तो उन्हें विश्वास करना ही पड़ा।

वे इस दशा तक पहुँच गये : जो यह कहते हैं वह ठीक हो सकता है; अधिक हठ करते हो तो, ठीक है भई; या अपने से इसका क्या सम्बन्ध।

डिप्टी साहब ने उसे कहीं न कहीं लगा लेने का आश्वासन दिला ही दिया है। वे अंग्रेज बच्चे हैं, जो कह दिया उससे पीछे हटने वाले नहीं; फिर उन्हें अधिक झगड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता है। अंग्रेज़ी वर्णमाला के प्रथम दो अक्षरों पर यदि उलटे क्रम से भी वह अपना अधिकार जमा सका, जो इतनी शिक्षा उसे जीवन-यापन में आवश्यकता से अधिक प्रमाणित होगी।

वे थानेदार हो गये और अब थे इस गाँव में। पर वे जैसा कॉलेज जीवन के प्रभाव से अपने को अछूता समझ रहे थे, वैसे थे नहीं। वे गाँव में शासक थे। जितने थे सब उनसे नीचे। प्रायः उनकी इच्छा ही विधान थी। फिर भी वे असन्तुष्ट थे।

भोजन के लिए और कुछ करने की राह न सूझती थी इसलिए ध्यान आने पर जीवन के सुखों को पेंशन के बाद के लिए उठा रखते थे। बहुत दुखित होते तो अपने को ही समझाते कि वास्तविक सुख तो वही है जो वे पा रहे हैं; पर इस समझाने से वे विशेष सन्तुष्ट न थे; उन्हें अपने को बार-बार समझाना होता था।

असन्तोष का कारण यह था कि इस वातावरण में उन्हें कोई पढ़ा-लिखा समझदार वार्तालाप करने को नहीं प्राप्य था। वे इतना अधिक जानते थे कि दूसरों के सम्मुख उसकी चर्चा करने पर वे ग्रामीणों में सिर हिलाने के अतिरिक्त और कोई प्रभाव न उत्पन्न कर पाते थे।

कॉलेज में वार्तालाप में अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग का अभ्यास उन्होंने जितनी सतर्कता से किया था उतनी ही सतर्कता से अब उन्हें भुलाना पड़ा था। स्कूल के शिक्षक अथवा पटवारी के सम्मुख जब वे किसी गूढ़ार्थमय अंग्रेज़ी शब्द का प्रयोग करते थे तो उन्हें उस लारी के समान अनुभव होता था जो पुल के नीचे से आते समय अपने यात्री को पुल के छत की कड़ियों से लटकता छोड़ आई हो। उन्हें लौट कर उस यात्री को लेना पड़ता था।

शासक-पद और उनका ज्ञान उन्हें दुःखदायी हो जाया करता था।

कारिन्दा साहब के पास भी अंग्रेज़ी ज्ञान की ही कमी थी। पर वे भी

कायस्थ थे इसलिए कभी-कभी एक दूसरे के यहाँ आना-जाना हो जाता था। जी बहल जाता था।

थानेदार, उनकी माँ, पत्नी और बच्चे कारिन्दा साहब के यहाँ आये। ताँगे के चलने के दो घण्टे पहले दो सिपाही समाचार और उससे एक दिन पहले एक सिपाही इस दौरे की सूचना देने आया था।

थानेदार जब सपरिवार आ रहे हैं, तो उनके स्वागत एवं मनोरञ्जन का प्रबन्ध यथासम्भव होना ही चाहिए और विशेषतया जब वे गाँव के स्वामी स्वयं कारिन्दा के यहाँ आ रहे हों। पुलिस का अस्तित्व तो प्रजा को शान्त और शिष्ट रखने मात्र के लिए है।

थानेदार की माँ में जो आदेश्वर को देखने की एक उत्सुकता थी वह इसी अवसर पर पूर्ण करने का विचार था। इसीलिए आदेश्वर और रूपमती को थानेदार साहब के आगमन के प्रथम ही बुला भेजा गया। गाँव के धन का प्रतिनिधित्व करने के लिए छदम्मी साहु पधारे। पटवारी अपने पद के कारण, हरिनाथ अपने महत्व के कारण उपस्थित हुए। गाँव की पाठशाला के शिक्षकों ने वहाँ उपस्थित होने की तीव्र अभिलाषा की पर दिन रविवार न होने से वे विवश रहे। रामाधीन भी एक ओर पटवारी और कारिन्दा के साथ-साथ पुलिस की कृपा-कोर पाने की आशा से बैठ गया।

इसके अतिरिक्त गाँव के लोग कुछ समय के लिए आते-जाते रहे। एक छोटा-सा मेला लग गया।

आदेश्वर ताँगा आने से लगभग पन्द्रह मिनिट पहले पहुँच गया। वह तो सौभाग्यवश समस्त उत्सव का प्रबन्ध छदम्मी साहु के हाथ में था नहीं तो उसे जाने कितने समय तक भूमि पर अन्य ग्रामीणों की भाँति बैठना पड़ता।

कारिन्दा के सिपाही, अपनी फटी वर्दियाँ पहने पुलिस के सिपाहियों से जैसे होड़ कर रहे थे। पर हीनता स्वीकार करने में भी वे पीछे न थे।

आदेश्वर को उछल कर आता देख उनमें एक प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई। अन्त में वह यहाँ आने को विवश किया जा सका। उन्होंने इस अवसर को उसके अपमान के लिए प्रयोग करना चाहा। कोई भी हो, यदि वह गाँव

में रहता है तो उनकी प्रजा है और प्रजाजन को शासक का शासन नतमस्तक स्वीकार करना चाहिए ।

आदेश्वर ने रूपमती के चारों ओर जो अलंघ्य दीवार खींच दी थी वही इन मित्रों के भीषण असन्तोष का कारण थी ।

साहु ने ले जाकर उसे सुतली से बिनी खाट पर बैठा दिया । उसके पास दो निवाड़ के पलंग, चार कुर्सियाँ और एक आराम-कुर्सी पड़ी थीं; कहने के लिए वे सजाई गई थीं । पलंग पर सुन्दर बिछावन और तकिया था । बीच में एक मेज़ थी, जिसकी एक टाँग छोटी होने, अथवा फर्श में गड्ढा होने की कमी को दो ठीकरियाँ लगाकर पूर्ण किया गया था । पास ही एक उगलदान और लम्बी सटक वाला हुक्का रक्खा था ।

आदेश्वर की यह आवभगत एक सिपाही को बुरी लगी । उसने आपत्ति की—"साहु, यह खाट दीवान साहब के लिए है ।" दीवान साहब का अर्थ था हेडकांस्टिबिल ।

साहु को यह बुरा लगा । उन्होंने उसकी बात पर ध्यान न दे कहार को पानी के बर्तन पुनः माँज कर चमका देने की आज्ञा दी, और स्वयं आदेश्वर की बगल में बैठकर, अपने प्रबन्ध की चर्चा प्रारम्भ की ।

उन्होंने बताया कि इस प्रकार का हुक्का आस-पास किसी गाँव में नहीं है । जब कोई बड़ा अफसर आता है तो यह उसके लिए निकाला जाता है । सैयद मुख्तारअली जब इधर थे तो वे इस हुक्के से तम्बाकू पीने के लिए बार-बार इस गाँव का दौरा किया करते थे । ऐसा प्यारा था यह उन्हें ।

आदेश्वर ने ध्यान से हुक्के की ओर देखा ।

"वे तो मुसलमान...?"

"हाँ ।"

"मुसलमान हिन्दू के लिए एक ही ..।"

"बाबू इन लोगों का धरम अधरम क्या ? वह तो छोटों के लिए है और घर के बाहर तो सभी शुद्ध हैं ।"

"पर साहु ऐसा करना...!"

"करने पर तो खिलाते-पिलाते मरे जाते हैं। प्रत्येक के लिए अलग सामान खरीदें, तो बस दो दिन में दिवाला निकाल अलग खड़े हों। हमसे हिन्दू मुसलमान कौन दो प्रकार का व्यवहार करते हैं जो हम उनके लिए...।"

आदेश्वर की दृष्टि कमरे की सजावट की ओर गई। मृत सम्राट और सम्राज्ञी का काँच-जटित चित्र सम्मुख टँगा था। शीशा यद्यपि चटक गया था, पर आक के दूध में भिगोकर चिपकाये गये टेढ़े कागज़ों की सहायता से अपने स्थान पर बना हुआ था।

उसके दोनों ओर बृटिश साम्राज्य के प्रधान मंत्रियों की भाँति ज़मींदार-राजा और पिता-पितामह के चित्र थे। सम्राट सम्राज्ञी के चित्र की अपेक्षा उनकी दशा अच्छी थी।

इसी बीच साहु किसी काम के लिए उठ गये। सिपाही ने अन्दर प्रवेश किया। देखा—बैसाखी खाट पर रक्खे आदेश्वर आराम से बैठा हुआ है। उसने तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। उस पर प्रहार करने की इच्छा हुई और इच्छा हुई कि आदेश्वर को उठाकर भूमि पर बैठा दे।

आज्ञा देनी चाही: उठकर बेंच पर बैठो, यह अफसरों के लिए है।

पर आदेश्वर जिस अधिकार और आराम के साथ उसपर बैठा है और जितनी अवहेलना उसने उसके प्रति दिखाई, उससे उसके वाक्य कण्ठ में ही रुक कर रह गये। उसकी जलन जैसे अंगार से घोट दी गई। उसके नेत्र दूसरी ओर फिर गये। वह मेज़ की टाँग को हिला उसे लँगड़ी बना, पुनः सुधार, उसके नंगे तल को स्पर्श कर मेज़पोश की आवश्यकता अनुभव करता वहाँ से चला गया।

तभी एक व्यस्तता पड़ोस में व्यक्त हुई। सिपाही बाहर दौड़ गया। उस व्यस्तता की तरंग ने आदेश्वर पर भी प्रभाव डाला। वह खाट पर सँभल कर बैठ गया। द्वार पर लोगों के जल्दी-जल्दी बोलने का स्वर सुनाई पड़ा।

शान्ति हुई और फिर नम्र स्वर उसके कानों में पहुँचे, साहु भीतर प्रवेश कर द्वार के निकट खड़े हो गये। उसके पश्चात् अपना भारी शरीर लिये चितरंजन ने प्रवेश किया। प्रथम दृष्टि उनकी हुक्के और बिछौने पर पड़ी।

उन्होंने साहु से पूछा—"क्यों साहु, आज कौन सा तमाखू मँगाया है।"

"हुजूर, लखनऊ का कडुवा और मीठा दोनों है। बनारस का भी एक तमाखू आया है, देखियेगा।"

चितरंजन ने इस आतिथ्य का धन्यवाद देने की आवश्यकता न समझी। यह उनके लिए साधारण बात थी। वे इसपर और इससे भी अधिक पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे।

जब ये दो डग और आगे बढ़े तो उनकी दृष्टि आदेश्वर पर पड़ी। वह उठ कर खड़े होने का प्रयत्न कर रहा था। इतनी आवभगत जिसकी हो; साहु को प्रतिनिधि बना लक्ष्मी जिसके सम्मुख नमन कर रही हों, मानव के हृदय में उसकी ओर से सहम प्रवेश कर जाय तो आश्चर्य नहीं। और आदेश्वर ने सब कुछ सोचकर, अधिक सत्य तो यह कि कुछ न सोचकर खड़ा हो जाना ही उचित समझा, और वह इस औचित्य को कार्यरूप में परिणत करने में प्रवृत्त हुआ।

थानेदार ने देखा। उनकी स्मरण शक्ति दुर्बल न थी। रूपमती से सम्बन्धित पढ़ा-लिखा व्यक्ति यही है, यह उन्हें तत्क्षण ज्ञात हो गया। पर एक साधारण मनुष्य की ओर ध्यान देना उन्होंने उचित न समझा। क्योंकि ऐसा करने से उस व्यक्ति को विशेष महत्व मिल जाता। उन्होंने आदेश्वर से कुछ कहने की इच्छा को रोककर पलंग पर अपना आसन ग्रहण किया।

साहु एक कुर्सी पर बैठ गये, पटवारी सा'ब दूसरी पर। कारिन्दा सा'ब ने तनिक देर से प्रवेश कर पास के दूसरे पलंग पर आसन ग्रहण किया।

पूरे ठाठ से मजलिस लग गई। चितरंजन कुछ समय अपने ही में, जैसे अपने महत्व पर ध्यान लगाये बैठे रहे। नेत्र ऊँचे किये, सम्मुख के चित्रों, दीवारों, और काली पैंतालीस कड़ियों की ओर देखा। दोनों शहतीरों की वक्रता और पौरुष पर उन्होंने ध्यान दिया, और फिर कारिन्दा सा'ब से बोले—"क्यों भई, आपके हेडमास्टर नहीं आये ?"

यह बात उन्होंने उचित समझ कर ही कही थी। प्रत्येक को अपने अधिकार के लिए लड़ना चाहिए। देश अपने अपने अधिकारों के लिए जूझते

हैं। इन थानेदार ने यदि हेडमास्टर की अनुपस्थिति को अपनी अवज्ञा समझा तो यह केवल क्षम्य ही नहीं न्यायसंगत भी था।

"शुक्र है, पाठशाला में होंगे!"

पटवारी ने थानेदार की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उत्तर दिया। यह बड़ी बात थी। ग्रामीण समाज की उपस्थिति में थानेदार जिस किसी से एक बार हँसकर बोल लिये उसका विशिष्ट स्थान बन गया। और उस स्थान की चिन्ता प्रायः सभी को थी।

"भई, बुलवाओ उन्हें। लड़के आज ही कौनसा सब पढ़ लेंगे।"

हरिनाथ शीघ्रता से उठकर एक सिपाही को मास्टर को बुलाने भेजने गया।

थानेदार सा'ब ने समझ लिया कि हरिनाथ कारिन्दा के सिपाहियों में से ही किसी को भेज सकता है। हेडमास्टर यदि उसकी अवहेलना नहीं कर सकता तो आने में देर अवश्य लगा सकता है। उन्होंने हरिनाथ को पुकारना उचित न समझ पटवारी की ओर देखा। दृष्टि पड़ते ही वह आज्ञापालन के लिए तन गये।

थानेदार ने एक गर्व अनुभव करते हुए कहा—"मास्टर को बुलाने के लिए किसी पुलिस के सिपाही को भेज दो।"

पटवारी जल्दी से उठ खड़े हुए। इतनी जल्दी कि उनकी कुर्सी ने साहु की कुर्सी को टक्कर दी, और साहु जो अनजाने साढ़े तीन टाँगों वाली कुर्सी पर बैठे थे उसकी आधी टाँग हिल जाने से डगमगा गये। वे पटवारी से भी अधिक शीघ्रता से उठ खड़े हुए। इस दृष्टि से कुर्सी की ओर देखा जैसे कि आस्तीन में साँप पा लिया हो।

सब लोग स्तम्भित हो गये। कारिन्दा ने पूछा—"क्या हुआ साहु?"

साहु उत्तर न देकर दूसरी कुर्सी पर बैठ गये। थानेदार ने कारिन्दा को सूचना दी कि कुर्सी की आधी टाँग ग़ायब है।

कारिन्दा के नेत्र लाल हो गये। इन कमबख्त सिपाहियों ने नाक में दम कर रक्खा है। तीन-तीन चार-चार रुपये तनख्वाह देते हैं, उसमें ऐसे भूत तो

मिलेंगे ही, जिन्हें ठीक से कुर्सी रखने का भी ज्ञान नहीं। उनका क्रोध जमींदार पर होता हुआ सिपाहियों पर आ गया। इस तेज़ी में उठकर वे बाहर पहुँचे।

सिपाहियों ने साश्चर्य उनकी ओर देखा। उन्होंने महान् असन्तोष दिखाते हुए पूछा—"किस गधे ने कुर्सियाँ रखी हैं?"

कोई गधा सामने न आया। जो उपस्थित थे उन्होंने अनुपस्थित नामों में से एक ले दिया। कारिन्दा सा'ब अपने को स्वस्थ करते भीतर गये। साहु पर क्रोध आया। कुर्सी हिल गई थी तो क्या हुआ। बैठे रहते। इस समय यह दिखाने की क्या आवश्यकता थी।

उनके मुख फेरते ही एक सिपाही ने कहा—'बनिये हैं गद्दी पर बैठते हैं, कुर्सी पर बैठना क्या जानें? तनिक हिल गई होगी; बस दम निकल गया। एक-एक बाबू दफ़्तरों में पड़े हैं कि उमर टूटी कुर्सियों पर निकाल दी।"

पुलिस के एक सिपाही से पूछा—"कौन से दफ्तर में नौकर थे तुम?"

"मैं नहीं, मेरे ख़ास बाप ख़ास डिबिटसन सा'ब के यहाँ ख़ास चपरासी थे।"

सिपाही ने इस व्यक्ति को ध्यान से देखा, और विशेष आदर से देखा। वह डिबिटसन सा'ब के ख़ास चपरासी का पुत्र है। डिबिटसन सा'ब ज़िले के ख़ास कलक्टर थे।

सिपाही ने जाकर पाठशाला में अपना रूप दिखाया, तो पाठशाला में खलबली मच गई। कुम्भकर्ण श्रीराम से मिलने यदि वानर-सेना में आया होता, और सीधा उनके पास चला गया होता तो वहाँ भी यही दशा होती।

बालक सभय साश्चर्य उसे देखते रहे। वह सीधा हैडमास्टर सा'ब के सम्मुख जा खड़ा हुआ। उसे देखते ही उनके प्राण सूख गये। भयभीत उसकी ओर देखा।

"थानेदार सा'ब बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मास्टर...।"

उनकी कक्षा में प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई। ऐसे अच्छे थानेदार के

दर्शनार्थ कुछ विद्यार्थी लालायित हो उठे। पर अधिकांश की प्रसन्नता हेडमास्टर के जाने पर ही निर्भर थी।

हेडमास्टर ने वाक्य बीच ही में छोड़ दिया। अपने अकेले सहायक को समस्त पाठशाला का भार सौंप, फटा कोट पहिन, चमरौधा टुटहा जूता पैरों में डाल, मोटी बेंत हाथ में ले सिपाही के आगे आगे हो लिये। वे जानते थे कि पुलिस के सिपाही किसी को अपने पीछे नहीं चलने देते।

जब तक हेडमास्टर सा'ब आयें, थानेदार की दृष्टि आदेश्वर पर पड़ी। उसके प्रति अवहेलना और उपेक्षा की सीमा प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे उसकी ओर ध्यान देने को बाध्य हुए। पर ध्यान दिया उन्होंने पुलिस के अपने ढंग से।

"वह कौन है?" उन्होंने कारिन्दा से पूछा।

"आदेश्वर है।" उन्होंने यथासम्भव अवज्ञा का प्रदर्शन किया—"आपने बुलाया था, आया है।"

अब जैसे थानेदार को सब बातें स्मरण आईं।

"तुम्हीं रूपमती के यहाँ ठहरे हो न भई? स्थान तो अच्छा टटोला है। सेवा में कोई कोर-कसर न रहती होगी।"

आदेश्वर को अच्छा नहीं लगा। पर सभा में एक ठहाका पड़ा। सिपाहियों ने भी भीतर झाँक कर देखा। कोई मनोरञ्जक बात होने जा रही है। यह सोचकर वे धीरे-धीरे भीतर आ गये और दीवार से सटकर खड़े हो गये। दोनों अफ़सरों की उपस्थिति में बैठने का साहस एकाएक वे नहीं कर सकते थे।

दरबार निस्तब्ध हो गया। सब के नेत्र थानेदार की ओर लग गये। तभी उनके लड़के ने कारिन्दा सा'ब के घर में से इस बैठक में खुलने वाले द्वार से प्रवेश कर उनके कान में कुछ कहा।

नीचे बैठे रामाधीन ने सोचा यह लड़का कितना भाग्यवान है जो थानेदार सा'ब के कान में बात कह सकता है।

और थानेदार सा'ब ने पुत्र से कहा—"अच्छा।"

पुत्र चला गया। थोड़ी देर बाद उनकी माँ ने बैठक में प्रवेश किया। उन स्थूलकाया देवी के आतंक से वायु में जैसे स्वर की तरंगें जम गईं, और वे थानेदार-माता आकर एक कुर्सी पर विराजमान हो गईं।

पटवारी, कारिन्दा, हरिनाथ सब जैसे अपने में सिकुड़ गये। आदेश्वर ने ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखा। वह नहीं समझता था कि अंग-भंग होने के कारण तमाशे की चीज़ के रूप में यहां बुलाया गया है।

पर जब थानेदार-माता की दृष्टि उसकी ओर लगी रही तो उसे यह अनुभव स्पष्ट हो चला और इस सभा से उसे घृणा-सी हो चली। जी में आया कि उठकर यहाँ से चला जाय। पर इन ग्रामीणों को तो इससे भी कहीं तीव्र अपमान नित्य सहन करने पड़ते हैं। उसमें ही कौन सुरख़ाब के पर लगे हैं।

इस तर्क-योजना से संघर्ष और बलिदान की शक्ति ग्रहण कर वह वहाँ बैठा रहा। पर उसके भीतर जो एक युद्ध हो रहा था वह उसके अंग-सञ्चालन में व्यक्त हुआ।

माँ ने आदेश्वर को देखा। मुख कितना सुन्दर है। तेज भी है। वह अच्छा थानेदार या मुहर्रिर बन सकता था। पर एक हाथ और अधूरा पैर। उसकी असहायावस्था पर उनका मातृत्व उमड़ आया।

आदेश्वर अपने भीतरी कष्ट के कारण कसमसा रहा था। माँ ने सोचा—खाट पर इस प्रकार बैठने से उसे कष्ट हो रहा है। बोलीं—"बेटा, वहाँ ठीक न बैठा जाता हो तो इधर आ जाओ।" और आरामकुर्सी की ओर उन्होंने संकेत किया।

पटवारी सा'ब काँप गये। यह आराम कुर्सी उन्होंने ख़ास तौरपर थानेदार सा'ब के लिए वहाँ बिछवायी थी।

माँ की आज्ञा पाकर आदेश्वर ने अपने अपमान में कुछ कमी अनुभव की और उठकर आरामकुर्सी की ओर चला। पटवारी ने आदेश्वर के नयन से नयन मिलाकर हाथ से संकेत किया कि उसे आराम कुर्सी पर नहीं, किसी और कुर्सी पर बैठ जाना चाहिए, पर आदेश्वर ने जैसे उसे देखा ही नहीं, और देखा भी तो उसने संकेत समझा नहीं। वह जाकर आरामकुर्सी पर बैठ

गया, और दोनों पैरों को समेट उसके ऊपर रख लिया। अब वह प्रतिष्ठित मण्डली के बिल्कुल मध्य में था।

माँ ने निकट से उसे देखा। वह क्या था ? क्या करता था ? और फिर फिर इस दुर्घटना के विषय में प्रश्न पूछे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इतनी शिष्टता से वार्तालाप करने वाला व्यक्ति उन्हें उस गाँव में प्राप्त हो गया। वे प्रसन्न हुईं। मन ही मन रूपमती के भाग्य की प्रशंसा की। और फिर वे भीतर चली गईं।

जब तक वे वहाँ रहीं, एक अस्वाभाविक संयम एकत्र जनों पर रहा। उनके जाते ही एक सन्तोष और स्वतंत्रता की साँस उस बैठक से निकलती स्पष्ट सुनाई पड़ी।

थानेदार सा'ब ने अब आदेश्वर को निकट पाया,—बिल्कुल सामने। वे उससे वार्तालाप करने को विवश हुए।

"कानपुर छोड़े कितने वर्ष हुए ?"

"यह चौथा चल रहा है।"

इसी समय मास्टर श्यामाचरण ने बैठक में अपना मोटा डंडा लिये प्रवेश किया। वे अधेड़ थे। मार्ग में उन्होंने जान लिया था कि थानेदार गाँव में दिन भर के लिए आये हैं, इसीसे उन्हें बुलाया है।

उनकी समझ में नहीं आता था कि थानेदार सा'ब को उनसे वार्तालाप में मनोरञ्जन क्यों प्राप्त होता है ? पर जब मनोरञ्जन प्राप्त होता है तो वे उसे अपना गुण समझने लगे, और जहाँ तक उनके वश में था वहाँ तक स्वयं मनोरञ्जन की सामग्री बनने का प्रयत्न करने लगे।

इसलिए अभिवादन के बाद जो कार्य हेडमास्टर सा'ब ने किया वह कुर्सी विभाग के निकट पहुँचना, और वहाँ अपना गंदा मोटा कुरूप डंडा ठीक मेज़ के बीचोबीच रखना था।

थानेदार ने प्रश्न किया—"मास्टर सा'ब यह डंडा आपके पास कितने दिन से है ?"

"उन दिनों मैं नार्मल में था। चौबीस वर्ष से ऊपर हो चले।"

"काम पड़ता है कि ख़ाली दिखाने के लिए ?"

"काम क्यों नहीं पड़ता सा'ब," उन्होंने कारिन्दा सा'ब की शंका का समाधान किया,—"शिक्षक और ताड़ना का जबतक सम्बन्ध है तबतक यह आयुध सर्वथा काम का है।"

"आप इससे ताड़ना देते हैं ?" पटवारी सा'ब ने जीभ खोली।

"जी हाँ, थानेदार सा'ब ताड़ना देते हैं सरकार के बल पर। पर मैं स्वतंत्र हूँ; ताड़ना देता हूँ अपने बल पर। इस डंडे की धूलि में करामात है पटवारी सा'ब। यह ब्रह्मा को हिला देता है। इस डंडे की धूलि खा कर कितने ही पटवारी और थानेदार हो गये, कितने ही वकील और सरिश्तेदार हो गये।"

थानेदार ने सरिश्तेदार के स को छोड़ कर रिश्तेदार को पकड़ लिया। बोले—"आपके डंडे के ज़ोर से रिश्तेदार भी हो सकते हैं ?"

"मैं कभी झूठ नहीं बोला, मैं क्या-क्या गिनाऊँ जाने कौन-कौन दार हो गये।"

थानेदार साहब अपने यमक को मास्टर सा'ब की बुद्धि पर व्यर्थ जाते देख झुँझला उठे। पर बात तो उन्हीं से करनी है। बोले—"यह तो बताइए आपका पढ़ाया कभी कोई कारिन्दा भी हुआ है ?"

"भला मजाल है कि न हुआ हो। अवश्य हुआ होगा। कारिन्दा क्या थानेदार सा'ब मैंने बड़ी ऊँची-ऊँची असामियाँ पढ़ाई हैं।"

कारिन्दा सा'ब कट गये। इस समय कुछ बोला नहीं जा सकता था।

"वह ऊँची आसामी कौन थी ?"

"मैंने जवानी में राजाओं और ताल्लुकेदारों को पढ़ाया है। अब बूढ़ा हो आया हूँ तो इन गाँव के छोकड़ों में सिर खपाने मुझे भेज दिया है जिनके पिताओं को अपना नाम लेने तक की योग्यता नहीं है।"

पटवारी सा'ब ने पूछा—"आपने राजा ताल्लुकेदार कहाँ पढ़ाये ?"

"वहीं जहाँ इनकी खान है। बहुतों को पीट-पीटकर ताल्लुकेदार बना दिया। जिन दिनों मैं लखनऊ में था जिसे देखो वही ताल्लुकेदार। कोई ताल्लुकेदार

के चाचा के साले के भाई का बेटा है, कोई उसके मामा के बहनोई का नाती है, कोई उसकी पत्नी की बहिन का धेवता है, कोई उनकी बहिन की फूफी का भतीजा है।"

यह सब सम्बन्ध उन्होंने इस शीघ्रता से उच्चारण किये कि लोगों के ओठों पर मुस्कान आ गई। थानेदार सा'ब ने समझा कि मास्टर सा'ब का आना सफल हो गया।

"जिसे देखो वही ताल्लुकेदार। आगे, पीछे, दायें, बायें, अगल, बगल, सब ओर ताल्लुकेदार ही ताल्लुकेदार, राजा ही राजा। जैसे कि वहाँ मेढकों के साथ मेंह में राजा भी बरसते हों।"

मुस्कान गहरी हुई। पर जबतक थानेदार नहीं हँसते, दूसरा कौन हँसे?

आदेश्वर ने प्रश्न किया—"इतने राजाओं के बीच आप साधारण मनुष्य कैसे रह गये?"

"आपको किधर से मैं साधारण दिखता हूँ? क्यों थानेदार सा'ब क्या मैं साधारण हूँ?"

थानेदार सा'ब ने दृष्टि ऊँची की और मास्टर सा'ब की फटी टोपी और फटे कोट पर जमा दी। आलोचक की दृष्टि से देखते हुए बोले—"आप देखने में आदेश्वर जैसे असाधारण तो नहीं लगते।"

आदेश्वर जैसे बन्द था, एक दम फट पड़ा। बोला—"हाँ, मास्टर सा'ब आप में असाधारणता है और महान असाधारणता है।"

और मास्टर सा'ब की दृष्टि इस असाधारण व्यक्ति की ओर लग गई जिसने उनमें भी असाधारणता खोज निकाली।

"आपकी असाधारणता विलक्षण है। आपने जीवन-भर राजाओं को पढ़ाया, जीवन भर आप स्वर्ण के निकट उपासना करते रहे, पर आज वृद्धावस्था में आपके पास न साबूत टोपी है और न एक पूरा कोट। अवश्य ही इस विषय में आप असाधारण हैं।"

आदेश्वर ने जो बात कही वह मास्टर सा'ब के हृदय को स्पर्श कर

गई। और अपनी दृष्टि जो उन्होंने आदेश्वर की ओर घुमाई तो उसके भाव बिल्कुल परिवर्त्तित हो चुके थे। इस एक वाक्य ने उनके जीवन के समस्त लम्बे दुःखाध्याय को खोलकर अब उनके सम्मुख बिछा दिया था। उन्हें लगा कि वे वास्तव में, सोने के पड़ोस में रह कर, मरकर, पचकर, उसकी कुछ किनकियाँ भी प्राप्त न कर सके।

थानेदार को प्रसन्न करने की भावना तिरोहित हो गई। अपने जीवन की ओर उनकी जाग्रत दृष्टि गम्भीर हो चली।

आदेश्वर ने अपना एक समर्थक बना लिया। जिस प्रकार की अवज्ञा और उपेक्षा वह इस स्थान पर सहता आया है, उसका बदला लेने के लिए और इन लोगों के नेत्र खोल देने के लिए उसने यह अवसर उचित समझा।

मास्टर सा'ब की सहानुभूति को व्यर्थ खोना अनुचित समझ कर उसने बिनारुके गाँव की आर्थिक व्यवस्था पर प्रहार किया।

"मास्टर सा'ब, आप मास्टरी करते हैं, आपके दो लड़के किसानी करते हैं; और आप सब मिल कर अन्न-वस्त्र के लिए नहीं जुटा पाते! क्यों? क्या कभी इस पर विचार किया है?"

इस वाक्य ने मास्टर सा'ब को ही नहीं अन्य ग्राम-निवासियों को भी चैतन्य कर दिया। यह समस्या सब की समस्या थी। कारिन्दा सा'ब और थानेदार सा'ब को लगा कि यह विषय उन लोगों के सम्मुख अनुचित है। पर प्रत्यक्ष वे उसे रोक नहीं सके।

थानेदार सा'ब ने रोका नहीं, इसलिए कारिन्दा सा'ब चुप रहे। थानेदार सा'ब ने सोचा कि अच्छा है चले यह विषय। विवाद की अच्छी सामग्री है। अन्त में विजयी तो वही होंगे।

बात आगे बढ़ गई। आदेश्वर ने पूछा और अब तनिक उच्च स्वर से—"क्या हम लोग गाँव में नगर के मजदूरों से कम परिश्रम करते हैं?"

"नहीं तो," मास्टर सा'ब ने उत्तर दिया।

"यही नहीं," आदेश्वर ने कहा—"कड़ी गर्मी और बरसात में वे लोग

विश्राम कर सकते हैं। परन्तु हम लोग उन दिनों कार्य करने को बाध्य हैं। हम इतना परिश्रम करते हैं, इतना जोखिम लेते हैं, फिर भी उनकी अपेक्षा हमारी दशा बुरी क्यों है ?"

थानेदार सा'ब को लगा कि पता नहीं बात कहाँ पहुँचेगी। पर इस लँगड़े-लूले व्यक्ति को इस प्रकार बोलते देखकर उन्हें कुछ विचित्र अवश्य लगा।

आदेश्वर के उत्तर में उपस्थित जनों के नयनों ने उस पर स्थित होकर वही प्रश्न दुहराया—'हाँ, इतना परिश्रम करने पर भी हमारी दशा इतनी बुरी क्यों है ?'

"काम करने पर भी पूरा नहीं पड़ता। क्यों ?" उसने फिर पूछा—

हरिनाथ ने, जो इसमें प्रारम्भ से ही रुचि ले रहा था, उत्तर दिया—"मज़दूरी कम है।"

"यह बात !" आदेश्वर ने हरिनाथ का उत्साह बढ़ाया। लोगों को लगा कि हरिनाथ वास्तव में बुद्धिमान है। और आदेश्वर ! उसे वे ऐसा कब समझते थे कि थानेदार और कारिन्दा उसके सामने चुप बैठे रहेंगे।

सब की दृष्टि ने कहा—"हरिनाथ ठीक कहता है।"

कारिन्दा सा'ब ने हरिनाथ की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। पर इस समय वह आदेश्वर की 'शाबाशी' का मूल्य सब से अधिक समझ रहा था।

"तो हमारी मज़दूरी कम क्यों हो जाती है ?"

सब चुप।

आदेश्वर ने बलपूर्वक और स्पष्ट शब्दों में कहा—"इसलिए कि सरकार के अतिरिक्त, राजा, ताल्लुकेदार अथवा ज़मींदार उसमें भाग लेता है।"

कारिन्दा सा'बने रक्षा-प्रार्थना की दृष्टि से थानेदार की ओर देखा।

"यदि इन लोगों को बीच में से हटा दिया जाय, और भूमि पर किसान का स्वामित्व होजाय, तो किसान न केवल प्रसन्न होगा वरन् भूमि की उपज बढ़ाने का भरसक प्रयत्न करेगा।"

"ठीक कहते हो आदेश्वर।" सामने बैठे ग्रामीणों में से एक ने कहा।

थानेदार सा'ब को लगा कि आदेश्वर अब क्रान्ति का प्रचार करने जा रहा है। उसे रोकना कर्त्तव्य है। पर आज्ञा देना सम्भव नहीं। इसलिए उन्होंने उसे विवाद में उलझा लेना चाहा। बोले—"तो आप उन्हें मिटाने के लिए क्रान्ति की व्यवस्था देंगे ?"

थानेदार के इस वाक्य से आदेश्वर को स्थिति का ज्ञान हो आया। उसे अनुभव हो रहा था कि कारिन्दा इस प्रश्न के उठाने के अत्यन्त विरुद्ध हैं। थानेदार किसी प्रकार सहन कर रहे हैं। पर उनके इस प्रश्न ने, और उनके स्वर ने स्पष्ट कर दिया कि अब वे भी इसके विरुद्ध जा रहे हैं। जो कुछ उसने प्रारम्भ किया है, वह अन्त तक पहुँचाया जासके, इसलिए एक की यदि प्रत्यक्ष सहानुभूति नहीं तो मौन सहमति उसे अपनी ओर रखनी ही चाहिए।

बोला,—"थानेदार सा'ब अपना देश न रूस है, न फ्रांस। इसलिए जो उपाय वहाँ उपयुक्त हुए हैं वे यहाँ कैसे ठीक होंगे ? पर इस विषय में हम एक बात भूल जाते हैं।"

"क्या ?"

"और वह है हमारी पुलिस। सब कमियाँ होते हुए भी भारत को एक कुशल ईमानदार पुलिस विभाग प्राप्त है। कैसा भी परिवर्त्तन हो इसकी सहायता से अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है।"

पुलिस विभाग की प्रशंसा ने कार्य किया। थानेदार ने प्रशंसात्मक दृष्टि से आदेश्वर की ओर देखा। उन्हें लगा कि यह वास्तव में दिमाग-वाला, बुद्धिमान व्यक्ति है। सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए किसी ने अभी इसके प्रयोग की बात नहीं कही है। वे सहानुभूतिमय होकर बोले—"आदेश्वर बाबू, बताइए आपकी वह वैधानिक योजना कौन सी है ?"

"मेरी योजना ऐसी है कि कोई भी ईमानदार शासन उसे कार्यान्वित कर सकता है। किसी भी पक्ष को उससे आर्थिक हानि विशेष न होगी।"

इस आश्वासन से कारिन्दा सा'ब की रुचि भी इस योजना की ओर आकृष्ट हुई।

"योजना यह है कि सरकार बड़े जमींदारों से ज़मींदारी के अधिकार ख़रीद ले।"

"ज़मींदार यदि न बेचें तो—?"

"आप जानते हैं कि सरकार ने कितनी भूमि रेलों, अस्पतालों, पाठशालाओं के लिए प्राप्त की है। सबने वह भूमि प्रसन्नता से नहीं दी है। जिस विशेष अधिकार का प्रयोग सरकार ने उस स्थान पर किया है, उसका प्रयोग वह यहाँ भी करे। मैं यह मानता हूँ कि जिनके अधिकार लिये जायँ उन्हें उचित मूल्य दिया जाय।"

"परन्तु," थानेदार ने प्रश्न किया—"आप को कदाचित् पता नहीं है कि यह बहुत बड़ी रक़म होगी; और सरकार के पास इतना धन नहीं है।"

किसानों के हृदय में जो एक आशा संचार हुई थी, वह बैठ चली; उनके चेहरे उतर गये।

"इसका उपाय है।" आदेश्वर ने कहा।

गाँव वालों ने समझा उनका आदेश्वर ऐसा-वैसा नहीं है। कारिन्दा के सिपाही ने भी उसमें अब गर्व अनुभव किया। इस बीच में अंग्रेज़ी के जो दो-चार वाक्य उसके और थानेदार सा'ब के बीच बोले गये, उससे अनुमान लगाया गया कि आदेश्वर अंग्रेज़ी तेज़ बोलता है इसलिए पढ़ा भी अधिक होगा। गाँव वालों को आरामकुर्सी पर बैठा आदेश्वर उनकी ढाल-सा प्रतीत हुआ।

"इस कार्य के लिए सरकारी कर्ज़ा जनता से लिया जाय। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा कर्ज़ा देखते-देखते एकत्र हो जायगा।"

गाँव वालों ने देखा कि थानेदार सा'ब का यह प्रश्न भी सुलझ गया। पर अभी एक प्रश्न शेष था।

उन्होंने पूछा—"पर सरकार उस ऋण को चुकायेगी कैसे?"

"सरकार कहाँ से चुकायेगी? किसान चुकायेगा। जिस प्रकार सरकार तकावी चुकवा लेती है, उसी प्रकार प्रति वर्ष लगान के अतिरिक्त कुछ धन उस ऋण को चुकाने के लिए किसान से लेती रहेगी। लम्बे समय पर

फैलाने से किसान को असुविधा भी न होगी। इस प्रकार धन वह देगा; अधिकार वह खरीदेगा; सरकार सहायक मात्र होगी।

"सरकार को इससे लाभ....?"

"सरकार के पीछे होगा बलिष्ट, सम्पन्न और सन्तुष्ट किसान, जो उस सरकार के लिए अपना जी जान होमने को तैयार रहेगा।"

"और जमींदार ?" कारिन्दा सा'ब ने हृदय सँभाल कर प्रश्न किया।

"वे देश के नेता होंगे। इतना धन उन्हें एकत्र प्राप्त हो जायगा कि वे सहज ही उसे देश के औद्योगिक विस्तार में लगा सकेंगे। इस प्रकार इस योजना के अनुसार देश की औद्योगिक और ग्रामीण दोनों प्रकार की उन्नति की सुविधा हो जाती है।"

"योजना सुन्दर है।" मास्टर सा'ब बोले।

थानेदार ने प्रशंसात्मक दृष्टि से आदेश्वर की ओर देखा। सारी सभा जिसे उसकी हार समझ रही थी, उसे वे अपनी विजय समझ रहे थे। वे समझ रहे थे कि उन्होंने चतुरता से क्रान्ति की चर्चा रोक कर उसे वैधानिक दिशा प्रदान कर दी है।

"आपके पास तो बहुत सी पुस्तकें होंगी ?"

"हाँ कुछ हैं, नगर के पुस्तकालय का भी मैं सदस्य हूँ।"

"मैं आपका संग्रह देखना चाहूँगा, औ..... ।"

"हाँ, हाँ, अवश्य।" आदेश्वर ने कहा।

ग्रामीणों ने समझा कि कोई उपाय है, जिसे वे समझ नहीं पाये, जिससे उनकी दशा में सुधार हो सकता है, वे वास्तव में आत्माभिमानी, आत्मावलम्बी मनुष्य हो सकते हैं। आदेश्वर, थानेदार सा'ब और कारिन्दा सा'ब इस पर सहमत हैं।

[२]

रामाधीन को पटवारी और हरिनाथ की सहायता जो प्राप्त हुई, उस के परिवर्त्तन में उसने अपनी स्वीकृति देदी—स्वीकृति रामसरन के विरुद्ध गवाही देने की।

रामाधीन ने वचन दिया और अपना काम करा लिया। पर रामसरन के विरुद्ध गवाह बनने की गम्भीरता उस समय तक उस पर प्रकट नहीं हुई जब तक कि पुलिस ने उसे, कचहरी में क्या कहना है इसकी, शिक्षा न दी। उसे ज्ञात हुआ कि वह प्रमुख गवाहों में से है और गंगाजली उठाकर जज के सामने कहेगा—'रामसरन ने वास्तव में कारिन्दा सा'ब की हत्या का प्रयत्न किया। उसने और अमुक-अमुक ने उन्हें बाल-बाल बचा लिया; फिर भी आघात से कारिन्दा सा'ब का मुख रक्त से भर गया।'

अपने निश्चय की पूर्ण गम्भीरता का परिचय पा वह घबरा उठा। क्या वह अपने भाई को फाँसी पर चढ़ाने के लिए गवाही देगा। वह रामसरन, जिसे उसने प्यार से गोद में खिलाया है, जिसकी ओर से अन्य बालकों से लड़ा है,—और फाँसी !

पर अब यदि मुकरता है, तो पुलिस और कारिन्दा दोनों उसके बैरी हो जाते हैं। वह जीवन-पर्यन्त इस गाँव में दुखी किया जाता रहेगा। तब उसे लगा कि वह उत्पन्न ही क्यों हुआ।

इस प्रकार के तर्क-वितर्क से घटनाएँ रुकतीं नहीं, मनुष्य को उनमें जो भाग मिलता है वह उसे पूर्ण करना होता है। कोई रोये, कोई हँसे, कार्य-कारण की धारा जीवन को अछूता नहीं छोड़ती। मनुष्य केवल अपने पर संयम रख सकता है और भय से बच सकता है। इन्हीं दोनों स्थानों पर रामाधीन ने धोका खाया। भय ही है जो संसार के सर्व पापों का, इसी से सर्व दुःखों का, मूल है।

रामाधीन अपने अस्तित्व की गहराई से दुखित हुआ। पर दुःख को वह इधर-उधर की बातों से छिपाने का प्रयत्न करता रहा।

एक भावना थी जो उसे सान्त्वना प्रदान करती थी, उसे ही वह यथा-सम्भव उत्तेजन देता रहता था। यह थी रामसरन के प्रति, पिता के प्रति बैर भावना। वह सोचता—यदि वह रामसरन के स्थान में होता तो रामसरन भी उसके प्रति वह व्यवहार करता जो आज वह रामसरन के प्रति कर रहा है। और फिर रामसरन उसका पट्टीदार है। यदि उसे जेल हो जाती है,

वह निःसन्तान मर जाता है तो उसकी भूमि का आधा भाग रामाधीन का है। इस लाभ की दृष्टि से तनिक झूठ बोलना बुरा नहीं।

गाँव में लोग उसे बुरा कहेंगे। पर कौन बुरा नहीं है। ऐसे हैं जिन्होंने अपने पिता के विरुद्ध गवाही दी है, जिन्होंने भाइयों से फौजदारी की है। नहीं, गाँव की चिन्ता वह नहीं करेगा। इस कार्य से गाँव के समाज में उसकी प्रतिष्ठा में जितनी कमी आयेगी, उससे कहीं अधिक परिमाण में प्रतिष्ठा वह पुलिस और कारिन्दा के सम्पर्क से प्राप्त कर लेगा, प्राप्त कर रहा है। वह गाँव में महत्वपूर्ण व्यक्ति बनने जा रहा है और बनकर रहेगा। महत्त्व के पथ पर ऐसी घटनाओं से लाभ उठाना होगा; संकोच को कुचल देना होगा।

इस प्रकार की विचार-धारा उसके मन के गहरे तल पर बहती रहती थी। पर कल जो एक नवीन घटना की सूचना उसे मिली है वह वास्तव में विचित्र सी है।

वह जानता है कि गाँव में कुछ अव्यक्त लोग हैं जा रामसरन को देवता और उसके कार्य को महान बनाये डाल रहे हैं। पर इनको उसने कोई महत्व नहीं दिया। यह लहर पुलिस और राजा के सम्मुख नहीं ठहर सकेगी।

और नवीन समाचार यह है कि रामावतार नगर से लौट आये हैं। उन्होंने सब से मँहगे और श्रेष्ठ वकील माथुर को किया है। यहाँ अबूझ यह है कि माथुर की फीस के लिए न उन्होंने भूमि बेची है, न गिरवी रक्खी है। अवश्य ही उनके पास रुपये थे जो उन्होंने बाँटे नहीं।

पर अधिक विचार से यह उसे जँचा नहीं क्योंकि घर का रत्ती रत्ती हाल, उसे चाहे न हो, सहदेई को ज्ञात था। उसने कह दिया था कि घर में अब बाँटने योग्य कुछ नहीं रहा। यदि कुछ रहा भी होगा तो इतना नहीं कि माथुर को कर सकें।

तो माथुर को कर सकने योग्य धन बाहर से आया है। इस बाहर का अर्थ क्या है? गाँव में किसी ने दिया है? कौन है ऐसा धनी?

साहु हो सकते हैं। पर वे कारिन्दा और थानेदार की सेवा में रत हैं। उनके विरुद्ध वे क्यों धन व्यय करेंगे?

गाँव में चन्दा सम्भव नहीं। उसे लगा कि कोई महत्वपूर्ण शक्ति रामसरन की पीठ पर हो गई है। एक आन्तरिक प्रसन्नता उसे हुई। वह पुलिस का भी बुरा न बनेगा और रामसरन भी दण्डित न होगा। फिर बुरा भी यह कम न लगा। माथुर के सम्मुख पड़ने के भय से वह काँप उठा। जिससे सुना यही कि गज़ब का वकील है, पेट की बात निकाल लेता है।

पर गवाही तो देनी ही होगी। माथुर हो या कोई और हो। अब वह एक यंत्र का पुर्ज़ा बन गया है, जिधर वह ले जायगा, जाना ही होगा।

[३]

भाई रामावतार-द्वारा वैजंती की प्रशंसा सुनकर पार्वती बुवा का कष्ट कुछ बढ़ ही गया। परन्तु वृद्धा होने पर भी वे अधिकार की बात में पराजित होने वाली नहीं थीं। असफलताएँ उन्हें पुनः-पुनः प्रयत्न करने को प्रोत्साहित करती थीं। और इससे वैजंती के विरुद्ध भावनाएँ उनमें और भी गहरी होती गईं। उन्होंने भी धूप में अपने केश सफेद नहीं किये हैं; वह सब समझती हैं। यह चार दिन की छोकरी और उनसे खेल कर निकल जाये!

वे वैजंती के विरुद्ध ताना-बाना फैलाने लगीं। किसी प्रकार यदि पुरुषों की सहानुभूति उसकी ओर से हटा सकतीं तो सब काम हो जाता। पर पुरुष एक विचित्र रीति से वैजंती पर आश्रित थे।

रामविलास का आधा काम वह करती थी। रामावतार को न जाने क्यों उस पर विश्वास था। वे समझते थे कि मानों उनकी सब गृहस्थी उसी के आश्रय से चल रही है।

पार्वती बुवा ने जो निश्चय कर लिया उसे कोई डिगा नहीं सकता। उन्हें अपनी योजना की सफलता पर उतना ही विश्वास था जितना कि प्रत्येक धर्मावलम्बी को अपने धर्म की सर्वश्रेष्ठता पर होता है। पड़ोसी

के यहाँ कुछ था, किशोरी को वहाँ उन्होंने परिवार का प्रतिनिधित्व करने भेज दिया।

घर में दो काम रह गये ; कुट्टी काटना और रोटी बनाना। दोनों ही आवश्यक थे। वे आगे पीछे नहीं हो सकते थे। साधारणतया होता यह कि बुवा जी भोजन बनातीं और वैजंती जो कार्य करती आई है वह करती। पर बुवा जी ने अपने अधिकार का प्रयोग किया। उन्होंने कहा— "कुट्टी मैं काटूँगी।"

"बुवा जी!" वैजंती ने विरोध किया।

"नहीं बहू, तू रोटी बना। मैं कुट्टी काटूँगी।"

"बुवा जी, चार-पाँच पशुओं की कुट्टी है।"

"मैं क्या देखती नहीं हूँ। मैं घर में रहती हूँ, आँख बन्द करके नहीं।"

"बुवा जी जितना सरल तुम उसे....।"

"मैं पचास वर्ष की बुढ़िया कुट्टी काटने का पाठ तुमसे नहीं पढ़ूँगी।" उन्होंने अधिकार और तेज़ी से कहा।

वैजंती ने मन में कहा—मरती है तो मर। जा काट, देख कैसा मज़ा आता है। जब छाले पड़ेंगे तो चिल्लाती फिरना।

प्रकट बोली—बुवा जी, तुम रोटी बना लो। कुट्टी मैं नित्य काटती थी, आज भी काटे लेती हूँ।"

"सुनेगी नहीं तू ?" बुवा ने आज्ञा दी और धमकी भी।

वैजंती को अब बुवा जी के हाथों में छाले पड़ने की तो उतनी चिन्ता न थी, जितनी कि पशुओं के भूका रहने की। पर वह विवश थी। बुवा जी की आज्ञा थी जिसका उल्लंघन उसे यथासम्भव न करना चाहिए। यदि किशोरी घर में होती तो वह बुवा जी की एक न सुनती और कुट्टी काटने चली गई होती।

बुवा जी ने गँडासा सँभाला और घास को बिना झाड़े ही चरी के साथ मिलाकर काटना प्रारम्भ कर दिया। बुवा जी गाँव में रही थीं अवश्य, पर

जिस प्रकार नगर में रहने से मनुष्य सब नागरिक कार्यों में पारंगत नहीं हो जाता, उसी प्रकार गाँव-निवासिनी होकर भी वे सब कार्यों में दक्ष नहीं हो सकी थीं।

कुट्टी उन्होंने कभी ससुराल में दस-पाँच बार काटी थी, और वह भी थोड़ी-सी। उस अभ्यास के बल पर ही उन्होंने इतना बड़ा काम अपने ऊपर ले लिया।

उन्होंने काटना प्रारम्भ किया।

पहला प्रहार हुआ और कुछ लम्बे गुल्ले उछल कर उनके ललाट से टकराये। दूसरे प्रहार का कुछ फल न निकला। पर तीसरे कठिन आघात में गँडासा पूरा मुट्ठा न काट पाया, बीच में ही रह गया। उन्हें लगा कि गँडासा तेज़ नहीं है।

वे वैजंती पर क्रुद्ध हो गईं। कुट्टी काटती है पर औज़ार ठीक रखने का ध्यान नहीं है। इतने भोंथरे से क्या उसका बाप काटेगा?

उन्होंने दो-चार प्रहार और किये। लगा कि यह काठ जो भूमि में गड़ा है तनिक ऊँचा और होता तो बनता। और फिर वैजंती पर क्रोधित हो उठीं। पता नहीं कैसे काटती है? इस स्थान पर, इस गँडासे से कोई भला मनुष्य क्या कभी कुट्टी काट सकता है?

वे उठ कर इन दोनों असावधानियों के लिए वैजंती को डाटने जाना ही चाहती थीं कि ऊपर उठाया गँडासा जैसे उनके हाथ में सधा नहीं, अचानक चरी पर गिर पड़ा। वह चरी कटने के स्थान पर आगे पीछे फैल गई। उनकी मुट्ठी खुल गई।

इस घटना ने उन्हें अनुभव करा दिया कि उनकी पकड़ न गँडासे पर, न चरी पर पर्याप्त शक्तिशाली है। कुट्टी वास्तव में उनकी दुर्बलता के कारण नहीं कट रही है।

यह जैसे उन्हें एक चुनौती थी। क्या वे वैजंती से भी दुर्बल हैं? यह सम्भव कैसे हुआ? नहीं वे ही काटेंगी, और यहीं इसी गँडासे से काटेंगी।

उन्होंने चरी पर मुट्ठी कड़ी की। ज़ोर से गँडासा मारा। गँड़ासा मुट्ठे की फुनगियों को तनिक छूकर लकड़ी में धँस गया। बुवाजी ने एक हाथ से उसे निकालने का प्रयत्न किया। पर असफल रहीं। एक लज्जा उन-पर आ गई—यदि कोई इस अवस्था में उन्हें देख ले तो। उन्होंने चारों ओर देखकर चरी छोड़ी, नयन लगभग मूँद कर उन्होंने दोनो हाथों का बल लगाया, तो कहीं जाकर वह निकला।

जी में हुआ कि जाकर वैजंती से कहे कि आकर वही काट ले। ऐसे बुरे औज़ारों से उन्होंने कभी काम नहीं किया है। भला एसा गोठिल गँडासा!

पर गोठिल का ध्यान आते ही उन्हें अभी तनिक पहले की घटना स्मरण आ गई। क्या गोठिल भौंथरा गँड़ासा इतना लकड़ी में धँस सकता है?

उन्हें लगा कि वे न काट सकेंगी, और न वे वैजंती से कह सकेंगी। पशु भूके मरेंगे, इसकी ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। क्योंकि पशुओं के लिए न बुवाजी नामक कोई व्यक्ति घर में था और न बुवाजी के लिए पशुशाला में पशु थे।

उन्होंने निश्चय किया कि काटेंगी वही। चाहे धीरे-धीरे काटें। दो-पहर तक न सही संध्या तक तो कट ही जायगी। और वे काटने में फिर प्रवृत्त हुईं पर वैजंती ने ठीक कहा था—देखने में जितना सरल लगता है कार्य उतना सरल नहीं है।

और शीघ्र ही बुवाजी के दोनों हाथों में लाल चकत्ते पड़ने और कल्लाने लगे। दाहिने हाथ में जैसे काँटे से चुभने लगे। उन्होंने गँड़ासा रख दिया। चेष्टा की—दाहिने हाथ से चरी पकड़े और बायें हाथ से गँडासा चलायें। पर शीघ्र ही पता लग गया कि उनकी इस योजना के कार्यान्वित होने में एक सहस्र और एक बाधाएँ हैं।

वे अब वास्तव में चिन्तित हो गईं। इस झुँझलाहट से जो क्रोध उबला उस सब का प्रवाह रामसरन की बहू की ओर बह गया। जब उसे ज्ञात था कि कुट्टी काटना सरल नहीं है, तो उसने स्वयं क्यों नहीं काटी और उसे क्यों यह कार्य-भार दे दिया।

मन में वैजंती पर बड़ा क्रोध आया। पर स्वयं जाकर उससे कहने के योग्य आत्म-बल उनमें न था। अपने मुख इस चार दिन की छोकरी के सम्मुख अपनी पराजय वे न स्वीकार करेंगी। हाँ, इतना उन्हें अवश्य ज्ञात हो गया कि वैजंती अब तक जो काम सँभालती आई है वह सरल काम नहीं है। पर इसके विरुद्ध भी उनके पास तर्क शीघ्र ही उपस्थित हो गया।

उनसे काम इसीलिए नहीं हुआ कि आज प्रायः प्रथम बार उसे करने बैठी हैं। यदि निरन्तर अभ्यास का बल हो तो क्या बड़ी बात है? वैजंती यदि कर लेती है तो यह कार्य उसके लिए सरल ही होगा। वे चाहती थीं अपने चाहे कैसा ही हो काम वैजंती के लिए कठिन होना चाहिए।

आगे काटने का साहस उनका न हुआ। वे उठकर घर से बाहर चली गईं।

वैजंती भोजन बनाने में लगी तो पर उसका ध्यान कुट्टी की ओर लगा हुआ था। कुट्टी काटते समय शरीर से जो पसीना निकलता था उसमें एक विचित्र भौतिक और मानसिक आनन्द था। एक गम्भीर आत्म-तुष्टि थी।

उसने देखा कि बुवाजी से कुट्टी नहीं कट रही है। पर वे अपनी असमर्थता मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। यदि वह स्वयं पुनः काटने का प्रस्ताव लेकर उनके पास जायगी तो वे उसी पर उलटी बरस पड़ेंगी। नित्य प्रति बात बात पर कहा-सुनी और अपमान वह एक सीमा तक ही सह सकती है।

उसने सोचा—बुवाजी सबसे बड़ी हैं। उन पर ही घर का उत्तर-दायित्व है, वे जैसा कार्य-विभाजन करें उसी के अनुसार उसे चलना चाहिए।

जब बुवाजी कुट्टी काटना छोड़ बाहर चली गईं तो उससे न रहा गया। उसने आकर देखा कि घास में बरसाती गीली मिट्टी वैसी ही लगी है। उसे झाड़ने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जो कुट्टी कटी है वह सेर दो सेर से अधिक नहीं होगी और चाहिए मन सवामन।

बिनाझड़ी घास चरी के साथ मिलने से सब चारा खराब हो गया। मिट्टी मिल जाने से पशु न खायेंगे। अच्छा हुआ जो बुवाजी ने और काटा

नहीं। उसे जेठानी के ऊपर क्रोध आया। वह तो वहाँ जाकर बैठ गई और यहाँ मेरे पशु भूके रहेंगे। द्वार से बाहर झांककर देखा, बुवाजी कहीं दृष्टिगोचर न हुईं।

जी में आया कि बैठकर कुट्टी काटे। पर पशुओं को यदि भोजन न मिला तो वे एक बार चुप रह सकते हैं; परिजन ऐसे नहीं हैं जो भोजन न मिलने पर सरलता से चुप रह जायेंगे। इससे उसने कुट्टी की ओर से ध्यान हटा लिया पर उसका हृदय पशुओं के लिए मसोसता रहा।

फिर यह एक दिन का प्रश्न नहीं है। एक बार पुरुषों के सम्मुख समस्या आजानी चाहिए। आज वह बानक बन गया है। व्यर्थ उसे क्यों बिगाड़े और उसने जाकर अपना कार्य सँभाला।

उसे केवल बुवाजी से एक शिकायत थी—घर का सब काम सुचारु रूप में चलने पर भी वे बीच में अपना प्रभुत्व और विशेषतया उस पर क्यों जतातीं हैं। वे उसे उतनी स्वतंत्रता देने को प्रस्तुत नहीं हैं जितनी किसोरी को।

यह सब वह जानती है, किस कारण है। उसी के लिए एकान्त में रोती है, भगवान से प्रार्थना करती है। रामसरन के छूट आने के लिए वह क्या-क्या मिन्नतें मान चुकी है वही जानती है। इमली की जड़ में जो सिन्दूर-रञ्जित भैरव हैं, उन्हीं पर उसकी विशेष आस्था है। पति के सकुशल लौट आने पर उसने उन्हें अपने शरीर का रक्त चढ़ाने की प्रतिज्ञा की है। वहाँ की दीपज्योति का कारण बहुत दिनों तक गुप्त रहने पर भी अब प्रकट हो गया है। सन्ध्या समय रामावतार के घर में जो नारीमूर्ति हरिसुन्दर के साथ निकल कर इमली की ओर जाती है वही उसका कारण है। इसके कृत्य का एक संगी और साक्षी है,—हरिसुन्दर, जो काकी का आत्मीय है। वह समझता नहीं, इससे काकी अपने मन की सब भावनाएँ, इच्छाएँ, आशंकाएँ उससे निःसंकोच कह देती है और वह कृष्ण की बालमूर्ति की भाँति सुना करता है।

उसे केवल एक बात समझ में आती है: काका आयेंगे तो उसके लिए चबेना लायेंगे। मानों कि हरिसुन्दर की एक मुट्ठी चबेना पाने की

प्रसन्नता वैजंती की रामसरन पाने की प्रसन्नता के बराबर हो।

हरिसुन्दर जाकर माँ से कहता—"काका आयेंगे, चबेना लायेंगे।"

किसोरी कहती—"तुझे अपने चबेना की पड़ी है, काका को आने तो दे। जिस दिन तेरे काका आयेंगे तुझे लाई-गट्टा दूँगी। ढेर-सा। भगवान् से विनती कर कि वे काका को छुड़ा दें।"

और तब हरिसुन्दर दो मिट्टी के ढेलों के भगवान बना उनके सामने हाथ जोड़ कर कहता—'भगवान, काका को छुड़ा दो।" पर उसका ध्यान लाई-गट्टा पर लगा रहता।

वैजंती जाकर रोटी बनाने बैठ गई, और दूसरी ओर बुवाजी परिवार के चमार हरिसेवक के यहाँ पहुँचीं। उनकी इच्छा थी कि सेवक चल कर कुट्टी काट दे। पर वहाँ उन्हें न उसकी पत्नी मिली, न सेवक। पड़ोस में पूछने से ज्ञात हुआ कि दोनों उन्हीं के खेतों पर तो काम करने गये हैं।

उनका लड़का तीन-चार मास की बीमारी भोगकर अभी उठा था। सूखा कंकाल; बैठा धूप ताप रहा था। वस्त्रों का अभाव सूर्य से पूरा कर रहा था।

अन्तिम प्रयत्न उन्हों ने किया। और उस कंकाल से अपनी विनय सुनाई। पर उसने एक मुस्कान के अतिरिक्त और कोई उत्तर न दिया। बुवाजी ने ऐसी मुस्कान एक बार और देखी थी—तब वे ससुराल में थीं, पति के मुखपर अन्तिम दिनों में। वे वहाँ ठहर न सकीं, तत्काल लौट पड़ीं। कुछ क्षणों के लिए उनका हृदय हिल गया।

पर चमारटोले के बाहर निकल आने के कुछ क्षण बाद ही वे पुनः वर्त्तमान में आ गईं। वैजंती से यह जो पराजय उन्हें प्राप्त हुई है, इसे वे किसी प्रकार सँभाल नहीं सकेंगी

वे घर पहुँची। देखा—वैजंती बैठी भोजन बना रही है। यह देखकर वे न जाने क्यों भुन गईं। पर आज्ञा उन्हीं की थी। कुट्टी के ढेर को देख उनका हृदय बैठ चला।

रामावतार घर आये तो उन्होंने देखा—रामसरन की बहू रामाधीन के

लड़कों के साथ बैठी है, और पार्वती बहिन बड़ी व्यस्तता से बर्तनों को उलट पुलट रही हैं जैसे कि उनमें उनका कोई बहुमूल्य आभूषण गिर-कर खो गया हो, और अब उनके साथ आँखमिचौनी खेल रहा हो।

उनकी दृष्टि चारे के स्थान पर पड़ी। घास का ढेर वैसा ही पड़ा देखा। और सेर भर कुट्टी पड़ी पाई। उन्हें सन्देह हुआ। पशुशाला में गये। देखा—नाँदें खाली हैं, सूखी हैं। पशु उन्हें देखकर रँभाये। और फिर एक दृष्टि, जो दृष्टिवान ही पहिचान सकता है, उनकी ओर लगा दी।

उस पशुदृष्टि की निरीहता रामावतार ने अनुभव की। उन्हें लगा कि वे बोल नहीं सकते इसलिए किसी को उनकी चिन्ता नहीं है। यदि वे न होंगे तो पता चलेगा। यह जो फूली फूली मिल जाती है भूल जायगी।

वे क्रुद्ध हो गये। परन्तु पशुओं को चारा देने का काम वैजंती को सौंपा था इसलिए अपने पर संयम किया, फिर भी पूर्ण संयम असम्भव था।

घर में जाकर बहिन से पूछा—"क्यों आज पशुओं को चारा नहीं मिलेगा क्या? घर का प्रबन्ध ऐसा बिगड़ा जा रहा है कि समझ में नहीं आता। जिनके बल से धरती का पेट फाड़कर अन्न निकलता है, उन्हीं को भोजन नहीं। इन बेज़बानों की ‥।"

पार्वती देवी तनकर खड़ी हो गईं। बोली—"मैं क्या करूँ। बड़ी बहू नारायण के यहाँ गई है। छोटी बहू रोटी बनाने बैठ गई।" इससे अधिक वे बोल नहीं सकीं।

वैजंती चुप रही, उसकी चुप्पी विवशता की चुप्पी थी।

रामावतार वैसे बहिन का बड़ा आदर करते थे। पर पशु उन्हें प्यारे थे। वे परिवार के जीवन थे। पूछा—"तुम क्या कर रही थी?"

पार्वती एक क्षण सकपकाई। पर तुरन्त उत्तर न देने से अपराधिनी बनना होगा। बोलीं—"मैंने कुट्टी काटने का प्रयत्न किया पर‥‥" और अब वैजंती के प्रति उनकी भावना स्वयं उनके मुख से प्रकट हो गई।—"यह तो जिसके बाप के यहाँ खाने को न मिलता हो, उसे ही अभ्यास हो सकता है। परमात्मा की दया से मेरे तो पीहर सासरा सब भरा पूरा है।"

रामावतार घटना कुछ कुछ समझ पाये। बहिन और बहू में कुछ बात हुई है, इसी से बहू ने रोटी बनाई है और बुवा ने विश्राम किया है।

रामावतार के लगा कि पार्वती यदि उनकी गृहस्थी की सुचारुता में सहायक न होकर बाधा है तो उसे अपने सासरे जाना होगा। उसे बुलाने के समय जो सोचा था वह न हुआ। वे उसे घर की सीमेंट समझ कर निमंत्रित कर बैठे थे और अब वह साही का काँटा प्रमाणित हो रही थी; व्यर्थ क्लेश को जन्म दे रही थी।

"यदि तुम रोटी बना लेतीं तो क्या होता ?"

"बुवा तो यहाँ थी ही नहीं ?" वैजंती ने बालक से कहलवाया।

रामावतार को इस प्रकार का कुछ सन्देह था। अब पक्का हो गया। बोले—"अकेली बहू दोनों काम कैसे कर लेती ? यदि नारायण के यहाँ किसी को जाना ही था तो तुम क्यों नहीं चली गई। ये दोनों, जैसे नित्य होता था, काम निबटा लेतीं।"

बालक के वाक्य ने बुवाजी को एकदम भड़का दिया। वे इस घर में शासक बनकर आई हैं। टहलिनी यदि उन्हें बनना है तो उनका अपना घर ही कौन सा बुरा है।

ज़ोर से बोलीं—"खूब चढ़ा लो बहू को सिर पर। कहते हो कि बहू बड़ी सीधी है; बिस की गाँठ भरी है। कहलवा दिया कि बुवाजी तो यहाँ थी ही नहीं। नहीं थीं तो यह इतनी कुट्टी क्या तेरा बाप काट गया।"

रामावतार बहुत दिनों से इस प्रकार की कलह-सम्भावना देख रहे थे। उनके सम्मुख अब केवल न्याय का ही प्रश्न न था। प्रश्न यह भी था कि दोनों पक्षों में से किस ओर होना उनके लिए लाभप्रद होगा।

जो कुछ उनका था सब बाँट चुके थे। उनका अपना कहने योग्य कुछ भी शेष नहीं रह गया है। उनकी वृद्धावस्था का दुःख-सुख यदि निर्भर करता है तो रामविलास और रामसरन पर; विशेषतया उनकी बहुओं पर। यदि बहुएँ उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हैं, तो पुत्र भी उन्हें घर में रखने को प्रस्तुत होंगे; अन्यथा उनके बुढ़ापे का भगवान ही रक्षक है। रामाधीन से वे

विशेष आशा नहीं कर सकते ।

बोले—"बहिन, बहू के बाप तक जाने की आवश्यकता नहीं है । उसके यहाँ क्या है क्या नहीं, यह कहने से अपनी गलतियों पर परदा नहीं पड़ जाता । तुम बहू के विषय में सब कुछ कह लो, और वह तुम्हारे विषय में एक शब्द न बोले, यह कैसे ठीक है ?"

"हाँ, समय ही ऐसा आ गया है भैया, तुम क्या करो ? एक दिन था कि घरों में बहुओं को दबाकर रक्खा जाता था । अपनी लाज अपने हाथ में है, आज तुम यदि उसे सिर पर नचाना चाहते हो तो नचाओ । मैं बोलने वाली कौन ? पर अनुचित जब देखती हूँ तो रहा नहीं जाता ।"

रामावतार थके थे । व्यर्थ बात बढ़ते देख वे तेज़ हो गये । बोले—"क्या उसे सिर पर नचाते हैं और क्या तुम देखती हो ? कहो, मैं यहाँ हूँ । यदि उसका अपराध होगा तो उसे अवश्य दण्ड दूँगा ।"

पर पार्वती बहिन ने प्रश्न जैसे सुना ही नहीं । उन्होंने अन्तिम अस्त्र का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया । बोलीं—"इस घर के लिए इतना मरती पचती हूँ उसका यह फल है । इतनी सेवा यदि भगवान की करती तो....." और उन्होंने आँसू पोंछे ।

वैजंती को लगा कि उसके पशु भूखे मरेंगे । यह तो रोने बैठ गई । कुट्टी उसे ही काटनी पड़ेगी । वह उठी । पशुशाला में गई । पशु उसे देखते ही रँभा उठे, जैसे कह रहे हैं —"माँ, तुम हमें कैसे भूल गई ?"

उनकी रँभान ने वैजंती के नयनों में जल ला दिया । उन्होंने उनके मस्तक पर हाथ फेरा और फिर जैसे सब कुछ भूलकर कुट्टी काटने में जुट गई । जब सब लोग भोजन कर चुके, बर्तन मँज चुके, तब भी वह कुट्टी काट रही थी और जितनी कटती जाती थी पशुओं के आगे डालती जाती थी ।

भोजन को उससे किसी ने कहा नहीं ।

जब सब प्रकार से निश्चिन्त हो उसने रसोई में जाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि आज भोजन उसके लिए कुछ नहीं बचा ।

उसे विचारमग्न गम्भीर मुद्रा से अपनी कोठरी की ओर जाते देख बुवा जी ने सन्तोष की साँस ली।

[४]

भाई रामावतार का वैजंती के प्रतिपक्ष की भावना से बोलना बहिन पार्वती को भाया नहीं। उन्हें लगा कि रामावतार ने उसे अपने यहाँ बुलाकर उसका अपमान किया है और वह बहिन उसे सहेगी नहीं।

अबतक वह केवल वैजंती की विरोधिनी थी, अब रामावतार की विरोधिनी भी हो गई। इसलिए उसका झुकाव सहदेई और रामाधीन की ओर हो चला।

जब से यह ज्ञात हुआ है कि रामाधीन रामसरन-विरोधी गवाहों में से एक है तब से दोनों परिवार वैरी हो चले हैं। बोलचाल, आना-जाना प्रायः सभी बन्द हो गया है। कारिन्दा सा'ब की अनुमति से रामाधीन ने अपना द्वार दूसरी ओर फाड़ लिया है। और आँगन में एक दीवार खिंच गई है।

पर बुवा दोनों परिवारों को समान दृष्टि से देखती हैं। वे जैसी राम-विलास और रामसरन की बुवा हैं वैसी ही रामाधीन की भी। और रामाधीन को पिता का प्रेम प्राप्त नहीं है, इसलिए पिता की बहिन ने अपने प्रेम-दान से उस न्यूनता की पूर्ति करनी प्रारम्भ कर दी है।

बुवा पार्वती का भविष्य एक योजनानुसार चलने पर ही उन्हें सुख दे सकेगा। और इस योजना का मुख्य अंग था रामसरन को सजा हो जाना।

ऊपर से वे रामसरन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हैं। पड़ोस की नारियाँ जब रामसरन की प्रशंसा करती हैं, तो वे भावावेश में रो पड़ती हैं पर हृदय से चाहती हैं, वैजंती और रामावतार का गर्व चूर्ण कर देना। यह होना तभी सम्भव है जब रामसरन को जेल हो जाय! रामावतार की वृद्धावस्था और वैजंती की युवावस्था को वह उजाड़ सुनसान देखकर अपने हृदय को शीतल करना चाहती हैं। इससे कम से वे सन्तुष्ट न होंगी।

बुवाजी ने पीढ़े पर बैठ ननको को अपनी गोद में प्यार से लिटा लिया। पूछा—"क्या हालचाल है बहू?"

"क्या बताऊँ बुवाजी, परमात्मा की गति विचित्र है।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"पुलिस और कारिन्दा उनके सिर हो रहे हैं; रामसरन के विरुद्ध गवाही दो नहीं तो तुम्हें जेल दे देंगे।"

"अरे राम, ऐसा अन्याय है !"

"बुवा जी, बाप भाई ने उनके साथ चाहे जो किया हो, उनका दिल बहुत साफ है, पर पुलिस उन्हें ...।"

और सहदेई रुवासी होकर रह गई।

"बहू दुखी न हो। जो बदा है होगा तो वही। उसे कोई भी नहीं रोक सकता। यदि पुलिस वाले कहते हैं तो गवाही देनी ही पड़ेगी।"

उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता प्राप्त हुई। उन्हें लगा कि जब भाई भाई के विरुद्ध गवाही देगा, तो हाकिम को विश्वास अवश्य होगा और रामसरन को सजा अवश्य होगी।

तभी रामाधीन बोझ भर घास लिये भीतर आया। बुवाजी को, उस घर की बुवाजी को वहाँ देखकर ठिठक गया। शत्रु-शिविर का व्यक्ति उसके यहाँ क्यों ? वह बुवा के इस नवीन प्रेम से भयभीत था और इन बच्चों की माँ ने उसे ऐसा स्थान दे रक्खा है जैसे कि वह बड़ी हितू हो। वह सहदेई से असन्तुष्ट ही नहीं क्रुद्ध हो गया, और उन्हीं नेत्रों से उसने बुवाजी की ओर देखा।

अनुभव की कमी बुवा के पास न थी। उन्होंने रामाधीन के कुछ कहने से पहले अपनी मैत्री का प्रमाण दिया। बोलीं—"रामाधीन, पुलिस से बिगाड़ न करना बेटा, वे जैसा जो कुछ कहें, वही हाकिम के सामने कह देना।"

रामाधीन के लिए बुवाजी पहेली बन गईं। यदि वह कारिन्दा आदि का आभारी न होता तो इतना मनमुटाव होने पर भी रामसरन के विरुद्ध झूठी गवाही देने को तैयार न होता; और यहाँ ये उस घर की मालकिन बुवा जी हैं जो रामसरन के विरुद्ध उसे गवाही देने को उकसा रही हैं।

बोला—"बुवा जी, क्या करूँ। मेरी समझ में नहीं आता। पर जान पड़ता है कि पुलिस को अप्रसन्न न कर सकूँगा।"

"बेटा, बुद्धिमानी यही है। बाप भाई किसी के नहीं होते। पुलिस-पटवारी से गाँव में रह कर काम पड़े बिना नहीं रहता। उनसे बिगड़ना ठीक नहीं। तुम जिसका काम करोगे वही तो तुम्हारा काम करेगा ?"

रामाधीन ने सोचा—बुवा बाप और भाई दोनों के विरुद्ध हैं। बात क्या है ? पर इसमें उसे अधिक रुचि नहीं हुई। अभी पशुओं के लिए चारा काटना है। जब वे लोग साथ थे तो सब काम हो जाया करता था और यथेष्ठ समय विश्राम को मिल जाता था। पर जब से वह पृथक हुआ है घर अवश्य छोटा हो गया है, पर उत्तरदायित्व बढ़ गया है और काम तो जानें दसगुना हो गया है। नर-नारी दोनों लगे रहते हैं पर बस ही में नहीं आता।

इस कार्य-भार के नीचे वह अपने को दबता अनुभव कर रहा है। सामर्थ्य से अधिक परिश्रम उसे पीसे डाल रहा है।

बोला—"बुवाजी, रामसरन के विरुद्ध चाहे मैं गवाही दूँ, चाहे सारा गाँव गवाही दे, चाहे उसे सज़ा ही हो जाय, पर सारा गाँव जानता है कि रामसरन ने जो किया ऐसा बुरा नहीं किया।"

बुवाजी को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। जो व्यक्ति रामसरन की फाँसी की जंजीर में कदाचित कदाचित् सबसे दृढ़ कड़ी बनने जा रहा है वही कह रहा है कि रामसरन ने कुछ बुरा नहीं किया।

क्या हुआ ये अलग हो गये हैं, पर हैं तो सब के सब एक से। भले बुरे का ज्ञान किसी को नहीं है। कारिन्दे की हत्या का प्रयत्न किया पर यह कह रहा है कि कुछ बुरा नहीं किया।

रामाधीन ने बुवा जी की मुख-मुद्रा देखी और फिर कुछ देर चिन्तित रहा। पत्नी की ओर, और फिर पहाड़ सी पड़ी घास की ढेरी की ओर देखा। यह सब उसे ही काटनी है। एक हल्की आह मुख से निकल गई। बोला—"दादा ने बहुत बड़ा वकील किया है !"

"हाँ, सुना तो है।"

"बुवा जी, इतना रुपया कहाँ से आया ?"

बुवा जी ने भी प्रश्न किया —"इतना रुपया कहाँ से आया ?"

"दादा के पास तो था नहीं....।" तभी उसके पशु रँभाने लगे। उनके लिए चारा! वह बुवा जी का उत्तर सुने बिना ही वहाँ से चला गया। उसके जाने के बाद सहदेई ने प्रश्न दुहराया—"क्यों बुवा जी, इतना रुपया कहाँ से आया ?"

"क्या पता बहू, तिरिया चरित्तर तुम नहीं जानती। और नहीं तो किसने दे दिया।"

सहदेई को विश्वास न हुआ। बोली—"बुवा जी, कहीं से आया हो, पर ससुर जी के पास तो था नहीं।"

"नहीं बहू, इन मर्दों का कोई ठिकाना नहीं। छिपाकर रक्खा हो तो किसे क्या पता ? अब अपने प्यारे बेटे के लिए निकाला है।"

सहदेई को ससुर का यह पक्षपात साधारण अवस्था में बुरा लगा होता, इस समय बुवा जी ने यह इस ढंग से कहा कि सहदई भी उससे सहमत न हो सकी। और उसने उसका कोई उत्तर न दिया।

बुवा जी की तीव्र इच्छा थी कि सहदेई से पूछे—इस मुकदमे का परिणाम क्या होगा ? क्या रामाधीन के गवाही देने पर भी रामसरन छूट जायगा ? हाँ, भैया ने बड़ा वकील तो किया है और उन्हें लगा कि भैया को वह रुपया न मिला होता तो निस्सन्देह रामसरन को जेल जाते और वैजंती का मानमर्दन होते वह देखती।

पर वे पूछ नहीं सकीं। कहीं इससे उनकी रामसरन-विरोधी प्रवृत्ति प्रकट न हो जाय। वे देख रही हैं कि बैरी होने पर भी रामसरन के प्रति रामाधीन में कुछ शेष है। कम से कम उन्हें सासरे लौटा देने के लिए पर्याप्त है। और वे पुनः उस नरक में जाना नहीं चाहतीं।

[५]

पेशी के एक दिन पहले सरकारी गवाह पुलिस के संरक्षण में नगर ले जाये गये। जाने से पहले रूपमती एक बार उन्हें स्मरण कराने आई।

परमात्मा और धरम अब भी संसार में है और उन लोगों के भी बालबच्चे हैं।

पेशी का अन्तिम दिन था। सब लोगों की गवाही हो चुकी थी। लोग सोच रहे थे कि पुलिस का पढ़ाया-सिखाया सब व्यर्थ गया।

माथुर ऐसी खोद-खोद कर बातें पूछता था कि लोगों को सत्य उगल देना पड़ता था। सब चकित इस बात से थे कि उसे उनके वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का ऐसा पता था जैसे कि वह उनमें सम्मिलित रहा हो। यह भय इतना गहरा पैठा कि अन्तिम गवाह बड़ी सरलता से इधर-उधर फिसल गये।

अनुभव सबने किया कि रामाधीन की आत्मा गवाही में नहीं है।

सरकारी वकील ने ध्यान दिलाया कि यह गवाह अपराधी का सगा भाई है।

अधेड़ जज ने सिर उठाकर भाई के विरुद्ध गवाही देने वाले भाई को देखा।

गंगाजल उठाते ही रामाधीन का हृदय काँप उठा। इसका अर्थ है कि यदि वह झूठ बोलता है तो उसका समस्त परिवार गंगा माई का कोप-भाजन होगा। कचहरी में गंगाजल गंगाजल नहीं रह जाता, यह मानने को उसका हृदय प्रस्तुत नहीं हुआ। मनमें बलिष्ठ धारणा उठी। चाहे कुछ हो, जब सच कहने की सौगंध खाई है तो सच ही कहूँगा।

सरकारी वकील ने जज को प्रभावित करने के लिए पूछा—"रामाधीन, जब रामसरन कारिंदा सा'ब को मारने के लिए टूटा तब तुम कहाँ थे।"

रामाधीन ने जैसे तोते की भाँति कहा—"अपने खेतों में।"

सरकारी वकील ने नेत्र फाड़ कर गवाह की ओर देखा। पूछा—"तुम्हारा खेत उस स्थान से कितनी दूर है?"

"कोई डेढ़ मील।"

जज ने पूछा—"तो तुम रामसरन के विरुद्ध गवाही देने क्यों आये?"

"हुजूर," उसने कहा—"कारिन्दा सा'ब गाँव के मालिक हैं, उन्होंने जो सिखाया वही कहने आया था। पर उन्होंने यह नहीं बताया था कि यहाँ गंगाजली उठानी पड़ेगी। नहीं तो मैं कभी न आता।"

"तो तुमने अपराधी को प्रहार करते नहीं देखा ?"

"जी नहीं।"

सरकारी वकील ने कहा—"गवाह बिगड़ गया है।"

पर समस्त अभियोग धाराशायी हो चुका था।

जज ने रामसरन से पूछा—"क्या तुम्हारे हाथ में इतनी शक्ति है कि कारिन्दा सा'ब के मुख से एक थप्पड़ में रक्त निकाल दे ?"

रामसरन ने जज की ओर देखा।

"बोलो।"

"हुज़ूर, यह शक्ति की बात उतनी नहीं है। समय और चोट के ठीक बैठने की बात है; यदि कारिन्दा सा'ब वैसे ही बैठ जायँ और हुज़ूर मैं आपको अपने पिता के समान मानता हूँ, आप को उसी प्रकार गालियाँ दें और मारने की धमकी दें, तो हुजूर वह तमाचा दूँ कि रक्त की तो बात क्या दाँत बाहर निकल पड़ें।"

जैसा अक्खड़ रामसरन था, वैसा ही उसका उत्तर हुआ। उसके समर्थकों के हृदय में खलबली मच गई। माथुर ने भी समझा कि बना-बनाया काम उसने बिगाड़ दिया। तीव्र दृष्टि से रामसरन की ओर देखा। पर रामसरन जैसे यह उत्तर देकर फूला नहीं समा रहा था। वह यदि अब जेल भेज दिया जाता है तो उसे कोई चिन्ता नहीं। वह निर्भीकता से जज के सम्मुख बोल लिया है।

दूसरी ओर जज के मस्तिष्क में एक तुलना चलने लगी। उनका पुत्र है कितना पढ़ा-लिखा। उसके ऊपर उन्होंने कितना व्यय किया है।

उसने उन्हें धमकी दी है; यदि वे दो सहस्र रुपये उसे एक सप्ताह में नहीं दे देंगे तो वह उनके पीछे बदमाश लगा देगा। और यहाँ यह पिता है, जिसने कदाचित् सदा अपने पुत्र को मारा-पीटा है, एक पैसा उसकी शिक्षा पर व्यय नहीं किया और पुत्र है कि उस पिता की मान-रक्षा के लिए कानून के रक्तिम जबड़े में सिर देने को तैयार!

उन्होंने ईर्ष्या की दृष्टि से रामावतार की ओर देखा।

तीन घण्टे बाद जब उन्होंने निर्णय सुनाया तो रामसरन को एकदम छोड़ दिया। हाँ, कारिन्दा सा'ब को वैयक्तिक फौजदारी दावा करने का अधिकार स्मरण करा दिया। पर सुझा भी दिया कि अच्छा यही होगा कि वे लोग परस्पर समझौता कर लें।

जब लोग कचहरी से निकले तो रामावतार रामसरन को नहीं, रामाधीन को छाती से लगाकर रो पड़े।

[६]

रामसरन को पिता के इस व्यवहार से एक असन्तोष हुआ; विशेषतया जब कि रामाधीन उसके विरुद्ध गवाही देने के लिए खड़ा हुआ था। तब उससे इतना प्यार जताने की आवश्यकता ?

उसके मन में पिता के विरुद्ध एक गाँठ पड़ गई, जो धीरे-धीरे समस्त संसार के प्रति असन्तोष में परिवर्त्तित हो गई।

वह जानता है कि रामाधीन पृथक हो गया है। उसने पिता को सर्वस्व बाँट देने को विवश किया है। वह भी अब पृथक भाग का स्वामी है। यदि अब भी रामाधीन इतना प्यारा है तो वे बड़ी प्रसन्नता से जाकर उसके साथ रहें।

इस विष के एक कण ने उसके समस्त अस्तित्व को विषैला कर दिया। उसकी स्वतंत्रता ही उसे ज़हर लगने लगी। इससे तो वह जेल में ही सुख से था। जो था पराया था। अपनों का दंश उसे न सहना पड़ता था। जो पराये कह लेते थे उसमें क्या बुरा मानना !

छूटने से पहिले आशा-संचार से एक उत्साह उसमें जगा था : वह छूटेगा; बाहर की स्वतंत्र वायु का स्पर्श करेगा और सब ओर से...। नहीं, नहीं, कम से कम पिता की ओर से उसका स्वागत होगा।

और अब जब कि वह छूट गया है तो उसे लग रहा है कि वह स्वर्ग के शीतल सुखद वातावरण से नरक की धधकती ज्वाला में फेंक दिया गया है। इस ज्वाला को उसका हृदय तीव्रता से अनुभव कर रहा था।

अब स्वागत का स्थान एक ही रह गया था। और वह थी बैजंती। जेल

में अपने जीवन के क्षुधित क्षण उसी की कल्पना से उसने भरे थे। एक विचित्र रहस्यमय स्निग्ध वातावरण की कल्पना उसने की थी। पर कल्पना तो पिता के विषय में भी उसने भावपूर्ण की थी। उसने सोचा था, कि छूटते ही पिता उसे हृदय से लगा लेंगे और वह वहाँ उस गोद में सिर रख रो देगा।

पर वह नहीं हुआ। उसके आँसू नयनों में ही उबल कर रह गये। और पिता के प्रति विद्रोह उत्पन्न करने लगे।

उसने सोचा कि जब पिता का यह व्यवहार है तो क्या पता कि वैजंती की कल्पना भी कोरी कल्पना ही रह जाय। पिता की भाँति उसे भी उसकी आवश्यकता न हो।

इस विचार ने वैजंती को न केवल विराग का केन्द्र बनाया वरन् एक सीमा तक विरोधी बना दिया। यदि वैजंती उससे नहीं बोलेगी, तो वह भी नहीं बोलेगा।

अन्य लोगों ने उससे बोलना चाहा। पर हाँ, नहीं, के अतिरिक्त लम्बे वाक्य उसके मुख से नहीं निकले। लोगों ने समझा कि उसे और छेड़ना उचित नहीं।

और उसने समझा कि सभी लोग उसकी अवहेलना कर रहे हैं। उसे छुड़ा जैसे बड़ा उपकार किया हो। पड़ा रहने देते जेल में। हो जाने देते फाँसी। वह क्या किसी के पास भीख माँगने गया था? क्यों लगाया इतना रुपया? उसने क्या किसी से विनती की थी।

मार्ग में एक इक्का मिला। उसमें एक सवारी का स्थान रिक्त था। लोगों ने वृद्ध रामावतार को उसमें बैठा दिया। रामसरन, रामाधीन तथा अन्य चार-पाँच जने पैदल ही गाँव की ओर चले।

इस घटना ने भी रामसरन पर विपरीत ही प्रभाव डाला। लोगों ने उससे पूछा तो उसने सिर हिला दिया। पर इसके अतिरिक्त और वह करता भी क्या?

जब रामवतार बैठ कर चले गये तो उसके मन में उठा यहाँ भी

उसकी अवहेलना ! वह चार मास हवालात में रह कर आया है। जेल के कष्ट उसने उठाये हैं, इस सब की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया और उन्हें, उन्हें, जिन्होंने उसे छोड़ रामाधीन को हृदय से लगाया, उन्हें घर पहुँचने की शीघ्रता हो गई।

असम्भव है, नितान्त असम्भव है, वह ऐसे पिता के साथ मिलकर जीवन-यापन नहीं कर सकता। वह पहुँचते ही पृथक हो जायगा। जो मार्ग उनके प्यारे रामाधीन ने ग्रहण किया है वही वह भी ग्रहण करेगा, तभी कदाचित् उनके हृदय से लग सकेगा।

नहीं, उसे अब हृदय से नहीं लगना है। एक बार उनके लिए अपना जीवन जोखिम में डाल वह पाठ पढ़ चुका है। अब वह कोई सम्पर्क उनसे न रक्खेगा।

मार्ग में एक कुवें पर सब लोग ठहरे। पर रामसरन रुका नहीं, निरन्तर चलता रहा। एक ने कहा—"बहू से मिलने की शीघ्रता है।"

रामसरन उसके ऊपर, अपने ऊपर क्रुद्ध हो गया। वह सड़क से हटकर नीचे घूमने लगा पर उनके निकट न गया।

उसने सोचा—बहू! वह कौन सी अच्छी होगी। इन्हीं लोगों में तो रही है। नहीं, वह वैजंती की ओर नयन उठा कर भी नहीं देखेगा। उसे किसी से कोई वास्ता नहीं। वह छूटा क्यों ?

भगवानदास ने पुकारा—"रामसरन, आओ भाई, पानी पीलो।"

रामसरन वास्तव में प्यासा ही नहीं अत्यन्त प्यासा था। पर उसने एक बार सिर उठा कर उस ओर देख भर लिया। फिर मुख मोड़ दूसरी दिशा में टहल गया।

वह वैजंती की ओर देखेगा भी नहीं। उसे लगा कि वैजंती उसकी अवहेलना कर रही है। उसके हृदय में एक टीस हुई। पर नहीं, वह उसकी ओर देखेगा भी नहीं।

लोग चले तो वह भी पीछे पीछे हो लिया।

वे लोग इसी प्रकार की अन्य यात्राओं की चर्चा करने लगे।

रघुराज ने कहा—"हरिराम की बरात में भी ऐसा ही शीतल समय था क्यों न भगवान्? उस दिन हँसते-हँसते पन्द्रह कोस निकल गये; जान नहीं पड़ा। किरपालसिंह के कवित्त बहुत ही अच्छे रहे और ठाकुर के बिरहा।"

"हाँ भाई, जीवन भर याद रहेगी वह बरात।"

"हाँ, बरात ही याद रहेगी। जिन की बरात थी, परमात्मा ने उनमें से एक को भी न छोड़ा।"

फिर समस्त समाज पर जैसे उदासी छा गई। सब जगत् के मिथ्यात्व और मानव की संकुचित सीमा से प्रभावित हो गये।

"चार दिन का मेला है।"

"हाँ, भाई।"

"क्यों किसी की बुराई भलाई लें।"

पर रामसरन ने इन बातों में से किसी में रुचि न ली। वह अपने असन्तोष में घुलता रहा। वह स्वयं को अपने पिता पर, वैजंती पर क्यों लादे! वह घर जा रहा है, पर घर में उसका रहना अब नहीं हो सकता। वह घर छोड़ देगा। घर से निकल जायगा। पर वह चला जा रहा था।

[७]

घर पहुँच कर रामावतार ने रामसरन के छूटने की सूचना दी।

वैजंती का हृदय उछल पड़ा; किसोरी मुस्कराई और बुवाजी गम्भीर हो गई।

रामावतार ने रामाधीन की प्रशंसा की और कहा कि हरिसुन्दर अपनी ताई और भाई-बहिनों का बुला लावे।

हरिसुन्दर गया। सहदेई ने आना अस्वीकार किया, पर बाल-बच्चों को भेज दिया। बच्चों का उत्सव लाई-गट्टा से प्रारम्भ हो गया।

हरिसुन्दर ने कहा—"काका आ रहे हैं।"

सब ने कहा—"छोटे काका आ रहे हैं।"

उनके प्रत्येक 'काका' शब्द पर वैजंती का हृदय धड़क धड़क उठता था। यह क्या सत्य है? क्या वह वास्तव में आ रहे हैं? अथवा मेरा मन

रखने को ससुर ने यह कह सुनाया है।

यदि वे आ रहे हैं तो भैरव सच्चे हैं। उसे अपनी मानता पूर्ण करने को प्रस्तुत हो जाना चाहिए। उसने उस्तरे के समान तेज धारवाले चाकू को, जो बहुत दिनों से इस अवसर की प्रतीक्षा कर था, निकाला, धार की परीक्षा की और सन्तुष्ट होकर अपने पास रख लिया। एक कपड़े में पूजा की सामग्री बाँध तैयार हो गई। रामसरन को देखते ही वह भैरव की पूजा करने जायगी और उसके पश्चात्....... ।

स्वर्ग के थिरकते क्षणों की कल्पना उसके नयनों के सम्मुख साकार हो उठी।

ज्यों-ज्यों रामसरन के आने का समय निकट आता था, वैजंती की उद्विग्नता बढ़ती जा रही थी।

क्या वे वास्तव में छूट गये हैं? या यों ही ...। इससे आगे वह कल्पना नहीं कर पाती थी। आज उसकी समस्त तपस्या की पूर्ति और उसका फल उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। और वह देवता के चरणों में भेंट चढ़ाने को धीरे-धीरे अपना शृंगार करने लगी।

बुवाजी ने वैजंती को प्रसन्न होते देखा। उन्हें लगा कि उनकी गहरी हार होने जा रही है। वह पराजय, जिससे कभी उबरने की सम्भावना नहीं है।

परमात्मा है कि वैजंती पर और भगिनी का अपमान करने वाले रामावतार पर प्रसन्न है! अन्त में रामसरन को मुक्त कर ही दिया।

उनके हृदय में चूल्हे-चढ़ी खिचड़ी की भाँति एक खदकन होने लगी। उन्हें लगा: अब नरक-यंत्रणा अत्यन्त निकट है। इससे भीषण यातना उन्होंने अपने जीवन में कभी सहन नहीं की। जब परमात्मा के कोप से उन्हें पति से चिर-वियोग हुआ, तब भी उन्हें ऐसा दुःखानुभव नहीं हुआ।

उस समय वे रो सकती थीं इसीलिए दुःख आँसुओं से शीतल हो आया था। पर आज उनके लिए रोना असम्भव था। वे निरन्तर अपमान की ज्वाला से सुलगी जा रही थीं।

वैजंती थी जो तनिक भी उनकी ओर ध्यान नहीं दे रही थी। वह अपने में ही समा पाने-योग्य ध्यान और मनोयोग नहीं एकत्र कर पा रही थी।

उसके सम्मुख एक सुनहरा पर्वत था, जो प्रतिक्षण निकट आता जा रहा था, और उस पर प्रणय-मद से छलकता मोहक चित्र लटक रहा था; उसमें रामसरन मनमोहन बनकर एक लता की जाली की ओट में से निकल रहा था। वैजंती उसी रामसरन पर अपनी दृष्टि लगाये मुग्ध बैठी रही।

रामसरन के स्वागत के लिए न हार थे, न बाजे। ग्रामनिवासी भी पुलिस और राजा के भय से, जो अब उनकी प्रकृति बन गई थी, उस परिवार की प्रसन्नता में सम्मिलित नहीं हो सकते थे। घर में कुछ सजाना न था। घर आने पर उसे रक्खा हुआ भोजन दिया जाने को था, और वह था, एक बड़ा लोटा गुड़ का शर्बत, एक अमावट, भुनी हुई अरहर और बहुरी।

यही एकत्र कर उसकी भाभी किसोरी अपने देवर की प्रतीक्षा कर रही थी। जेल से आया हुआ रामसरन कैसा है, यह जानने की इच्छा नरों से अधिक पड़ोस की नारियों को थी।

यदि वह दिन में आता तो चारो ओर से वे देखने लग पड़तीं। उसका कोई भाग जेल में छूट नहीं गया है, इसका भलीभाँति लेखा-जोखा कर लेतीं। पर रामसरन के आने में देर हो रही थी और अँधेरी घिरी आ रही थी। इसलिए उनकी उत्सुकता भी स्थगित हो गई।

जिस समय रामसरन घर पहुँचा, उसकी दशा विचित्र थी। वह सब से असन्तुष्ट था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अन्धकार में जा चुपचाप घर में बिना किसी से बोले सो जायगा।

उसका जेल में रहना अब तक लज्जा का विषय नहीं था, पर गाँव ने जैसे उसे लज्जा का विषय बना दिया। उसके लिए अब लज्जा-अलज्जा कैसी? वह अब इस घर में रहना नहीं चाहता। वह विरक्त हो गया।

उसे लगा कि वह अपना मुख किसी को नहीं दिखा सकता। इस विचार से उसका असन्तोष और भी गहरा हो गया।

रामसरन को आया देख बुवा जी शकुन के लिए एक लोटा पानी लेकर आगे बढ़ीं और उसे रामसरन के सिर पर चार-पाँच बार उतार, घुमाकर

बाहर डालने चली गईं।

वैजंती ने जो पति को देखा तो उसका हृदय उछल पड़ा। जी में जाने क्या-क्या आया। पर जिन भैरव की कृपा से उसे आज यह दिन प्राप्त हुआ है, उन्हें क्या वह अपने सुख के क्षणों में भूल जायगी। उसने जो मनौती मानी है, उसे पूर्ण करेगी, तभी अपने पति का स्पर्श करेगी।

वह अपने हृदय के निकट रक्खी पूजा की सामग्री को हाथ से सँभाल बाहर की ओर चली। वह जा रही थी कि मार्ग में लौटती बुवा जी मिलीं। उसके प्राण सूख गये।

वे चीखीं, जिससे रामसरन सुन ले—"अरी अब तो रामसरन आ गया है, घर में बैठ। अपने मन की बहुत कर ली तैंने।"

बुवा जी ने जो सोचा था वही हुआ। रामसरन ने पूछा—'क्या हुआ बुवा जी, कौन है ?"

"है कौन बेटा ? तेरी बहू है। इसके साथ ये दिन जैसे कटे हैं मैं ही जानती हूँ। ऐसा तिरिया चरित्तर तो मैंने कहीं देखा नहीं। आज भी अभी कहीं चली जा रही थी। अब मैंने डाटा है, पर मुझे पता है कि वह सुनेगी नहीं। कभी सुना है कि आज ही सुनेगी।"

जो असन्तोष और क्रोध रामसरन में वास्तव में पिता और भाई के विरुद्ध था वह सब का सब वैजंती के विरुद्ध विशेष रूप से कार्यशील हो उठा। उस पर एक उन्माद चढ़ आया। वह तेज़ी से वैजंती की ओर बढ़ा और जाकर उसका कण्ठ पकड़ लिया। वैजंती उसी स्थान पर बैठ गई।

पर तभी विरक्ति का झोंका आया। उसे वैजंती से क्या वास्ता ? वह कहीं जाय, कुछ करे।

वह ठीक ही समझ रहा था। वैजंती की कल्पना जैसी उसने की थी वैसी ही वह निकली। उसने वैजंती को छोड़ दिया इतनी तेज़ी से, जैसे कि गर्म लोहे पर से हाथ हटाया हो।

इस ऊपरी विरक्ति के नीचे उसमें एक कुरेदन उत्पन्न हो गई। जिस प्रकार रेल के जुड़े डिब्बे पृथक होने का प्रयत्न करते हैं, पर जंजीर की

लम्बाई की सीमा आने पर पुनः एक दूसरे की ओर खिंच आते हैं उसी प्रकार रामसरन का राग जाग्रत हो उससे वैजंती में अधिक रुचि लेने का आग्रह करने लगा।

उसके मन में एक सन्देह घर कर गया। पर इसी सन्देह ने उसकी विरक्ति का आवरण भेद उसके राग को सजग बना दिया।

बुवा जी ने कहा—आज तो घर बैठ। क्या उसकी वैजंती नित्य रात्रि को कहीं जाती थी? कहाँ जाती थी? किसके पास जाती थी?

यह सन्देह उसकी चालक शक्ति बन गया। वह ईर्ष्या से जल उठा और वैजंती पर दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया।

वह भीतर की ओर बढ़ा, पर उसकी समस्त शक्तियाँ पौरी में अँधेरे में बैठी वैजंती पर पहरा दे रही थीं।

वह जान लेना चाहता था कि वह कौन है जिसके पास वैजंती जाती है। बैजंती के साथ अन्य पुरुष की कल्पना से उसका शरीर धधक उठा।

वह एक बार जेल से लौट आया है। कोई चिन्ता नहीं। आज वह कुलटा वैजंती के प्रेमी का खून किये बिना न मानेगा। यदि उसके भाग्य में फाँसी पर झूलना ही लिखा है तो वह झूलेगा, पर इस अपमान को स्वीकार न करेगा। भाभी ने उससे भोजन का आग्रह किया पर उसने उससे सिर दर्द का बहाना कर टाल दिया। बुवा ने कहा—ठीक है बेटा, थके हो; थोड़ा लेट रहो; सुस्ता कर फिर खाना।

वह उठ कर द्वार के निकट अन्धकार में इस प्रकार जा लेटा कि वैजंती की प्रत्येक गति पर लक्ष्य रख सके।

अकेला दीपक चौके में जल रहा था। थोड़ी देर बाद रामविलास और रामावतार भोजन करने बैठ गये। शेष स्थान में अन्धकार था।

वैजंती ने सोचा, अवसर ठीक है, चलूँ; जब तक वे लोग भोजनादि से निवृत्त होंगे, लौट आऊँगी।

एक चिन्ता उसके मन में थी। रामसरन ने भैरव की भेंट चढ़ाने से पहले ही उसे स्पर्श कर लिया है। पर इस विषय में वह विवश थी।

भैरव सर्वव्यापी हैं, वे सब देखते हैं, उसके अपराध पर ध्यान न देंगे।

वह चुपचाप उठी और धीरे-धीरे घर से बाहर निकली। पीछे फिरकर देखा। कोई उसके पीछे नहीं आ रहा है। उसने सन्तोष की साँस ली और तेज़ डग रखकर इमली की ओर चली।

रामसरन देख रहा था। उसने मन में कहा—'अच्छा कुलटा, चल तू कहाँ चलती है।' उसने नयन लाल किये, चभुरी बँधी और हाथ फड़क कर प्रहार करने को उद्यत हो गये। पर उसने अपने पर संयम रक्खा और चुपचाप सावधानी से पीछा किया।

देखाः चारों ओर घना अन्धकार है। एक भी दीपक कहीं टिमटिमाता दिखाई नहीं देता। आकाश में तारे भले ही खिले हों पर वृक्षों के नीचे रात्रि परिपूर्ण थी। वहाँ अन्धकार जैसे और भी घनीभूत हो, उनके प्रकाश से भयभीत हो, आ छिपा है।

उसने देखा कि इमली के निकट वह नारी-मूर्ति खड़ी हो गई है। वह घूमकर उस इमली के ओट में हो गया।

वैजंती ने दियासलाई जलाई। उसके प्रकाश में रामसरन ने देखा-वैजंती बैठ गई है। भैरव के सम्मुख उसने घी का दीपक जला दिया है।

क्या समझकर रामसरन पीछे-पीछे आया था और उसने यहाँ क्या पाया। वह स्तब्ध अपनी पत्नी-द्वारा की जाती भैरव-पूजा देखता रहा। वैजंती ने पूजा के सब सुगन्धित द्रव्य तथा मिष्टान्न उन पर चढ़ाये और फिर एक चाकू निकाल लिया।

चाकू का क्या होगा? रामसरन और स्तब्ध, और उत्सुक हो गया।

वैजंती बोली—"भैरव देव, तुम्हारी दया से मेरे स्वामी लौट आये हैं। उन्होंने मुझे स्पर्श कर लिया है। कैसे? वह स्वामी तुम से छिपा नहीं है। देव, तुम उनके अपराध को क्षमा करो और भेंट स्वीकार करो।"

रामसरन ने सुना। उसका हृदय उसके पंजर में बैठता प्रतीत हुआ। वह द्रवित हो गया। नयन गीले हो आये।

उसने देखा कि चाकू का फल वैजंती के बायें हाथ की उँगली में

धँस गया है, और उसमें से बूँद-बूँद रक्त निकल कर भैरव के सिंदूर पर टपक रहा है। उसकी इच्छा हुई कि वह जाकर वैजंती के चरणों में लोट जाय। उसने उसे छुवा क्यों ?

पर ऐसी पुजारिन की देव-पूजा में बाधा डालने का साहस उसका न हुआ। उसने अपने को वैजंती से अत्यन्त क्षुद्र पाया।

रक्त देवता पर टपकाने के पश्चात् वैजंती ने उँगली पोंछ डाली। पट्टी बाँधी। और फिर भैरव देव को मस्तक टेक कर उठ खड़ी हुई।

अब रामशरन से न रहा गया। उसे लगा कि उसने मन और कर्म दोनों में जो किया है अक्षम्य किया है। उसका हृदय उमड़ पड़ा। वह अपने आपको रोक न सका। दौड़ कर वैजंती के पैरों पड़ा। "मुझे क्षमा करो, बैज।"

वैजंती चौंकी; पर बोली पहिचान ली। भैरव की मूर्ति के सम्मुख अन्धकार में पति को हृदय से लगाती हुई बोली—"क्यों मुझे नरक में ढकेल रहे हो तुम ?"

पर उसने अनुभव किया कि उसका स्वामी निरीह शिशु की भाँति उसकी गोद में सिसक-सिसक कर रो रहा है। जिस प्यार का रामसरन भूका था, पिता से जिसे न पाकर वह झुंझला उठा था, उसे यहाँ इतने परिमाण में एकत्र देख वह रुक न सका।

उसने आत्म-समर्पण कर दिया। उसने उस पट्टी बँधी उँगली को बार-बार चूमा और सिर से लगाया।

उसे निश्चय हो गया कि वह अवश्य वैजंती के ही सतीत्व के प्रताप से छूट कर आ पाया है।

जिस इमली के नीचे बालपन बिताया था, उसी की छाया में इस बालकपन की समाप्ति पर वैजंती ने कहा—"चलो, घर चलें। अभी तो तुम ने एक दाना भी मुँह में नहीं डाला है।"

"और तुमने ?"

"मेरा तो व्रत है।"

"कैसा ?"

"तुम आये जो हो।"

रामसरन आनन्द में नहा उठा।

दोनों जने अब उस घर को चले, जो दो क्षण पहले रामसरन के लिए नितान्त अनाकर्षक था परन्तु अब उसके अस्तित्व के सम्पूर्ण आकर्षण का केन्द्र बन गया था।

[८]

दूसरे दिन जब रामसरन गाँव में जागा तो समस्त संसार उसके लिए दूसरा हो चुका था। पिता के प्रति उसका असन्तोष धुल गया था। रामाधीन के प्रति कृतज्ञता और प्रशंसा के भाव उसमें उदय हो आये थे। घर के प्रति जो विरक्ति थी वह अनुरक्ति में परिवर्तित हो गई थी।

प्रातःकाल जब वह घर से बाहर निकला तो उसे लगा कि समस्त संसार जैसे मुस्करा रहा है। वृक्षों की चोटियों पर आज उसने जैसा आनन्द झड़ता अनुभव किया, वैसा उसने कभी नहीं किया था।

उसे अनुभव हुआ कि वह वास्तव में स्वतंत्र हो गया है। परतंत्रता से जो एक झिझक उसमें अपने प्रति, दूसरों के प्रति उत्पन्न हो गई थी, अब तिरोहित हो गई। वह पुनः साधारण मानव बन गया। उसका हृदय उछल पड़ा।

वह लाठी ले अपने खेत में घूमने निकल पड़ा। इतने दिनों की बिछुड़न के बाद उन भूमि-खण्डों से भेंटने को उसका हृदय लालायित हो उठा।

× × ×

रामाधीन की गवाही बिगड़ने से कारिन्दा सा'ब की जो हार प्रारम्भ हुई वह रामसरन के छूटने से पूर्ण हो गई। उन्होंने अनुभव किया कि उनके अधिकारों और उनकी सफलताओं की सीमा है।

उन्हें लगा कि इस सीमा के भीतर उन्हें अपने व्यवहार और समस्त सांसारिक मूल्यों और मानों को पुनः योजित करना पड़ेगा। वे सोचने को बाध्य हुए।

यह सही है कि माथुर अच्छा वकील है और उसने गवाहों को तोड़ दिया। पर माथुर कहाँ से आया? इतना रुपया रामावतार के पास क्या था? विश्वास नहीं होता।

और फिर गवाहों का साधारण रुख! उनमें कोई उत्साह नहीं था। ऐसा लगता था कि वे माथुर-द्वारा विविध प्रश्न किये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हों जिससे सच्ची बात कह अपना पिण्ड छुड़ावें।

क्या वास्तव में कोई शक्ति इस सब के पीछे थी? क्या वह शक्ति गाँव में प्रवेश पा गई है? एक सिहरन उनके शरीर में दौड़ गई।

वे अधेड़ थे। जीवन का आधे से कहीं अधिक रह आये थे। अब चाहते थे कि आगे भी वैसे ही निभ जाये।

हठात् उनके सम्मुख आया कि रामसरन के पक्ष में एक अस्पष्ट वातावरण गाँव में बनाया गया है। वे उसे अनुभव कर रहे थे। हरिनाथ ने उसकी सूचना दी थी। यदि उसका वास्तव में अस्तित्व है तो वह शक्ति उनके और पुलिस के विरुद्ध सफल हुई है।

वे सोच रहे थे और टहल रहे थे। पर रामसरन को अछूता छोड़ देने से उनका रोब जाता है। उन्होंने सोचा था कि राजा सा'ब का कुछ व्यय न होगा और रामसरन को दण्ड मिल जायगा, इसीसे उसे पुलिस का मुकदमा बनवा दिया था। पर अब यदि रामसरन के विरुद्ध वैयक्तिक दावा करना होगा तो वे या तो अपनी जेब से व्यय करें अथवा जमींदारी से लें। उन्हें विश्वास है कि राजा सा'ब कभी यह मुकदमा लड़ने की स्वीकृति न देंगे। ज़मींदारी वैसे ही खर्च का बोझ सँभालने में असमर्थ है।

तो क्या किया जाय? क्या उनकी प्रतिष्ठा गाँव के बीच इस प्रकार खण्डन स्वीकार करे।

उन्होंने जूते पहिने, मोटा बेंत हाथ में लिया और फिर सड़क की ओर घूमने चल दिये। सड़क के उस ओर आम का एक बाग़ था और उससे कुछ दूर आगे चल कर गाँव। कारिन्दा सा'ब ने सोचा—यहाँ तक तो आये ही हैं, चलो गाँव का भी दौरा कर चलें।

गाँव का ध्यान आते ही उन्होंने ठाकुर संग्रामसिंह का द्वार कल्पना में देखा। वे वहाँ बैठे हुक्का पीते होंगे। पहुँचते ही कारिन्दा सा'ब के लिए पलंग बिछाया जायगा।

उनमें एक उत्साह आ गया। अपनी टूटती प्रतिष्ठा पर से दृष्टि हट गई। वे दुखी से गम्भीर हुए और गम्भीर से प्रसन्न हो गये।

वे बाग़ में होकर चले जा रहे थे कि दूर पर एक ओर से कुछ शोर-सा उन्हें सुनाई दिया। उन्होंने उसे विशेष महत्व नहीं दिया पर जब बाग़ से बाहर निकले तो एक ओर से खेतों में धूलि उड़ती आती देखी, और शीघ्र ही उस धूलि में एक भैंसे का रूप प्रत्यक्ष हो आया। भैंसा था विशालकाय। लम्बे पैने सींग और काले मस्तक के बीचोंबीच छः इंच गोल सफ़ेद टीका।

वे सब समझ गये। आसपास के गाँवों में यह मरखना भैंसा प्रसिद्ध था। कारिन्दा सा'ब को लगा कि अब उनका समय निकट है। भैंसे की सींगों द्वारा छेदे अथवा उछाले जाने की कल्पना उन्होंने करली। वे घबरा गये।

दूर से आवाज़ आई—"बचना भैया।"

और कारिन्दा सा'ब फिर बाग़ की ओर भागे। पर उनका भागना ही ग़ज़ब हो गया। भैंसे ने उन्हें देख लिया। वह खेत छोड़ उनके पीछे मुड़ गया।

कारिन्दा सा'ब भाग रहे थे। भैंसे के मार्ग-परिवर्त्तन का उन्हें पता न था। बाग़ में घुस जब उन्होंने घूमकर देखा तो भैंसे को लगभग अपने ऊपर पाया। तभी उन्होंने उसकी हुंकार सुनी। वे तुरन्त एक वृक्ष के पीछे साँस रोक सन्न खड़े हो गये।

उन्होंने बड़ा जोखिम लिया था। यदि भैंसा उन्हें उस वृक्ष के पीछे देख पाता तो उनका अन्त होने में विशेष सन्देह न था।

पर अवसर ने घटना की दिशा में परिवर्तन कर दिया। बाग़ के हलके अँधियारे में भैंसे की दृष्टि ने उन्हें खो दिया।

वह खड़ा हो गया। शिकार को हाथ से निकला देख और भी क्रुद्ध हुआ, झुँझलाया। सिर उठा, आँखें फाड़, कान खड़े कर चारों ओर देखा। दो क्षण वह इस अवस्था में स्थिर रहा, फिर एक ओर को तेज़ी से दौड़ चला। कारिन्दा सा'ब ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। पर ध्यान देने पर देखा कि एक दस-बारह वर्ष का बालक है; उसी के पीछे भैंसा पड़ गया है। वे इतने भयभीत थे कि मुख से शब्द न निकला। उनकी इच्छा थी कि लड़के से किसी वृक्ष के पीछे छिपजाने को कह दें; पर बोलने में असमर्थ रहे।

भय था कि आवाज़ सुन कर भैंसा लौट न पड़े।

वह बालक घबराकर बाग़ से बाहर भाग चला। भैंसे ने उसका पीछा किया। कारिन्दा सा'ब ने समझा कि वह अब बच नहीं सकेगा। उत्सुकता उन्हें वृक्ष के पीछे से खींच लाई। वे बाग़ में उनके पीछे-पीछे चले। बाग़ से बाहर निकलते भयभीत थे।

कल्पना थी कि वे उस बालक को मरा, कुचला हुआ पायेंगे। वह भैंसा अपने शिकार को सींगों से उछालकर उसके शरीर पर अपने पैर रख देता था। ओह वह भैंसा! वे पसीने से नहा गये। उसके भय से उन्हें बाग़ के बाहर निकलने का साहस न हुआ। वृक्षों की आड़ से खेतों की ओर देखा। यह जानकर आश्चर्य हुआ कि भैंसा भाग नहीं रहा है, एक ही स्थान पर खूब धूल उड़ रही है और वह बालक कुछ दूर खड़ा उस धूल की ओर मुग्ध देख रहा है।

साहस बढ़ा। वे उस बालक के निकट आ गये। दूर से ही देखा कि भैंसा ज़मीन पर पड़ा ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा है और उठने के प्रयत्न में दो बार असफल हो चुका है।

जिस मनुष्य ने इस पशु दानव को पराजित किया है, वे उसके निकट पहुँचे तो उन्हें अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने साश्चर्य देखा कि वह वही रामसरन है जो कुछ क्षण पहले उनके विचारों का विषय था।

रामसरन के प्रति द्वेष-भावना अब उनमें न उमड़ी। रामसरन ने अपनी

जान पर खेल कर उस बालक का बचाया है। जब कि वे उस भैंसे के भय से चिल्ला भी न सके उसने अपने को उसके सम्मुख डाल दिया। मानों साक्षात् काल से लोहा लिया।

उन्होंने देखा कि भैंसे ने पुनः उठने का प्रयत्न किया और असफल रहा। वे रामसरन के निकट गये। उसके प्रति वे प्रशंसा से भरे थे। उसके सामने वे मनुष्यता में नगण्य हैं। रामसरन उन्हें महान् लगा। इच्छा हुई कि उसके पैरों पर गिर पड़ें और उसके चरणों की धूलि अपने सिर पर लगायें।

उन्होंने ध्यान से उसकी ओर देखा। दोनों के नेत्र मिले।

रामसरन ने कारिन्दा सा'ब को पहिचान लिया। वह उत्साह के उच्च शिखर पर था। सफलता उसके पीछे-पीछे चल रही थी। उसे लगा कि कारिन्दा के नयनों में भय, प्रशंसा और निरीहता है। यही भावों का मिश्रण उसने रामावतार के नयनों में कई बार देखा है। उसे लगा कि ऐसे वृद्ध पर उसने उस दिन हाथ उठा कर अच्छा नहीं किया।

उसमें अनुताप की लहर आई। वह आगे बढ़ा और कारिन्दा के पैरों की ओर झुकते हुए बोला—"दादा, मुझे क्षमा करो, मैंने....।"

कारिन्दा अपने को न रोक सके। वे बढ़ गये। रामसरन को उठा कर छाती से लगा लिया।

"नहीं रामसरन, ग़लती मेरी थी।"

रामसरन पानी हो गया।

"दादा, मुझे बड़ी लाज आती है। मुझे क्षमा कर दो।"

"अरे तुझ जैसे वीर को क्षमा नहीं करूँगा तो किसे करूँगा।" अश्रु बहाते हुए, उन्होंने कहा।

कारिन्दा सा'ब ने रामसरन की ओर देखा। एक भावना उनके मन में उठी। यदि ऐसा पुत्र उनका होता।

गाँव जाने का कार्यक्रम स्थगित हो गया। वे लौट पड़े।

उन्होंने देखा कि रामसरन पुनः भैंसे की ओर गया है। वे ठिठक गये।

देखते रहे। थोड़ी देर में भैंसा लँगड़ाता उठ कर एक ओर चला और रामसरन भी अपने खेत की ओर बढ़ा।

कारिन्दा जब लौटे तो उनका दिमाग़ रामसरन के विषय में बिल्कुल साफ था। जितनी जटिलता और उधेड़बुन इस प्रश्न की उनके मस्तिष्क में चल रही थी वह इस घटना के प्रभाव से पानी होकर बह गई। रामसरन के प्रति सम्पूर्ण दुर्भाव ही नहीं नष्ट हुआ बल्कि वह उनके अत्यन्त निकट आ गया।

उन्हें अनुभव हुआ कि वह अभी बच्चा है। पर वीर बच्चा है, जिसे देख प्रत्येक का मन हरा हो जाता है।

जब सन्ध्या समय रामसरन को साथ ले गाँव के प्रमुख व्यक्ति दोनों में समझौता कराने आये तो चतुर्भुज चमार के लड़के को भैंसे से बचाने का समाचार गाँव में फैल चुका था। लड़का कारिन्दा को पहचान नहीं पाया था इसी से रामसरन कारिन्दा की भेंट का समाचार व्यापक नहीं बना था।

साहु ने कहा—"कारिन्दा सा'ब आप रामसरन को क्षमा कर दीजिए।"

कारिन्दा और रामसरन एक दूसरे को देखकर मुस्काये। लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

"साहु ..।" कारिन्दा बोले।

"आज रामसरन ने...।"

"मुझे ज्ञात है।" कारिन्दा ने कहा।

साहु ने देखा कि कारिन्दा बात बढ़ने नहीं देते। जान पड़ता है कि वे समझौता करने को तैयार नहीं होंगे। वे बड़ी आशाएँ लेकर, रामसरन को सिखा-पढ़ा कर लाये थे।

उन्होंने अन्तिम प्रहार किया—"रामसरन कारिन्दा सा'ब के चरण छू, वे तेरे पिता थे....।"

और रामसरन आज्ञा-पालन के लिए उठा।

कारिन्दा सा'ब ने उठकर उसे बीच में ही पकड़ लिया।

"यह रस्म कितनी बार अदा करेगा, रामसरन ?"

सब लोग चकित रह गये । उनके नेत्र गीले हो आये ।

"आप लोग निश्चिन्त रहिए । रामसरन और रामाधीन के परिवार के विरुद्ध अब कोई कार्रवाई नहीं की जायगी । ऐसे व्यक्ति गाँव के गौरव हैं ।"

"कारिन्दा सा'ब सचमुच प्रजा के पिता हैं ।" हरिनाथ ने कहा ।

[६]

इस घटनावली में छदम्मी साहु का भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण था । धन उन्होंने दिया था । उसी से माथुर रखे गये थे ।

यह सत्य है, आदेश्वर ने साहु को उस धन के रसीदें दी थीं, जैसे कि उसने उधार लिये हों; फिर भी मूलतः वह धन छदम्मी साहु का ही था ।

इस समय गाँव में जो भावना थी वह साहु को कुछ असह्य हो चली । गाँववाले रामसरन की विजय का सब श्रेय आदेश्वर को दिये डाल रहे थे, जो अपने स्थान से हिलने में भी असमर्थ था, जिसने जिह्वा चलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया था । उसका स्थूल कार्य माथुर को विभिन्न गवाहों का परिचयात्मक एक पत्र लिखना था, जिससे माथुर ने पूर्ण लाभ उठाया था ।

साहु के मन में आदेश्वर के प्रति एक ईर्ष्या उत्पन्न हुई । भावना उठी कि धन उनका व्यय हुआ और नाम हुआ आदेश्वर का । वे भी इस चित्र में कहीं हैं यह कोई नहीं जानता । यह दशा उन्हें खली । वे एक निश्चय कर, उसे कार्यान्वित करने को प्रस्तुत हुए ।

अगले दिन गाँव के कुछ वृद्ध, तथा प्रतिष्ठित युवक आदेश्वर के द्वार पर एकत्र हुए । रामसरन, उसके पिता और दोनों बड़े भाई भी उपस्थित थे । रूपमती ने सुरती-चूने से सब की आवभगत की ।

इधर-उधर की बातों के बीच साहु अपनी बात कहने को बल बटोरते रहे । जब पर्याप्त शक्ति एकत्र कर पाये तो गम्भीर होकर उन्होंने अपना बटुवा खोला, और कागज़ के दो पुर्जे निकाल लिये ।

आदेश्वर को सम्बोधित कर कहा—"बाबू मैंने आपको आठ सौ रुपये उधार दिये थे । आपने वे रुपये रामसरन के मुकदमें में लगा दिये, मुझे यह

ज्ञात हुआ है। यह लीजिए अपनी रसीदें, वह रुपये आपने नहीं, मैंने लगाये।"

यह कह साहु ने दोनों रसीदों को आधी फाड़ कर बाबू की ओर बढ़ा दिया। लोगों ने उन पर लगे टिकटों की ओर देखा।

साहु के प्रति एक प्रशंसात्मक भाव उनके मुख पर आ गया। बोला कोई नहीं, पर दृष्टियाँ कह रही थीं; ये साहु हैं, जिनका रुपया धर्म के काम में लगता है, इनकी जय हो।

रामसरन का मुख-मण्डल गम्भीर हो गया। पूछा—"आदेश्वर भई, यह रुपया मेरे लिए खर्च हुआ है?"

रामावतार ने उत्तर दिया—"हाँ!"

रामसरन की छाती तन गई। पुरुष जाग्रत हो गया। बोला—"साहु, तुम्हारे आठ सौ रुपयों का देनदार मैं हूँ। तुम चाहे लिखो या न लिखो, जब-तक मैं हूँ वे निरन्तर तुम्हारे यहाँ पहुँचते रहेंगे।"

आदेश्वर का मुख-मण्डल आनन्द से खिल उठा।

"शाबाश रामसरन, शाबाश; अब भी हमारे गाँव निष्प्राण नहीं हुए हैं।"

और फिर जैसे उन गाँवों के उज्ज्वल भविष्य में उसका मन डूब गया। जब वह ध्यान से जगा, तो बोला—"रामसरन, चिन्ता न करना। मैं तुम्हें, सींकों और बाँस की खपच्चियों से वे-वे वस्तुएँ बनाना बता दूँगा कि तुम दो-तीन वर्ष में ही साहु का ऋण उतार दोगे।"

रामसरन का मस्तक कृतज्ञता से झुक गया। ग्रामीणों ने सोचा यह लँगड़ा-लूला कौन है, जो किसी भी अवस्था में उपायों से खाली नहीं है। उसे जैसे मार्ग खोजना ही नहीं पड़ता। जिधर मुख करता है, उधर ही राज-मार्ग बना प्रस्तुत दिखाई देता है।

"आदेश्वर भैया, क्या तुम ये रसीदें मुझे दे दोगे?"

रामसरन ने पूछा।

"क्या करोगे इनका?" आदेश्वर ने जिज्ञासा की। उसके नेत्र चमक उठे।

"क्या करूँगा ? यह मेरी सबसे मूल्यवान निधि होंगी। मैं इन्हें सँभाल कर रक्खूँगा। इनकी पूजा करूँगा।"

आदेश्वर ने गम्भीर मुद्रा धारण कर एक क्षण सोचा। फिर उन्हें रामसरन की ओर बढ़ाता हुआ बोला—"लो, तुमने इन्हें कमा लिया है।"

रामसरन ने उन फटी रसीदों को ले मस्तक से लगा अपने हृदय के निकट की जेब में रख लिया।

इसके बाद रामावतार ने आदेश्वर को अपने यहाँ निमन्त्रित किया।

[१०]

रामसरन के आगमन पर बुवाजी ने वैजंती को प्रसन्न होते देखा तो उन्हें असन्तोष ही हुआ।

वैजंती के विरुद्ध वे कोई अभियोग लाना चाहती थीं जिससे उसका अभिमान तोड़ा जा सके। वह पत्थर की गाँठ खुलकर बिखर जाय अथवा घुलकर पानी हो जाय।

वैजंती ने अनुभव किया कि बुवाजी यद्यपि प्रसन्न रहने की चेष्टा करती हैं, पर, उसके पति के आगमन के पश्चात् से, वे वास्तव में खिन्नमना हो गई हैं। मुस्कान अब उन ओठों पर नहीं आती। जीवन जैसे उनके लिए नीरस हो गया है। अब वे किसी बात में रुचि नहीं लेतीं। कार्यों में वह उत्साह उनका नहीं रहा।

उसे बुवा जी पर दया आई। एक समय था जब बुवा जी की ऐसी दशा से उसे सन्तोष हुआ होता। अब मनःस्थिति ऐसी थी कि बुवाजी की यह दशा देखकर उसमें दया का सञ्चार हुआ।

बुवा जी में जो असन्तोष वैजंती-द्वारा अपनी पूर्ण पराजय से, और उसे अपने नयनों के सामने सुखी देखने से हो रहा था वह शक्ति एकत्र करता-करता विस्फोट की अवस्था तक आ पहुँचा। वे उस पर प्रहार करने का बहाना खोजने लगीं।

जिस समय पुरुष आदेश्वर के द्वार पर बैठे थे, बुवाजी वैजंती की उँगली

पर बँधी पट्टी को बड़े ध्यान से देख रही थीं, और उसमें कलह की सम्भावनाएँ खोज रही थीं।

एकाएक वे बोल उठीं—"खसम के आते ही उँगली में पट्टी बँध गई, जिससे काम न करने का बहाना मिल जाय।"

वैजंती ने सुना; एक मुस्कान उसके मुख पर आ गई। पर जब उसने बुवा जी का मुख देखा तो वह तिरोहित हो गई।

बुवाजी का मुँह एक करुण चित्र हो रहा था। पराजित जिस प्रकार सबल पर अपनी हार निश्चित समझकर प्रहार करता है, और झुँझलाहट-मिश्रित विवशता को स्वीकार करता है, वही भावना बुवाजी के मुख पर थी। वह क्रोध, जो वैजंती में क्रोध उत्पन्न करता, वहाँ न था। उनकी निरीहता वैजंती पर प्रकट हो गई। वैजंती को लगा कि मुस्कराकर उसने बुवाजी पर अत्याचार किया है।

उसने आँखें नीची कर लीं।

बुवाजी ने कहा—"कामचोर ऐसी ही होती हैं। रामविलास की बहू दिन-रात काम करते-करते मरी जाती है और यह...।"

किसोरी ने दृष्टि ऊँची कर बुवा जी की ओर देखा, सोचा—बुवा घर में कलह खड़ा कर वैजंती को पिटवाना चाहती हैं।

वैजंती ने नम्र स्वर में कहा—"बुवा जी।" वह उनके प्रति द्रवित हो आई थी।

बुवा जी को वह स्वर अनुभव नहीं हुआ। वे बड़ी हैं। अपमानित हैं।

बोलीं—"बहू मैं झूठ नहीं कहती। आज रामसरन को आ जाने दे तो...।"

वैजंती अब कुछ घबरा भी गई। बुवाजी भले घर में कलह खड़ा करने वाली हैं।

वह करे क्या। किसी प्रकार भी हो वह इस कलह को रोकना चाहती है। पर उसे मार्ग दिखाई न देता था। वह विवश थी। उसने उनके सामने से टल जाना उचित समझा। वह नीची गर्दन किये अपनी कोठरी की ओर

चली। पर बुवाजी उसके पीछे लग गई।

"आज रामसरन को आने दे तो...।"

और वैजंती काँप उठी। रामसरन को चाहे बुवा जी के अभियोगों पर विश्वास न हो, पर एक झगड़ा सुख और शान्ति से पूर्ण हो रहे इस घर में फिर खड़ा हो जायगा। परिवार जिस समय प्रसन्नता के सिन्धु में तैर रहा है, उस समय यह कलह! पारिवारिक शान्ति में यह विष! और ऐसे समय पर पता नहीं उसका कितना गहरा प्रभाव पड़े।

पर बुवा जी शान्त कैसे हों?

तभी एक विचार उसके मन में आया। वह द्रवित हो गई। बुवाजी कितनी दयनीय हैं। उँगली की पट्टी को काम न करने का बहाना समझ रही हैं, यदि वास्तविकता जान पातीं तो...।

वह घूमकर बुवाजी के चरणों पर गिर पड़ी—"बुवाजी, मैंने जान-बूझकर कभी तुम्हारा अपराध नहीं किया। अनजाने हो गया हो तो क्षमा करो।"

बुवाजी स्तम्भित रह गई। उन्होंने समझ लिया कि वैजंती पराजित हो गई। उनकी महत्ता स्वीकार कर ली गई।

उनकी हलकी प्रकृति जैसे तनिक-सी बात में रुष्ट हो जाती थी वैसे प्रसन्न भी। अब वह वैजंती पर प्रसन्न हो गई। उन्होंने वैजंती को उठा लिया। नयनों में जल भर आया। जो जटिलता कठोर होकर उनके भीतर चुभ रही थी वह धुल गई।

उन्होंने अब वैजंती की ओर देखा। उन्हें लगा कि वह वास्तव में उसके भाई का बेटा बैजनाथ है। उसके अतिरिक्त कौन नारी इतनी कुट्टी काट सकती थी।

"बहू!"

उन्होंने वैजंती को छाती से चिपका उसका मुख चूम लिया।

जिस समय किसोरी ने उत्सुकता-वश आकर उन दोनों को देखा तो पाया कि बुवा बहू आमने सामने खड़ी रो रही हैं।

बुवा ने घूम कर कहा—"बहू, वास्तव में देवी है।"

इसके पश्चात् बुवाजी बहू के इस देवीत्व से इतनी प्रभावित हुई कि तुरन्त ही आँसू पोंछ हुलसती इस समाचार को पड़ोस में सुनाने निकल गईं।

उनके रामसरन की बहू सचमुच देवी है। उन्होंने आज उसका रूप देखा है।

जब तीनों पुत्रों और आदेश्वर-सहित रामावतार ने घर में प्रवेश किया तो उनके पीछे-पीछे बुवा भी यह समाचार वितरण कर घर में घुसीं।

उन्होंने रामावतार को भी हुलसते हुए सूचना दी—"भैया, रामसरन की बहू सचमुच देवी है।"

और रामावतार ने अबूझ नयनों से बहिन की ओर देखा। पार्वती वैजंती की प्रशंसक कब से बन गई। यदि वैजंती में बुवा जी को अपना प्रशंसक बना लेने की सामर्थ्य है तो उसके देवीत्व में सन्देह नहीं।

पर इस समय अधिक महत्वपूर्ण विषय उनके मन में घूम रहे थे। वे बोले नहीं। दृष्टि ने इस शुभ समाचार पर प्रसन्नता प्रकट की।

पाँचों व्यक्ति जाकर भीतर के आँगन में बैठ गये। बुवा ने एक पीढ़े पर आसन ग्रहण किया। किसोरी बाहर आँगन में वैजंती के पास चली आई।

रामावतार आदेश्वर से बहुत प्रभावित थे। वे उसके परम ऋणी थे। उन्हें विश्वास था कि आदेश्वर से बड़ा उनके परिवार का हितैषी और नहीं है। इसीलिए पारिवारिक मंत्रणा में उसकी बुद्धि से लाभ उठाने के लिए उसे निमंत्रित किया था।

रामावतार ने कहा—"भाई आदेश्वर, अब हम लोगों को कैसे प्रबन्ध करना चाहिए?"

"क्यों?"

"बटवारा जो हो चुका है।"

"तो आप क्या करना चाहते हैं?"

"ऐसा हो कि फिर सब एक साथ मिलकर रह सकें।"

"विचार तो अच्छा है, पर कानूनन मिलना तो असम्भव-सा है ?"

"आदेश्वर, बिना इसके निर्वाह नहीं होगा। जो काम पहले एक हरवाह करता था उसके लिए अब तीन जगह तीन रखने होंगे और...।"

"यह तो होगा ही।"

"पर इससे अधिक एक बात और है जो मुझे दुखित करती रहती है।"

"क्या ?"

रामावतार ने रामाधीन की ओर देखा। उसके नयन नम हो आये। बोले—"आदेश्वर, मैं देखता हूँ कि रामाधीन जब से अलग हुआ है सूखता जा रहा है। मैं देखता हूँ कि उसे अब तनिक भी समय आराम करने को नहीं मिलता। दिन भर काम में जुटा रहना पड़ता है। इस कलेजे की कसक को मैं बहुत दिन से छुपाये था, पर अब नहीं रहा जाता। इस प्रकार वह...।"

रामाधीन ने देखा कि जिस समय पिता को वह अपना बैरी समझ रहा था उस समय भी वे पिता थे और उसके दुःख से दुखित थे।

दोनों के नेत्र मिले। रामाधीन अपने को न रोक सका। रामावतार के पैरों पर गिर, पड़ा, और तब पिता पुत्र को छाती से लगा-कर अश्रु बहाने लगे। आदेश्वर और दोनों भाइयों के नेत्र भी गीले हो आये। बुवा तो ज़ोर से रो रही थीं।

"है ऐसा उपाय कि आप लोग फिर मिलकर रह सकेंगे।" आदेश्वर ने कहा।

यह पपीहा को स्वाति की बूँद थी।

"सम्भव है ?" रामसरन ने पूछा—"क्या हम सब फिर एक हो सकते हैं ?"

"हाँ।"

"कैसे ?"

"भूमि का बँटवारा जैसा हो गया है, उसे वैसा ही रहने दो। पर जब उसे जोतो बोओ तो एक साथ मिल कर, जैसे पहले जोतते बोते थे।

काका, उसकी देख-भाल करें और सब लोग उनकी आज्ञानुसार कार्य करें। उपज में से अपना-अपना भाग लेलें। इस प्रकार सब को आराम मिलेगा और मजदूरी भी कम खर्च करनी पड़ेगी।"

रामाधीन ने आदेश्वर की ओर प्रशंसा भरे नयनों से देखा।

और रामावतार उठकर उसके पैर पकड़ लेने को हुए।

"क्या करते हैं काका आप?"

"आदेश्वर, तुम वास्तव में देवदूत हो भैया।"

फिर रामाधीन से बोले—"क्यों रामाधीन, आदेश्वर की बात मानते हो न?"

आँसुओं के बीच काँपते हुए स्वर से रामाधीन ने कहा—"दादा, क्यों लज्जित करते हो? मैं इतना अभागा हूँ कि इतने बुरे समय में तुमसे हिस्सा बँटवाया। शत्रु-मित्र का मुझे ज्ञान न रहा।"

"जो बीत गया उसे भूल जाओ, और अब बँधी मुट्ठी की भाँति मिलकर रहो।" आदेश्वर ने कहा।

रामाधीन जैसे उन्माद में उठ खड़ा हुआ। उसने पास रक्खा फावड़ा उठा लिया; और आँगन के बीच अलगाव की जो दीवार थी, उसे गिराने लगा। इस ओर सब लोग उसके इस कृत्य को देखते रहे, दूसरी ओर सहदेई का हृदय धड़कने लगा। उसने ननको को, इस ओर क्या हो रहा है, यह देखने भेजा। पर इससे पहले कि ननको समाचार लेने पहुँचे दीवार का एक भाग गिर गया और सहदेई ने फावड़ा चलाते पति की मूर्ति देखी।

फिर ससुर को देख वह अपनी कोठरी में चली गई।

आदेश्वर उद्दीप्त नयनों से रामाधीन का यह कृत्य देख रहा था। एकाएक उसके मुख पर तेज आगया।

वह बोल उठा—"आज जिस प्रकार एक घर के बीच की यह दीवार तोड़ी जा रही है, दिन आयेगा जब गाँव की प्रत्येक भीतरी दीवार इस प्रकार तोड़ दी जायगी। सारा गाँव एक परिवार होगा, सारे गाँव का एक खेत

होगा। सब को पर्याप्त विश्राम और भोजन मिल सकेगा।

"क्या यह सम्भव है?" रामावतार ने पूछा।

"आ रहा है काका वह दिन, यद्यपि धीरे-धीरे। मैं उसे तिल-तिल इस ओर बढ़ता देख पाता हूँ।"

और उसके नेत्रों से जान पड़ता था कि वह वास्तव में उस भविष्य को वर्त्तमान की ओर बढ़ते देख रहा है।